





( अण्डिल्लेवकप्रस्थानां शिरोभूषणः )

श्रीमद्विष्णुस्यंगदाधरतनयवङ्गमेन-  
विदुषा विरचितः



सुन्दरानन्दस्य विदुषा विरचितः श्रीमद्विष्णुस्यंगदाधरतनयवङ्गमेन-  
विदुषा विरचितः ।

संस्कृत-श्रीकृष्णदान-श्रेष्ठिनः

संस्कृत-श्रीकृष्णदान-श्रेष्ठिनः

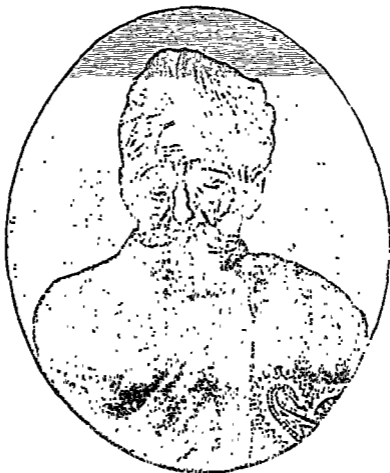
मुद्र

मुद्र

मुद्र



कविवर श्रीलालाशालिग्रामजी वैश्य ।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीविकटेश्वर” स्टीम प्रेस—मुंबई.

तथा—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

“लक्ष्मीविकटेश्वर” प्रेस—कल्याण—

मुंबई.

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई सेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन निज ‘श्रीविकटेश्वर’ स्टीम प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित की ।

## अर्पण-पत्रिका.

श्रीमन्निखिलगुणनिकेतन परमोदार धीरचरित श्रेष्ठिवर्य श्रीखेमराज  
श्रीकृष्णदासजी "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसाध्यक्ष बम्बई ।

महोदय !

देशी भाषाके ग्रंथकारोंको आश्रय देनेमें आपका अलौकिक यत्न है,  
संस्कृत साक्षरमण्डलमें आपने उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त की है। हिन्दी  
साहित्यका उद्धार करनेमें आप सदैव यत्नवान् रहते हो। योग्य-  
का आदर करनेमें आप प्रसिद्ध परीक्षक और गुणज्ञ हो।  
तथा गो, ब्राह्मण, अनाथ, विधवा और दीन भारत-  
वासियोंकी रक्षा करनेमें आप सबसे अग्रसर हो।

अत एव आपके पवित्र नामके साथ यह

"भाषाटीकासमेत बङ्गसेन" ग्रन्थ

सभेम, सादर और संविनय

समर्पित किया

जाता है।

विनयावनत,

शङ्करलाल हरिशङ्कर.



## धूमिका ।

जबसे हिन्दू-सौभाग्यका निष्कलङ्क मयंक अस्ताचलमें अस्त हुआ है, जबसे भारतलक्ष्मी अन्तर्हिता हुई है, जबसे आर्यभूमिमें वारंवार यवन लोगोंका पदार्पण हुआ है और जबसे राजनीति, समाजनीति और धर्मनीतिमें विशेष विप्लव (गोलमाल) हुआ है उस समयसे आर्य ऋषिप्रोक्त प्रायः सम्पूर्ण हिन्दूशास्त्र छुमसे हो गये और उन्हींके साथ भरताका महापर्वरत्न और समस्त पृथ्वीका गौरवस्वरूप हमारा आयुर्वेद शास्त्र भी अतिशय शोचनीय अवस्थाको प्राप्त हो गया ।

हिन्दूराजाओंके समय समस्त शास्त्रोंकी चर्चा थी, विद्याकी उज्ज्वल आभा भारतवर्षको प्रकाशित करती थी, उस समय हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा अष्ट और भारतसन्तानकी स्वास्थ्यरक्षाका एकमात्र अवलम्ब समझा जाता था । आयुर्वेदीय चिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी मूल और भारतसन्तानकी मात्राके समान हितकारिणी चिकित्सा समझी जाती थी । पूर्वकालमें हमारे पूर्वपुरुष आयुर्वेदीय चिकित्साके प्रभावसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यलाभ करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस पुरुषार्थचतुष्टयका साधन करते हुए दीर्घकालतक सुखपूर्वक संसारयात्राको व्यतीत करते थे । आयुर्वेदीय नियमानुसार चलनेसे यहाँ कदापि रोगसंकट उपस्थित नहीं होता था । कदाचित् कोई रोग उत्पन्न हो गया तो एक बार उससे मुक्त होनेपर फिर कभी भी किसीको रोगकी भीषण मूर्खिके दर्शन नहीं करने पड़ते थे । आयुर्वेदीय चिकित्सा पूर्ण होनेके कारण भारतसन्तानको कभी किसी विदेशी चिकित्साका आश्रय नहीं लेना पड़ता था । इस देशमें उत्पन्न होनेवाली साधारण वनस्पतियोंके द्वारा उसके रोग दूर किये जाते थे । हमारे देशमें उत्पन्न हुई औषधियाँ हमारी प्रकृतिके अनुकूल होनेके कारण प्राचीन महार्षियोंने ठीक हमारे लिये ही आयुर्वेदशास्त्रकी रचना की थी ।

आयुर्वेदशास्त्र केवल भारतमें ही सर्वोत्कृष्ट चिकित्साशास्त्र नहीं समझा जाता था, बल्कि कभी समस्त पृथ्वीभरके चिकित्साशास्त्रोंमें आयुर्वेदशास्त्रने अत्युच्च आसन ग्रहण किया था ।

जिस समय अरब और मिश्रदेश प्राचीनताके अभिमानमें चूर्ण थे, जस पुराने रोम और ग्रीक देश सभ्यताकी शोखीमें निमग्न थे, जिस समय सभ्यशिरोमणि पृथ्वीका आभूषणस्वरूप यूरोप देश असभ्यताके घोर अन्धकारसे आच्छादित था, तबसे ही हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंमें प्राचीन और सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है ।

आयुर्वेदकी प्राचीनता और उत्कृष्टताके विषयमें कतिपय विदेशी विद्वानोंके मत नीचे लिखे जाते हैं ।

अवसे अनुमान तेरहसौ वर्ष पहले भुवनविजयी ग्रीकदेशाधिपति महावीर एलेक्जेंडर असाध्य रोगोंकी चिकित्साके लिये भारतवर्षीय वैद्योंको सदैव बड़े यत्न और सत्कारके साथ अपने यहाँ रखता था ।

बारहसौ वर्ष पहले युगदादपाते खलीफा हारुनरसीद आयुर्वेदीय चिकित्साको पृथ्वीभरकी सम्पूर्ण चिकित्साओंमें अष्ट समझकर अपनी शरीररक्षाके लिये सदैव भारतवर्षीय वैद्योंको अपने राजमंदिरमें उपस्थित रखता था ।

अयुल उल नामक प्रसिद्ध अर्था भाषाके ग्रन्थम लिखा है कि अष्टम शताब्दीमें भारतवर्षके पीड़ित लोग युगदादकी राजसभामें उपस्थित होकर आयुर्वेद और ज्योतिषशास्त्रकी शिक्षा देते थे । 'सरक, सर्सेस और वेदान' यह तीन भारतवर्षसे अरबदेशमें लाये गये । मालूम होता है कि ये तीनों ग्रंथ चरक, सुश्रुत, निदान इन तीनोंके अपभ्रंश नामान्तर हैं ।

इकीम जालीनूस अपने रिंसालेमें लिखते हैं कि, आयुर्वेदविद्या प्रथम भारतवर्षसे मिसरमें आई फिर मिसरसे यूनान और अरबदेशमें गई । वह यह भी लिखता है कि, मेरे गुरु अफलातून भारतवर्षमें जाकर कालज्ञानके ३६ लक्षण और बहुतसे ग्रंथ पढ़े । उनमेंसे कुछ सारभाग संग्रह करके

एक काठकी तख्तीपर लिखाकर सदैव अपने गलेमें जामेके भीतर पहने रहते थे और कभी किसीको प्रगट नहीं होने देते थे । जब उनकी मृत्युका समय समीप आ गया तब उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा कि, इस तख्तीको मेरी कबरमें गाड़ देना और इस विषयको अत्यन्त गुप्त रखना । खीने उनकी आज्ञानुसार उस तख्तीको पतिकी लाशके साथ कबरमें गाड़ दिया । इस प्रकार उस तख्तीको कबरमें गड़ी हुई देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ और मैंने विचार किया कि, गुरुजी आप तो मरे ही किन्तु अपना विद्याको भी मार गये । तब मैंने गुरुजीकी कबरको खोदकर तख्तीको निकाल लिया । पश्चात् उस विद्यामें मैंने अच्छे प्रकार योग्यता प्राप्त की, फिर मेरी देखादेखी अरसतू आदि विद्वानोंने हिन्दुस्तानमें जाकर आयुर्वेदको अध्ययन किया ।

सुप्रसिद्ध डॉक्टर ओयाज भी आयुर्वेदीय चिकित्साके विषयमें कहते हैं कि, हिन्दुस्तानकी आर्य्यचिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी मूल है और सम्पूर्ण संसार उसका ऋणी है ।

प्रोफेसर जे. एफ. रायल. डी. आर. एल्. एम्. जी. सी. जो कि, प्रथम बंगालकी सेनाके डॉक्टर थे और एशियाटिक व मेडिकल व फिजीकल सोसायटी एडिगवर्ग और मेडीको सर्जिकल सोसायटी लंडनके मेम्बर थे । वह अपने व्याख्यानमें कहते हैं कि—हिन्दुओंका आयुर्वेदशास्त्र बहुत प्राचीन है, अरब और चीनवालोंसे कहीं पहला है । किसी समय अरबदेशमें आयुर्वेदीय चिकित्साका विशेष प्रचार था । अरबवालोंने पहले आर्य्यचिकित्सासे ही चिकित्साकी शिक्षा प्राप्त की थी । अभीतक उस देशमें श्वासरोगमें धनूरेके बीज और कृमिरोगमें कौंचके बीज व्यवहार किये जाते हैं ।

सुप्रसिद्ध संस्कृतशास्त्रके पूर्ण विद्वान् प्रोफेसर हारेस, हेमेन, विलसन एम्. ए. एफ. आर. एस्. प्रसीडेन्सी मेडिकल सोसाइटी कलकत्ता और प्रोफेसर ऑफ संस्कृत युनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ फोर्ट जो कि, अत्यन्त विख्यात और संस्कृतविद्याके पूर्ण पारगामी माने जाते हैं, उन्होंने लिखा है कि—भारतवर्षमें बहुत पुराने समयसे चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन आदिके पारदर्शी विद्वान् विद्यमान हैं ।

जिस समय यूरोपदेशमें शरीरविद्या ( एनाटमी ) का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था उस समय भारतवासियोंने जैसी औपधिचिकित्सा और शास्त्रचिकित्सामें पारदर्शिता दिखाई थी उसी प्रकार शरीरविद्याकी भी उन्नति की थी ।

इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध हांता है कि, हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है । हमारा आयुर्वेदशास्त्र जिस गम्भीर सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित है उस प्रकार अन्य चिकित्सा शास्त्रोंकी दृढ नींव नहीं है । कारण कि—जिनका ज्ञान, भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालके विषयको निरन्तर हस्तामलकवत् अवलोकन करता है, आयुर्वेदशास्त्र उन्हीं त्रिकालदर्शी मुनिवृन्दोंकी असाधारण अन्वेषणाका अपूर्व फल है ।

यद्यपि देशके सौभाग्यसे फिर आयुर्वेदकी आलोचनाका समय आ गया है । इस समय मृतप्राय आर्य्यचिकित्सा भारतसन्तानको अपनी ओर आकर्षित देखकर फिर जीवित होना चाहती है । यद्यपि अनेक भारतवासियोंकी आर्य्यचिकित्साके ऊपर फिर दिनपर दिन प्रीति बढ़ती जाती है परन्तु इसकी जितनी उन्नति होनी चाहिये उसके अभी दशांश भी नहीं हुई जो लोग देसमें शिक्षित और सभ्य संसारमें अप्रसर समझे जाते हैं उनको देशी चिकित्सामें किञ्चिन् भी अद्भ्य नहीं है । उनकी दृष्टिमें देशी चिकित्सा अतीव घृणाके योग्य समझी जाती है ।

आज कल पाश्चात्य चिकित्सापद्धति अत्यन्त आढम्बर और सौन्दर्यपूर्ण होनेके कारण सभ्यसंसारमें श्रेष्ठ समझी जाती है । भारतके प्रत्येक स्थानमें बड़े बड़े विशाल मेडिकलहॉलखुले हुए हैं । उनमें लाल, पाली, हरी, अनेक प्रकारकी सुन्दर कोंचकी शीशियां नवीन भारतकी दृष्टिमें अपूर्व चकाचौंध उत्पन्न कर रही हैं । सुन्दर दीर्घाकृति साइनबोर्ड, विलायती, मेज, टेबुल, कुर्सी, विलायती बने हुए अनेक प्रकारके अन्न और यन्त्रोंकी घाह रचनायें भारतवासियोंके हृदयमें अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर रही हैं । सर्वत्र सभ्यसमाजमें डॉक्टरोंका ही आह्वान हो रहा है । वैय लोग विचारे मूर्ख या निरे गंवार समझे जाते हैं ।

भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें कितने ही मेडिकल कॉलेज, कितने ही अस्पताल, और कितने ही चिकित्सा-शास्त्र प्रविष्ट हैं । परन्तु हमारी आधुनिक चिकित्सा इन सर्व साधनोंसे शून्य होनेपर भी अन्य चिकित्सा-ओंकी अवस्था अगोचर सर्वोत्कृष्ट पदपर प्रतिष्ठित है । प्रायः देखा जाता है कि ज्वरक रोग सहज होता है, ज्वरक बल गांठका क्षय नहीं होता और ज्वरक रोग जड़ नहीं पकड़ लेता ज्वरक रोगको दूर करनेके लिये अनेक डाक्टर समर्थ होते हैं, किन्तु ज्वर रोग सांवातिक आकार धारण कर लेता है और ज्वर शरीर-गत रस, रुधिर, गांस, मज्जादि सप्त धातुमें विशेष रूपसे विकृत होकर आयु क्षोण हो जाती है उस समय कोई भी डॉक्टर रोगको दूर करनेके लिये समर्थ नहीं होता, केवल एक वैद्यमहाशय ही समर्थ हो सकते हैं ।

इसमें संदेह नहीं कि यदि अब भी आयुर्वेदशास्त्रकी अच्छे प्रकारसे आलोचना कीजाय एवं विशिष्ट समाज आयुर्वेदीय चिकित्साका अनुसरण करे तो सम्पूर्ण जगत् अशुभ मुक्तकंठसे आयुर्वेदकी श्रेष्ठता स्वीकार करके उसका पकान्त पक्षपाती बन जायगा ।

चरकमें लिखा है—“त्रिविधं खलु रोगविशेषानं भवति । तद् यथा—आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानश्चेति । त्रिविधे स्वस्मिन् ज्ञानसमुदाये पूर्वमाप्तोपदेशात् ज्ञानं ततः प्रत्यक्षानुमानाभ्यां परीक्षोपपद्यते । किं एतुद्वि-पूर्वं प्रत्यक्षानुमानाभ्यां परीक्ष्यमाणो विशात्” ( चरक-विमानस्थान-चतुर्थ अध्याय ) ।

अर्थात् रोगका ज्ञान तीन प्रकारसे होता है जैसे—आप्तोपदेश-प्रत्यक्ष और अनुमानसे ।

इन तीनों उपायोंमें प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा ( रोगका ) ज्ञान प्राप्त होता है फिर प्रत्यक्ष और अनुमानसे द्वारा उसकी परीक्षा होती है । किन्तु जो पहले ही आप्तोपदेशके द्वारा जाना नहीं गया उसकी प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा किस प्रकार परीक्षा हो सकती है ?

चरकके इस महावाक्यके द्वारा यह कदापि सम्भव नहीं हासकता कि आप्तोपदेशवार्जित, प्रत्यक्ष और अनुमानपरिषण पाश्चात्यपीडितगण सैकड़ों वर्षों जगत्को पृथा विज्ञानके धुँके द्वारा उद्गासित करनेपर भी अभी तक प्रकृतसत्यतक पहुँचकर कृतकार्य हुए हैं ।

देखो ! आप्तोपदेशके द्वारा किस प्रकार ज्ञान प्राप्त होता है उसको यहां दिखाते हैं आप्तगण कहते हैं कि—यह रोग रोगका प्रकोपक है, इसप्रकार रोगका पूर्वरूप, रूप, साध्यासाध्यलक्षणआदि प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा जानकर पश्चात् प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा उसकी परीक्षा आरम्भ करते हैं । जैसे—राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेसे पहले रोगीको स्वप्नमें काक, शुक और मयूपादिके दर्शनका ज्ञानका होता है, परन्तु बिना आप्तोपदेशके हम उक्त स्वप्नके वृत्तान्तको किस प्रकार जान सकते हैं ? और रोगीके निकट किस प्रकार स्वप्नसम्बन्धी विषयक बात पूँछ सकते हैं ? और जो हम आप्तोपदेशके द्वारा पहलेसे ही यह बात जान लें कि राजयक्ष्माके पूर्वरूपमें उपर्युक्त काक, शुकदिक पक्षा दिखाई देते हैं तब तो किंचित् लक्षण प्रतीत होते ही स्वप्नसम्बन्धी सम्पूर्ण विषय रोगीसे अच्छे प्रकार मालूम करके राजयक्ष्माका सहजमें निर्णय कर सकते हैं ।

आप्तगण कहते हैं कि—“ असाध्यो बलवान् यद्य केशीमन्तकृज्ज्वरः ”

अर्थात् जिस उजरमें रोगीके बालोंमें गांठें ही गुंदा जाती हैं वह उजर अत्यन्त बलवान् और असाध्य जानना ।

पहले हम यदि आप्तोपदेशके द्वारा इन अष्टके लक्षणोंको नहीं जानते तो रोगीकी परीक्षा करनेके समय उसके बालोंकी ओर कभी लक्ष्य नहीं दें ?

महर्षि कहते हैं—

“ वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शरीरे दोषसंग्रहः ।

मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च” ॥

अर्थात्—वात, पित्त और कफ यह तीन शारीरिक दोष और रज, तम यह दो मानसिक दोष इन सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक दोषोंके विकृत होनेसे सय प्रकारके शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न



होते हैं । जो आप्तोपदेशके द्वारा पहलेसे ही यह वस्तु नहीं मालूम होता तो वात, पित्त, कफ ( शारीरिक दोष ) और रजस्तम ( मानसिक दोष ) के विषयमें किस प्रकार हम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं , अतएव इनके प्रकोप और क्षमनादिके सम्बन्धमें सर्वथा अन्वकार-होनेसे अन्यान्य चिकित्साशास्त्रोति उपर्युक्त दोषोंके विषयमें कुछ भी उल्लेख नहीं किया है ।

रोगोत्पत्ति होनेसे पहले ही रोगको पहचाननेवाले आप्तोपदेशका परिहार करके केवल प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा रोगका ज्ञान प्राप्त करना कदापि सम्भव नहीं हो सकता ।

आयुर्वेदाचार्य्य महात्मा महर्षिगण कहते हैं कि-मिथ्या आहार और विहारादिके द्वारा वातपित्तादि दोष विकृत अथवा वर्द्धित होकर रसरक्तादि सप्तधातुओंको विकृत करके धातुवैषम्य अथवा अनेक प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति करते हैं ।

इन मुख्य दोषोंके विषयमें अच्छे प्रकारसे परिचय नहीं होनेसे किस प्रकार रोग और चिकित्साका ज्ञान होना सम्भव हो सकता है ?

आज दश ग्यारह वर्षसे देशका सर्वनाश करनेवाले प्रेगरी चिकित्साके लिये संसारमें चारों ओर कोलाहल मच रहा है । इसको किसी प्रसिद्ध रोगके नामके साथ जोड़ देने एवम् इसकी यथार्थ चिकित्साकी अन्वेषणाके लिये आज कितनेक वर्षोंसे गवर्नमेन्टके द्वारा उत्साहित किये हुए पढतसे विज्ञान-विशारद डॉक्टर नियत हुए हैं । वे अपने अपने कल्पित उपायोंका अवलम्बन करके अनेक प्रकारके यत्न और औषधियोंकी कल्पना कर रहे हैं । किन्तु उनही चिकित्सासे प्रेगके रोगियोंका अभीतक कुछ भी हितसाधन नहीं हुआ ।

जहाँ चिकित्साका नाम सुनकर असाध्य रोगों भी एकबार निराशाको त्यागकर शय्यासे उठ बैठते हैं वहाँ-आज उक्त चिकित्साके नामसे रोगी एकदम मयभीत हो जाते हैं ।

परन्तु आयुर्वेदज्ञ वैद्य प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा इसको ज्ञानके अधीन करके पश्चात् इसकी चिकित्सा करनेमें जरा भी विचलित नहीं होते ।

महर्षिचरकाचार्य्य अपनी साहित्यमें लिखते हैं कि-

“विकारनामाकुशलो न जिह्यात् कदाचन ।

नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ” ॥

अर्थात् जो कभी किसी रोगका नाम समझमें नहीं आवे तो वैद्यको उसमें लाजित नहीं होना चाहिये क्योंकि शास्त्रमें कुछ रोगोंके नाम लिखे नहीं हैं । रोग अनन्त हैं । उन सबका वैद्यक ग्रंथोंमें भी विवरण मिलाना सर्वथा असम्भव है । इस विषयमें महर्षिचरक कहते हैं कि-

“स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।

स्थानान्तरगतश्चैव जनयत्यामयान् बहून् ॥

तस्माद्विकारप्रकृतिरधिष्ठानान्तराणि च ।

समुत्थानविशेषाश्च बुद्ध्या कर्म समाचरेत् ” ॥

अर्थ-एक दोष कुपित होकर कारणविशेषसे शरीरके भिन्न २ स्थानोंमें जाकर नानाप्रकारके रोगोंको उत्पन्न करता है इस कारण रोगकी प्रकृति, स्थान और निदानकी विशिष्टतापर विशेष ध्यान-रखकर चिकित्सा करनी चाहिये ।

अपि च “ यथा शुकृतयः सर्वविक्षु परिपतन्तः स्वच्छायां नातिवर्तन्ते तथा स्वधातुवैषम्ये निमित्ताः सर्वविकारा वातपित्तकफा नातिवर्तन्ते । वातपित्तकफानान्तु पुनः समुत्थानसंस्थानप्रकृतिविशेषान् अभिसमीक्ष्य तदात्मकानपि च सर्वविकारान्स्थानेषोपदिशन्ति बुद्धिमन्तः ”

अर्थ-जिस प्रकार पशुओं समस्त दिशाओंमें परिभ्रमण करनेपर भी अपनी छायाको उल्लंघन करनेके लिये समर्थ नहीं होता उसी प्रकार सम्पूर्ण रोग स्वधातुके विकृत होनेसे उत्पन्न हुए होनेपर भी वात,

वत और कफके उलघन करनेको समर्थ नहीं होते । इस देशके विद्वानोंने वात, पित्त और कफका निदान, धान, लक्षण, प्रकृति और समयेके विचारको हृदयङ्गम करके समस्त रोगोंको वात, पित्त और कफ इस उपत्रयके अन्तर्गत किया है । इस कारण देश, काल और पात्रके भेदसे रोग चाहे किसी प्रकारका चीन आकार क्यों न धारण करे किन्तु यह वातज, पित्तज अथवा त्रैष्टिक, द्वन्द्वज, अथवा सान्निपातिक नामसे किसी न किसी प्रकारका अवश्य होगा । आयुर्वेदीय चिकित्सक ऐसे नवीन रोगोंको देखकर कदापि भयभीत नहीं होते । महर्षियोंने समस्त रोगोंको वात, पित्त और कफ इन तीन दोषोंके अन्तर्गत करके जगतका महान् उपकार किया है । कितने ही मनुष्योंका कहना है कि—जिस प्रकार डॉक्टर लोग भेनेक यन्त्रोंके द्वारा सहजमें ही रोगोंका निर्णय करते हैं, उस प्रकार वैद्यलोग कदापि सहजमें रोगका निर्णय नहीं कर सकते । किन्तु उनकी यह बात कुछ युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती। क्योंकि—देखो ! राजयक्ष्मा या हृदयरोगमें डॉक्टरलोग (स्टेथास्कोप) नामक यंत्रके द्वारा शब्दके तारतम्यसे रोगका सिद्धान्त निश्चय करते हैं । किन्तु वैद्यलोगोंका केवल नाडीपरीक्षाके द्वारा स्पर्श मात्रके तारतम्यसे रोगका निर्णय करना जितना क्लिष्ट और सूक्ष्म है उतना स्टेथास्कोपके द्वारा वक्षस्थल या हृदयकी परीक्षा करके शब्दके तारतम्यको जानना कठिन और सूक्ष्म नहीं है । इसके अतिरिक्त महर्षियोंने आयुर्वेदीय चिकित्सकोंके लिये एक और भी उत्तम सुभीता कर दिया है कि उन्होंने प्रत्येक रोगके इस प्रकार वैशेषिक लक्षण वर्णन किये हैं कि जिनके द्वारा नाडीके बिना स्पर्श किये ही वैद्य महाशय यक्ष्मा और हृदय आदि रोगोंका सहजमें ही निश्चय कर सकते हैं । किन्तु डॉक्टर महोदय स्टेथास्कोपके सिवाय अन्य किसी प्रकार भी उक्त रोगोंके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हो सकते । अत एव जिन डॉक्टरोंकी श्रवणशक्ति नष्ट होगई है, उनके लिये राजयक्ष्मा और हृदयरोगका निर्णय करना सर्वथा असम्भव जान पड़ता है । विशेषकर जिस स्थानमें विशेष कोलाहल हो रहा हो अथवा चित्तकी प्रवृत्ति किसी अन्य विषयमें लगी हो ऐसे अवसरपर डॉक्टर महोदय कदापि उक्त रोगका परीक्षा करनेमें कृतकार्य नहीं हो सकते । अतएव स्पष्ट सिद्ध होता है कि आयुर्वेदीय वैद्योंका रोगपरीक्षाका प्रकार अत्यन्त समीचीन है ।

अन्तर्विद्रधि ( यावसेसु ) रोगके विषयमें कुछ चरकके वचन लिखते हैं । “ अथासां विद्रधीनां साध्यासाध्यत्वविशेषविज्ञानार्थं स्थानकृत्वालिङ्गविषयमुपदेक्ष्यामः । तत्र प्रधानमर्मजायां विद्रध्यां हृद्दन्त-तमकप्रमोहकासाः क्षोभजायान्तु विपाका मुखशोषगलप्रदाः, यकृज्जायां श्वासः फ्रीहजायां मुखधासो-परोधः वृकजायां पार्श्वेष्टष्टरुटिप्रहः, नाभिजायां दिक्का, कुक्षिजायां कुक्षिपार्श्वान्तरांसर्शलं, वंक्षणजायां सकृधिसादः, वस्तिजायां कृच्छ्रमूत्रपूतिवर्चस्त्वञ्चेति—

अर्थात् हृदयमें विद्रधि होनेपर हृदयमें पीडा, तमक, श्वास, इन्द्रियोंमें अज्ञान और खांसी उत्पन्न होती है । क्षोभस्थानमें विद्रधि होनेसे पियास, मुखशोष और गलस्तम्भरोग उत्पन्न होता है । यकृतमें विद्रधि होनेसे श्वास और फ्रीहाके स्थानमें विद्रधि होनेसे श्वासोच्छ्वासका अवरोध, वृकदेशमें विद्रधि होनेसे पार्श्व, पृष्ठ और कटिप्रदेश स्तब्ध होजाता है । नाभिमें विद्रधि होनेसे दिक्कारोग उत्पन्न होता है । कुक्षिमें विद्रधि होनेसे कोख, पसवाडे और स्कंधप्रदेशोंमें शूल होता है । वंक्षणमें विद्रधि होनेसे ऊरुदेशमें अवसन्नता होती है । वस्तिमें विद्रधि होनेसे मूत्रका कठिनतासे उतरना और विष्टामें दुर्गन्ध होती है । इत्यादि वैशेषिकलक्षणोंके द्वारा वर्तमान आयुर्वेदीय चिकित्सक स्थानीय अथवा यांत्रिकरोगोंके निर्णय करनेमें कदापि असमर्थ नहीं हो सकते । किन्तु यहाँ यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि, यांत्रिक परीक्षाके द्वारा यह समस्त रोग और भी स्पष्टरूपसे विदित हो जाते हैं ।

शरत्कालमें जब पित्तवृद्धि उत्पन्न होता है उसमें टेम्परेचर अर्थात् शरीरकी गर्मी अत्यन्त अधिक १०३.१०४ डिग्री तक हो जाती है, जीभ पीली पड़ जाती है, आहारमें एक साथ अनिच्छा होजाती है, तृषा, प्रलाप और हृत्की समान पतले दस्त होने लगते हैं । डॉक्टर लोग ऐसे रोगीको देखकर लक्ष-णोंके बाहुल्यमें अतिशय भयभीत होजाते हैं और तत्काल उसको रेमिटेडफीवर मान लेते हैं । उस समय

रोगीकी तात्कालिक अवस्थाको देखकर केवल लक्षणदर्शी डॉक्टर भ्रममें पड़ जाते हैं। परन्तु वैद्य महाशय ऐसे रोगीको देखकर तत्काल पित्तके प्रकोपका समय समझकर अनायास पित्तञ्जर निश्चय करते हैं। शरत्कालमें पित्तञ्जर प्राकृत होता है अतएव वह उससे कुछ भी विचलित नहीं होते क्योंकि “प्राकृतः सुखसाध्यस्तु वसन्तशरदुद्भवः” अर्थात्-उसका अथवा शरत्कालमें प्राकृतञ्जर सुखसाध्य होता है। अब प्रसंगवश प्राकृतञ्जरके लक्षण यहाँ लिखे हैं—

“वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात्” ।

अर्थात् वर्षाकालमें वातञ्जर, शरत्कालमें पित्तञ्जर और वसन्तऋतुमें कफञ्जर प्राकृत होते हैं। अतएव जब शरत्कालमें पित्तञ्जर कुपित होता है तब वह चाहे किना ही भयंकर आकार क्यों न धारण करे किन्तु गन्धर्वनगरके समान शीघ्र ही नष्ट होजाता है। इस विषयमें चरक किस प्रकार अपना वैज्ञानिक मत प्रकट करते हैं, यहाँ उसे उद्धृत करते हैं—

“ञ्जरं तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहं तुल्यदूष्यता ।

रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्” ॥

अर्थात् ञ्जरमें यदि दोषोंके साथ ऋतुकी तुल्यता हो, प्रमेहमें दोषोंके साथ दूष्यकी तुल्यता हो और रक्तगुल्म यदि पुरातन होजाय तो उपयुक्त ञ्जर, प्रमेह और रक्तगुल्म यह तीनों सुखसाध्य होते हैं। किन्तु अन्यान्य रोग दोषोंके साथ ऋतुकी तुल्यता होनेसे दोषोंके साथ दूष्यकी तुल्यता होनेसे अथवा पुरातन होजानेसे अत्यन्त कष्टसाध्य होजाते हैं। यहाँ ऋतुके साथ दोषोंकी तुल्यता क्या है उसको संक्षेपरूपसे लिखते हैं। शीतकालमें सूर्यकी किरणोंकी मृदुता, दिनकी अल्पता, रात्रिके समयकी श्रद्धि और चन्द्रमाकी किरणोंकी प्रबलता आदिके होनेसे उत्पन्न हुए शीतके प्रभावसे मनुष्योंके शरीरमें कफ संचित होता है फिर पौषके महीनेसे सूर्यके उत्तरायण होनेसे सूर्यकी किरणोंके द्वारा मनुष्योंके शरीरमें संचित हुआ कफ क्रमसे द्रवीभूत होकर वसन्तऋतुमें कुपित होता है इस कारण वसन्तऋतुको कफका समय निश्चय किया है। अतएव कफदोषके साथ वसन्तऋतुकी तुल्यता होनेसे वसन्तकालोत्पन्न कफञ्जर प्राकृत है। प्राकृतञ्जर चाहे किना ही भयंकर रूप क्यों न धारण करे किन्तु वह सुखसाध्य ही होता है। इसप्रकार वर्षाऋतुके शीतसे अभ्यस्त मनुष्योंका शरीर शरत्कालमें हठात् सूर्यकी किरणोंसे संतापित होजाता है।

वर्षामें संचित हुआ पित्त शरत्कालमें प्रकुपित होता है इसकारण शरत्काल पित्तका समय है। अतएव पित्तदोषके साथ शरद्वर्तुकी तुल्यता होनेसे शरत्कालमें पित्तञ्जर प्राकृत है। इसलिये इसकी चाहे कितनी ही भयंकर आकृति क्यों न हो किन्तु प्रकृत आयुर्वेदीय चिकित्सकगण उसको देखकर किंचित् मात्र भी भयभीत नहीं होते। यह रोग अन्य ऋतुओंमें उत्पन्न होनेसे वैकृत और अत्यन्त दुःसाध्य होता है।

उक्त साधारण रोगोंमें डॉक्टरोंके भयभीत होजानेका कारण केवल वात पित्त और कफकी अनभिज्ञता प्रतीत होती है। डॉक्टर महोदय मूत्रमें शर्करा ( चीनी ) को देखते ही अत्यन्त चमत्कृत हो जाते हैं तथा रोगको अत्यन्त गहन बताने लगते हैं। किन्तु वैद्य महाशय शर्कराको देखकर कदापि आकूलित नहीं होते। कारण कि—वह अच्छे प्रकारसे जानते हैं कि—कफजनित दश प्रकारके प्रमेहोंमें शर्करा प्रमेह भी होता है सो अत्यन्त सुखसाध्य है।

इस समय पश्चिमीय अल्लचिकित्साकी इतनी उन्नति देखकर अनेक भारतवासी कहते हैं कि—यूरोपीय अल्लचिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी अरक्षा अधिक फलप्रद एवं सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा है। किन्तु चरक, सुश्रुत प्रभृति आयुर्वेदीय ग्रंथोंके पढ़नेसे उनका यह भ्रम सहज ही दूर हो सकता है। इस देशमें भी कभी आर्य्यअल्लचिकित्साने विशेष उन्नति की थी। सुश्रुतके मतसे सम्पूर्ण अल्लचिकित्साओंकी अपेक्षा आयुर्वेदीय अल्लचिकित्सा अतिशय श्रेष्ठ समझी जाती है।

पूर्वकालमें अस्त्रचिकित्साने इतनी उन्नति की थी कि जिसकी रामायणादि पुराणोंमें अभी तक कथा सुनाई पड़ती है ।

पूर्वकालमें अस्त्र, खड्ग, गदा, मुष्टि और प्रस्तरादिके द्वारा युद्ध होता था । एक योद्धा क्रमसे आठ दश दिनपर्यन्त युद्ध करना रहता था । उस समय घनुपके द्वारा छोड़े हुए भ्रान सम्पूर्ण शरीरमें विधजाते थे । शस्त्राघातसे शरीरमें अनेक प्रकारके क्षत होजाते थे एवम् अस्थि चूर्णित, भ्रम और स्फीत होकर घोर पीडा उत्पन्न होजाती थी। उस समय हमारे पूर्वचिकित्सक शल्योद्धार, घ्नणरोपण, घ्नणशोधन, भ्रमसंधानादि चिकित्साओंके द्वारा तत्काल घ्नणकी पीडाका शमन कर देते थे । यहाँ तक कि दूसरे दिन ही योद्धा लोग फिर स्वस्थ और सबल शरीरसे संप्राम करनेमें तत्पर होजाते थे ।

इस प्रकार अनेक प्रकारकी घटनाओंको देखनेसे स्पष्टरूपसे विदित होता है कि प्राचीन समयमें इस देशमें अस्त्रचिकित्साने अत्यन्त उन्नति की थी । रामायणमें लिखा है कि—जय रावणने लक्ष्मणके हृदयमें शक्ति(शिल)का प्रहार किया था उस समय लक्ष्मणके वक्षस्थलमें क्षत और अस्थि भ्रम होकर रुधिरका वमन होने लगा था। तब सुपेण वैद्यने विशल्यकरणी, अस्थिसंधानकारिणी आदि कई एक औषधियोंके द्वारा तत्काल रुधिरको बंद करके अस्थिसंधान और घ्नणरोपण क्रिया करी थी । यह रीति आज तक भी हमारे देशमें प्रचलित है । रुधिरका वमन या रुधिरका स्राव होनेपर विशल्यकरणी व्यवहार की जाती है और आघातजनित क्षतरोगमें अस्थिसंहारिणी व्यवहृत होती है ।

अत्र आयुर्वेदीय अस्त्रचिकित्सा किस क्रमसे अवनतिको प्राप्त हुई सो कहते हैं । पहले इस देशके समस्त कृषि, मुनि, महात्मा, योगी, बड़े बड़े विद्वान्, पंडित, वैद्य और सर्वसाधारण मनुष्योंको देशी लता वृक्ष आदि वनौषधियोंके प्रत्यक्ष और आश्चर्यजनक गुण ज्ञात थे । अतएव वे अत्यन्त भयंकर क्षत और अस्थिभ्रमादि-रोगोंमें आश्चर्य और प्रत्यक्षफलप्रद साधारण लतावृक्षादि वनौषधियोंका प्रयोग करके सहजमें ही बड़े २ जटिल रोगोंको दूर कर देते थे । केवल अस्त्रचिकित्साके लिये कभी किसी भारतवासीको अन्य वैद्यका आह्वान नहीं करना पड़ता था ।

इस प्रकार जब साधारण वनौषधियोंके द्वारा बिना अस्त्रचिकित्साके ही बड़े २ भयंकर घ्नणादि रोग सहजमें आरोग्य होने लगे तब अस्त्रचिकित्सासे भारतवासियोंको अश्रद्धा और भय उत्पन्न होने लगा । उससे यहाँ तक अश्रद्धा हुई कि, वैद्यमहाशय भी क्रम २ से अस्त्रचिकित्साको बिलकुल भूल गये और अस्त्र-शिक्षाके पठन पाठनका सर्वथा त्याग कर दिया । इस प्रकार पूर्वोक्त कारणोंसे देशी अस्त्रचिकित्साकी इतनी अवनति होगयी । अभी कुछ काल पहले इस देशमें बड़े २ वैद्य विद्यमान थे, वह अनेक दुस्तर और भयंकर, क्षतादि रोगोंको एकमात्र साधारण वनौषधियोंके द्वारा आराम कर देते थे । किन्तु समयके परिवर्तनमें उक्त वैद्योंकी संख्या क्रमक्रमसे अल्प होती गई । एवं देशी औषधियोंके ऊपरसे उद्योगीके लोगोंका विश्वास और श्रद्धा उठती गई । सर्वत्र डॉक्टरों चिकित्साका प्रचार हो गया इससे प्रायः प्रत्यक्षफलप्रद समस्त देशी औषधियाँ छिप गई । आजकल डॉक्टर लोग जिन बड़े २ घ्नणोंको बिना अस्त्रचिकित्साके द्वारा आराम नहीं कर सकते, उन घ्नणोंको पहिले वैद्यलोग साधारण औषधियोंसे आरोग्य कर देते थे । अब तक भी कहीं २ साधारण आयुर्वेदीय द्रव्योंका अतुल प्रभाव देखा जाता है । पश्चिमीय चिकित्सापद्धतिके अनुसार प्रायः सब प्रकारके घ्नण मुख होजानेपर बिना अस्त्रचिकित्साके कदापि आरोग्य नहीं होसकते । परन्तु आयुर्वेदीय वैद्य सब प्रकारके घ्नणोंमें मुख होजानेपर या बिना मुख हुए ही केवल सामान्य प्रलेपादिकी औषधियोंसे आरोग्य कर देते थे ।

भारतवर्षमें नाना जातिके लता वृक्ष विद्यमान हैं । वह केवल प्रकृतिकी शोभा बढ़ानेके लिये ही नहीं हैं बल्कि अनन्तगुणसम्पन्न दिव्य वनौषधियाँ हैं । पहले इन ही वनौषधियोंके प्रभावसे भारतवासी सब प्रकारके रोगोंसे घंघित रहकर स्वस्थ शरीरसे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे । आजकल इनही वनौषधियोंकी आलोकनके अभावसे भारतवासी चिररोगी, फायर और दान हो रहे हैं । किन्तु जो सर्वदा सत्यके ऊपर स्थित हैं उनकी वार वार अवनति होनेपर भी अन्तमें अवश्य जय होती है । जगन्के

इसी नियमानुसार अब फिर आयुर्वेदकी उन्नतिको समय परिवर्तित होता दीखता है। अवनतिके घोरान्धकारको समाप्त करके आयुर्वेदशास्त्र अब फिर धीरे २ उन्नतिकी अरुण किरणोंको प्रकीर्ण करने लगा है। भारतके प्रत्येक प्रांतमें आयुर्वेदशास्त्रकी यत्किंचित् चर्चा सुनाई देने लगी है। अनेक-भारतवासी पश्चिमीय चिकित्साके चाकचक्यपर मोहित होनेपर भी एकवार फिर निराधार आर्य्यचिकित्साकी ओर झुकते दिखाई देते हैं।

वंगदेशवासी पंडितलोग आर्य्यचिकित्साको भारतकी मुख्य चिकित्सा बनानेका यत्न कर रहे हैं। उन्हींके सद् उद्योगसे भारतके अनेक स्थानोंमें आज अनेक आयुर्वेदीय विद्यालय, पाठशालायें, चिकित्सालय, शिक्षालय और औषधालय स्थापित हो रहे हैं। जिस प्रकार वंगदेशी विद्वन्मंडली आयुर्वेदका वास्तविक उद्धार करनेमें सर्वथा कटिबद्ध हो रही है उसी प्रकार दक्षिण, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य-प्रदेश और पश्चिमोत्तरदेशके मनुष्य भी आयुर्वेदके प्रचारके लिये धीरे धीरे अमसर होने लगे हैं। इस प्रकार क्रमशः हमारी भारतकी प्राचीन संस्कृत विद्या फिर उन्नतिके मार्गमें पद स्थापन करती दिखाई देती है। अनेक प्रकारके प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत ग्रंथ मूल और टीका समेत मुद्रित होते जाते हैं। एवं चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश, माधवनिदान, शाङ्गधर, चक्रदत्त और हारीतसंहिता आदि कितने ही आयुर्वेदीय ग्रंथ भी संस्कृत टीका और भाषाटीका समेत छपकर प्रकाशित हो रहे हैं।

यद्यपि आजतक उपर्युक्त चिकित्साशास्त्रसम्बन्धी चरक, सुश्रुतादि अनेक प्राचीन आर्षमन्थ विविध प्रकारसे अनेक स्थानोंमें छप चुके हैं और छपते जाते हैं किन्तु इनके द्वारा सर्वसाधारणको अधिक लाभ होता नहीं दीखता। कारण कि, चरक, सुश्रुतादि ग्रन्थ विषयोंके बाहुल्य और गहनतासे आजकलके अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको अधिक उपयोगी नहीं हो सकते। एवं भावप्रकाशादि अर्वाचीन ग्रंथें उक्त विषयोंकी संक्षिप्तता और अल्पता होनेके कारण सबको लाभकारी नहीं होसकते। अतएव इसी अभावको दूर करनेके लिये आयुर्वेदभण्डारके उज्ज्वलरत्नस्वरूप इस "वंगसेन" ग्रंथका प्रादुर्भाव हुआ है।

वैद्यभण्डारमें वङ्गसेन बहुमूल्य महाधरत है। इसकी चिकित्सापद्धति अन्य चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा अतिशय श्रेष्ठ है। जो विषय अन्य चिकित्साशास्त्रोंमें अपूर्ण हैं वे इसमें पूर्णरीतिसे वर्णन किये गये हैं। और, जो विषय अन्य ग्रंथोंमें अत्यन्त क्लिष्टतासे वर्णित हैं वे इसमें अत्यन्त सरल रीतिसे निरूपण किये गये हैं। ग्रंथकारने इसमें कितनेही नवीन रोगोंका निदान और चिकित्सा लिखी है जो कि आजकल इस देशमें अधिकतासे पाये जाते हैं। किन्तु अन्य वैद्यग्रंथोंमें उन रोगोंका कहीं नामतक भी नहीं लिखा है। ग्रंथकारने विशेषकरके इसमें प्राचीन आर्ष ग्रंथोंके क्रमसे अनुभूत सिद्धयोग कहे हैं।

जिस प्रकार इसकी चिकित्साका क्रम अतिशय श्रेष्ठ है वसी प्रकार रोगनिर्णय, वातपित्तादिदोषानिरूपण, रसरक्तादि सप्तपातुनिरूपण, वात, पित्त और कफके क्रमसे देश, काल एवं रुग्ण प्रकृतिका वर्णन, वसन्तादि पञ्चतु, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, औषधियोंके गुण दोष, निघंटुखंड, कालज्ञान, अष्टविधपरीक्षा आदि अन्यान्य विषय भी अन्य ग्रंथोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ कहे हैं। जो विषय अन्य ग्रंथोंमें आठ आठ दश २ श्लोकोंमें वर्णित हैं, वे इसमें केवल एक दो श्लोकोंमें अत्यन्त सुगम रीतिसे कहे हैं। इस ग्रंथके प्रयोगोंके अनेक ग्रंथकार अपने २ ग्रंथोंमें संग्रह करते हैं इससे भी इस ग्रंथकी उत्कृष्टता सिद्ध होती है। भिषग्शिरोमणि वङ्गसेनने ठीक आजकलके मनुष्योंकी प्रकृतिके अनुसार ही इसका रचना की है। इस ग्रंथके प्रयोग चक्रदत्त, भैषज्यरत्नावली आदि अनेक ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। आयुर्वेदीय विद्यालयोंमें यह ग्रंथ अत्यन्त आदरपूर्वक पढ़ाया जाता है।

इस ग्रंथके आधारसे जाना जाता है कि इसके बनानेवाले भिषग्वर वंगसेनका जन्म विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमें बंगालके कांतिकावास या कान्तिनगरमें गदाधर वैद्यके घर हुआ था। वंगसेनका समय चक्रपाणिदत्तसे पहले जान पड़ता है। क्योंकि इस ग्रंथके घृत तैलादि अनेक सिद्धप्रयोग चक्रपाणिदत्तने अपने ग्रंथमें संग्रह किये हैं।

“चक्रपाणिदत्त वीरभूमि देशवासी प्रसिद्ध रोध्रवल नामक दत्तकुलमें उत्पन्न नारायणदत्तका पुत्र और नरदत्तका शिष्य था और वह वैद्य भानुदत्तके अन्तरंगभावसे गौड़राज्यकी पाकशालाका अध्यक्ष हुआ था । इसका प्रादुर्भाव ७५० के लगभग जान पड़ता है ।

कितने ही वैद्य कहते हैं कि बंगसेन वैद्य अबसे अनुमान ५००साँ वर्ष पहले मुजफ्फरपुर जिलेके कांति नगरमें विद्यमान थे । हमारे प्रियवर मित्र वैद्यराज रामेश्वरानन्दजीने विशेष अनुसंधानके द्वारा निश्चय किया है कि बंगसेन अबसे ४०० वर्ष पहिले बंगालके पूर्व विभागके श्रीपुर राज्यमें उपस्थित थे । हमने भी, बंगसेनकी जीवनाके लिये बहुत प्रयत्न किया, किन्तु शीघ्रताके कारण ठीक ठीक उनकी जाति, कुल, समय आदिका पता मालूम नहीं होसका इसका हमे खेद है ।

यद्यपि यह ग्रन्थ अगतक संस्कृतमूल दो तीन स्थानोंमें छप चुका है, किन्तु केवल मूल मात्र होनेके कारण सर्वसाधारणकी उपयोगी नहीं होसकता ऐसा विचारकर सुप्रसिद्ध विद्वद्धर्य्य भूमिदायुर्वेदोद्धारक कविराज लाला शालिग्रामजीने इस बंगसेनका अनुवाद करना प्रारम्भ किया, किन्तु उसकी समाप्तिके पूर्व ही आप यक्षमारोगसे पीडित होगये । लालाजीने यक्ष्माके एक दो लक्षण प्रतीत होते ही आठ नौ महीने पहले ही मुझसे कह दिया था कि “अबकी बार सुझे, ‘जराजनित शोष’ हुआ है, अतएव मेरे शरीरका विधास मत करना और इस बङ्गसेनका अनुवाद पूर्ण कर देना तथा अन्यान्य भैषज्यभास्कर प्रभृति मेरे अपूर्ण ग्रंथोंकी पूर्ति कर देना” । मैंने उक्त कविराजकी आज्ञाको सर्वथा शिरोधार्य्य समझकर इसका अनुवाद पूर्ण किया और यथा अवकाश लालाजीके अन्यान्य ग्रन्थोंकी भी पूर्ति की जायगी ।

लाला शालिग्रामजीका जन्म वैक्रमीय संवत् १८८८ आश्विन शुक्ल तृतीयाको मुरादाबादके सुप्रसिद्ध सेठ लाला आनन्दस्वरूपके घर हुआ । आपकी रुचि कालकपनसे ही विद्या और कला कौशलमें विशेष जान पड़ती थी । यद्यपि आपकी अवस्थाका बहुतसा पूर्वभाग वाल्यक्रीडाओं ही व्यतीत हुआ था, परन्तु पीछे थोड़े ही समयमें आपने सम्पूर्ण कार्योंमें अपूर्व दक्षता प्राप्त कर ली थी ।

पौरणाम यह हुआ कि आप थोड़े ही समयमें अच्छे विद्वान् बन गये । आप बड़े परोपकारी थे । केवल परोपकारकी दृष्टिसे आपने अपने जीवनमें बहुतेरे काम किये जिनका उल्लेख करनेके लिये यहां स्थान नहीं है ।

लालाजीका अपूर्व धैर्य्य, अतुल साहस, असीम उद्योग और अद्भुत कलाकौशल आदि गुण थोड़े समयमें ही सम्पूर्ण संसारमें विख्यात होगये । आप जिस प्रकार सत्यप्रतिज्ञ और धीरचरित थे, उसी प्रकार धर्मात्माओंमें अग्रगण्य और सज्जनोंमें माननीय समझे जाते थे । जो २ गुण लालाजीमें विद्यमान थे, वे गुण आजकलके बड़े २ धीशाक्तिसम्पन्न विद्वानोंमें भी नहीं देखे जाते । आप राजनीति, धर्मनीति और समाजनीतिके पूर्ण ज्ञाता एवं देश और कालके जाननेमें प्रसिद्ध पंडित थे । पूर्व-अवस्थासे ही आपकी नीति, धर्मशास्त्र, वैद्यक, व्योतिष और साहित्यके संबंधी ग्रंथोंको पढ़नेका विशेष अनुराग था । आपने अल्प समयमें कितने ही नाटक, उपन्यास, धर्मशास्त्र और वैद्यकके विविध ग्रंथोंकी रचना की । आपके अवतक वैद्यक ग्रंथोंमें से आयुर्वेदीय औषधिकोष, राजवल्लभनिघण्टु, शालिग्रामनिघण्टुभूषण, रसरत्नाकर, भावप्रकाश, धन्वंतरि, अर्कप्रकाश, द्रव्यगुण, योपदेवशतक आदि ग्रन्थ छप चुके हैं । और शेष जो अपूर्ण ग्रन्थ हैं वे भी पूर्ण करके शीघ्र ही प्रकाशित किये जायेंगे ।

लालाजीके यद्यपि कोई पुत्र नहीं था परन्तु वे अपने दौहित्र भाई हरिशंकरको पुत्रसे भी अधिक प्रिय समझते थे, अतएव इनको वे सदैव अपने निकट रखते थे । हरिशंकरजीने भी उनके समीप रह कर उनके अनेक गुणोंका अनुकरण किया । संवत् १९५४ में उन्होंने इस नगरमें एक आयुर्वेदोद्धारक नामक औषधालय स्थापन किया और उसका सम्पूर्ण स्वत्वाधिकार मुझे और भाई हरिशंकरको प्रदान किया । आजतक हम दोनों उस औषधालयको उसी क्रमसे चला रहे हैं । जिस प्रकार प्रातःकालके छः यजेसे दश यजेतक और सन्ध्याके चार यजे से छः यजेतक लालाजी इस औषधालयमें नित्य उपस्थित होकर समस्त अभ्यागत रोगियोंका विना मूल्य औषधि और

व्यवस्थादि प्रदान दिया करते थे, उसी प्रकार हम दोनों प्रातः छः बजेसे दश बजेतक और सन्ध्याको चार बजेसे छः बजेतक औषधालयमें उपस्थित होकर समस्त अभ्यागत रोगियोंको विना मूल्य औषधि और व्यवस्थादि प्रदान करते हैं ।

जब यह बंगसेन मुझे लालाजीने अनुवाद करनेके लिये दिया था, तब इस ग्रन्थको देखकर जितनी मुझे प्रसन्नता हुई थी उतना ही दुःख भी हुआ। कारण कि—यह मूलग्रन्थ इतना ही अशुद्ध था कि इसमें कहीं २ श्लोकका आशय भी अच्छे प्रकारसे समझमें नहीं आता था । यद्यपि मैंने इसके यथामति शुद्ध किया है तथापि इसमें अशुद्धियां अवश्य रह गई होंगी अतः सहृदय पाठक मुझे अल्पज्ञ समझकर क्षमा करेंगे और पत्र-द्वारा सूचित करनेकी उदारता दिखायेंगे ।

इसके अनुवाद करने तथा बंगसेनकी जीवनी आदिके खोज करनेमें श्रीयुत-वैद्यराज पण्डित दुर्गाद-त्तर्जा—प्रान्त, मुरादाबाद । श्रीयुत, वैद्यराज-भोलानाथजी शर्मा, लाहौर । श्रीयुत वैद्य-रोमेश्वरानन्दजी, चम्बई । श्रीमान् पण्डित मुकुन्दशास्त्री ओझा-प्रपन्नाहाटी, दर्भंगा आदि महानुभावोंसे विशेष सहायता मिली थी, अतः उक्त समस्त महानुभावोंका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ ।

मैंने जिनेंद्रदेवकी कृपासे और सम्पूर्ण वृद्धवैद्योंके अनुग्रहसे लालाशालिग्रामजीकी आह्वानुसार इस ग्रन्थका अनुवाद समाप्त किया है ।

भवदीय—अनुगृहीत,

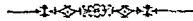
वैद्य—शंकरलाल हरिशंकर,

“आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय,”—मुरादाबाद.



श्रीः ।

# भाषाटीकासह वङ्गसेनस्थविषयानुक्रमणिका ।



विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
<b>ग्रन्थारम्भ । १</b>		औषधप्राधान्यविधि ... २४		पित्तकफाधिक सन्निपात-	
नेगलाचरण ... १		वातज्वरचिकित्सा ... ,,		ज्वरके लक्षण ... ३७	
सञ्जनप्रार्थना ... ,,		<b>पित्तज्वरचिकित्सा । २५</b>		कफवाताधिकशीघ्रकारीसन्नि-	
दुर्जनप्रार्थना ... ,,		पित्तज्वरके लक्षण ... २५		पातके लक्षण ... ,,	
<b>निदानपंचक । २</b>		चिकित्सा ... ,,		वातोल्वण विस्फोटक सन्नि-	
ऋतुप्रकरण ... ८		<b>कफज्वरचिकित्सा । २८</b>		पातके लक्षण ... ,,	
जलप्रकरण ... ,,		कफज्वरलक्षण ... २८		पित्तोल्वण आशुकारी सन्नि-	
प्रकृतिलक्षण ... ९		चतुर्भद्रावलेहिका ... २९		पातके लक्षण ... ,,	
देशप्रकृतिलक्षण ... ११		<b>वातपित्तज्वरचिकित्सा। ३०</b>		कफोल्वण कंफन सन्निपातके	
चिकित्सापादचतुष्टय ... ,,		वातपित्तज्वरके लक्षण ... ३०		लक्षण ... ३८	
वैद्यलक्षण ... ,,		चिकित्सा ... ,,		हीनवात मध्यपित्त और अधि-	
रोगीलक्षण ... १२		मधुकादि काथ ... ,,		ककफ वैदारिक सन्नि	
औषधिलक्षण ... ,,		<b>पित्तश्लेष्मज्वरचि-</b>		पातके लक्षण ... ३९	
परिचारिकलक्षण ... ,,		<b>कित्सा । ३१</b>		मध्यवात, हीनपित्त, अधिककफ-	
मान ... ,,		पित्त कफज्वरके लक्षण ... ३१		ककॉटक सन्निपातके लक्षण ,,	
त्याज्य रोगी ... १४		चिकित्सा ... ३२		अधिकवात, मध्यपित्त और	
आयुर्वेदलक्षण ... १५		अमृताष्टक ... ३३		हीनकफसंमोहकसन्निपात	
रोगागणना ... ,,		कण्टकाय्यादि ... ,,		के लक्षण ... ३९	
<b>ज्वराधिकार । १५</b>		पंचतित्तकाथ ... ,,		हीनवात वृद्धपित्त और मध्य	
उत्तम लंघन होनेके लक्षण... १९		भाङ्गथादिगण ... ,,		कफोल्वण सन्निपातके	
अत्यन्त लंघन होनेके दोष... ,,		<b>वातकफज्वरचिकित्सा। ३४</b>		लक्षण अधिकवात हीनपित्त	
ज्वरमें जलपानीविधि ... ,,		वातकफज्वरके लक्षण ... ३४		और मध्य कफजन्य सन्नि-	
ज्वरमें पेया देनेकी विधि ... ,,		चिकित्सा ... ,,		पातके लक्षण ... ,,	
आमज्वरके लक्षण ... २१		आरोग्यपंचक ... ३५		मध्यवात अधिक पित्त और	
आमज्वरमें औषधि देनेसे हानि,,		चातुर्भद्रक ... ,,		हीनकफोल्वणसन्निपातके	
पच्यमान ज्वरके लक्षण ... २२		दशमूल ... ,,		लक्षण ... ४०	
निरामज्वरके लक्षण ... ,,		घालुकास्येद ... ३६		सन्निपात चिकित्सा ... ४१	
ज्वरमें औषधि देनेका समय... ,,		<b>सन्निपातचिकित्सा । ३६</b>		उत्तम हीन और अधिक लंघन	
ज्वर पचनेकी अवधि ... ,,		सन्निपातनिदान ... ३६		होनेके लक्षण ... ४२	
वातज्वरके लक्षण ... ,,		सन्निपातके लक्षण ... ,,		तन्द्राके लक्षण ... ४८	
वातज्वरपर साधारण पाचन २३		वातपित्ताधिकं बहुसन्निपात-		अभिभ्यास ज्वरके लक्षण ४९	
औषधिप्राशनमन्त्र ... ,,		ज्वरके लक्षण ... ३७		चिकित्सा ... ५०	



विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
आगन्तुक ज्वर ...	५२	बलाघ तैल ...	७५	<b>त्रिदोषातिसार- चिकित्सा ।</b>	९६
<b>विषमज्वर ।</b>	५४	पटोलादि स्नेह ...	७७	बृहच्छालिपण्यादि ...	९६
वर्धमान पिप्पली ...	५७	पटोलाघनुवासन ...	७७	पञ्चमूलादि ...	९७
माहेश्वर घूप ...	५८	चन्दनादनुवासन ...	७६	चार घूप ...	९८
चन्दनादि घृत ...	५९	त्रिधास्नेहपाकलक्षण ...	७७	कुटज पुटपाक ...	७७
कल्याण घृत ...	७०	तैलपाकविधि ...	७७	श्योनाक पुटपाक ...	९९
महाकल्याण घृत ...	६०	आरग्वधनिरुह वस्ति ...	७७	न्यग्रोषादि पुटपाक ...	७७
पट्टपल घृत ...	७०	निरुहमात्राकल्पनाविधि ...	७७	शुण्ठी पुटपाक ...	७७
अमृत पट्टपलघृत ...	७०	धनिष्ठादिनक्षत्रोत्पन्न ज्वरावधि ...	७९	पुटपाक लक्षण ...	७७
पट्टकट्टर तैल ...	७०	धेनिष्ठादि स्वस्त्वयन ...	७९	कुटजाबलेह ...	७७
कल्के कृष्णादि गण ...	६१	सर्वोपधि वर्ग ...	८०	द्वितीय कुटजाबलेह ...	१००
लाक्षादि तैल ...	७१	पध्यापध्या ...	८१	तृतीय कुटजाबलेह ...	७७
दाह शीतादि निदान ...	७१	<b>अतिसाराधिकार ।</b>	८३	कुटजाष्टकाबलेह ...	७७
पद्मक तैल ...	६४	अतिसार निदान ...	८३	अंकोट बटक ...	१०१
रसादि धातुगत ज्वर लक्षण ...	७१	खण्ड घूप ...	७७	वत्सकाशुण्डिका ...	७७
सप्तधातुगत ज्वरचिकित्सा ...	६५	पडेग घूप ...	८४	अंकोटगुटिका ...	७७
जार्णज्वरके लक्षण ...	६६	आमपाचन विधि ...	७७	अपराजिताबलेह ...	१०२
द्राक्षादि फाद्य ...	६७	द्वितीय आमपाचन विधि ...	८५	पडङ्ग घृत ...	७७
शिरोविरेचन ...	६८	धान्यपञ्चक ...	८६	कुटजाद्य घृत ...	७७
क्षीरपाकविधि ...	६९	चतुःसमा गुटी ...	७७	सप्तान्न घृत ...	७७
कौक्कुट घृत ...	७०	काञ्चित्क हरीतकी ...	८७	महाभित्त तैल ...	७७
वासादि घृत ...	७१	कलिङ्गाद्य चूर्ण ...	७७	वातपित्तातिसारके लक्षण ...	१०३
पिप्पल्यादि तैल ...	७२	पाङ्गेरी घृत ...	७७	वातपित्तातिसारकी चिकित्सा ...	७७
क्षीरश्लेष्मा तैल ...	७२	समङ्गादि चूर्ण ...	८८	कफपित्तातिसारके लक्षण ...	७७
<b>जार्णज्वर ।</b>	७२	<b>पित्तातिसारकी चिकित्सा ।</b>	९०	वातकफादिके लक्षण ...	७७
गुडघ्न्यदि घृत ...	७२	धान्यक घृत ...	९१	चिकित्सा ...	१०५
क्षीर पट्टपल घृत ...	७२	पित्तातिसारमें फाद्य ...	७७	दुर्घातिसारकी चिकित्सा ...	७७
दशमूला क्षीरपट्टपलघृत ...	७२	<b>रक्तातिसारकी चिकित्सा ।</b>	९१	शोधातिसारचिकित्सा ...	१०६
बलाघ घृत ...	७२	हार्थेरादि ...	९१	शोक और भयातिसारकी चिकित्सा ...	७७
बृहद्भासाय घृत ...	७३	गिरेमिह्रिसि घृत ...	९२	कल्याणाबलेह ...	७७
मंजिष्ठा घृत ...	७३	पिच्छवस्ति ...	९४	आमातिसारकी चिकित्सा ...	१०७
सुरलित्याय घृत ...	७३	पाङ्गेरी घृत ...	७७	आमपाचन विधि ...	७७
पट्टपरण तैल ...	७४	<b>कफातिसार ।</b>	९५	प्रधादिकाचिकित्सा ...	७७
पट्टक तैल ...	७४	नागरादि बटक ...	९६	श्लेष्मणाघ घृत ...	१०८
अंगारक तैल ...	७४			पिच्छावति ...	७७
लाक्षादि तैल ...	७४				
गङ्गाश्लाघादि तैल ...	७४				
स्वजिष्ठादि तैल ...	७५				

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
पुरीपक्षय	... १०९	हरिद्रादि क्षार	... १२३	द्वन्द्वज ववासीरके कारण	१३६
असाध्य लक्षण	... ..	महाक्षार	... ..	त्रिदोषज ववासीरके कारण	१३७
विगतार्तासार लक्षण	... ११०	वार्ताकुण्टिका	... ..	ववासीरके पूर्व लक्षण	..
<b>ज्वरातिसार-</b>		मध्वारिष्ट	... ..	वातज ववासीरके लक्षण	..
<b>चिकित्सा ।</b>		मधुक पुष्पासव	... १२४	वातज ववासीरकी चिकित्सा	..
नागरादि	... १११	दशमूलासव	... ..	लवणादि क्षार	... ..
हानेरादि	... ..	पिंडासव	... १२५	पित्तज ववासीरके लक्षण	१३८
गुडूच्यादि	... ..	वृद्धीः चित्रकक्षार घृत...	..	पित्तज ववासीरकी चिकित्सा	..
व्योपादि चूर्ण	... ११३	शुष्कभ्रह्मणीपरघृत	... ..	कफज ववासीरके लक्षण	..
कद्वैगादि वटक	... ..	त्रिदोषज ग्रहणी	... ..	कफज ववासीरकी चिकित्सा	..
<b>ग्रहणीरोग ।</b>		शतावरी घृत	... ..	त्रिदोषज और सहज ववासी-	..
संग्रहणी पूर्वरूप	... ११४	आरुष्कर घृत	... ..	रके लक्षण	... ..
संग्रहणी निदान और रूप	... ..	संग्रहणीके लक्षण	... १२६	सहज ववासीरकी चिकित्सा	..
पिप्पल्यादि चूर्ण	... ११६	संग्रहणीकी चिकित्सा	..	सवप्रकारकी ववासीरकी	..
हिंश्वष्टक	... ..	मसूर घृत	... ..	चिकित्सा	... १३५
चित्रकादि गुटिका	... ..	<b>गोतक्रके गुण ।</b>		कृष्ण सर्पादि धूप	... ..
द्विपंचमूलाद्य घृत	... ११७	चांगेरी घृत	... ..	नुकेशादि धूप...	... १४०
पञ्चमूलाद्य घृत	... ..	वृहदांगेरी घृत	... ..	निशादि लेप	... ..
महदामि घृत	... ११८	अष्टपलक घृत	... १३०	सिद्धयोग	... ..
शुण्ठी घृत	... ..	भिल्वादि घृत...	... ..	त्र्यूपणाद्य चूर्ण	... ..
वृहदांगेरी घृत	... ११९	बृहन्मसूरिदि घृत	... ..	पूतिकादि योग	... ..
पित्तज ग्रहणी	... ..	कापित्याष्टक	... ..	विडंगसारादि काथ	... १४१
रसाञ्जनादि चूर्ण	... ..	मधूकपुष्पासव	... ..	गुडाय चूर्ण	... ..
पाठादि काथ चूर्ण	... ..	कल्याण गुड	... ..	हरिद्रादि प्रलेप	... ..
नागराद्य चूर्ण	... १२०	महाकल्याणगुड	... ..	गुदस्वेद	... १४२
तेजुलोदक विधि	... ..	द्वितीय कल्याणगुड	... १३२	घृतभाजित हरीतकी	... ..
भूनिम्ब घ चूर्ण	... ..	तृतीय कल्याणगुड	... १३३	अपामार्गोदि योग	... ..
पाठाद्य चूर्ण	... ..	चतुर्थ कल्याणगुड	... ..	तिलादियोग	... ..
चन्दनाद्य घृत	... ..	कूष्माण्ड कल्याण गुड	... १३४	सूरण पुटपाक	... ..
किराताद्य घृत	... १२१	बहुशा लिगुड...	... ..	कृष्ण तिलादि प्रयोग...	..
मसूरादि घृत	... ..	सार कल्प	... १३५	वार्ताक पुटपाक	... ..
कलिंग घृत	... ..	अपराजितावेल्ह	... ..	गुड हरीतकी...	... ..
कफग्रहणी रोगकी चिकित्सा	..	<b>अर्शरोग ।</b>		वक्र योग	... ..
यवागुविधि	... १२२	अर्शरोगकी संख्यापूर्वक	... १३६	पाठादि योग	... १४३
पिप्पल्यादि चूर्ण	... ..	संग्रहीत	... ..	शीणित्तलाव विधि	... ..
भल्लातक क्षार	... ..	वातज ववासीरके कारण	..	बदकपट्टपलघृत	... ..
दुरालभादि क्षार	... १२३	पित्तज ववासीरके कारण	..	पलाशक्षारघृत	... ..
भूनिम्बादि क्षार	... ..	कफज ववासीरके कारण	..	चव्याद्यघृत	... ..

विषय.	पृ.	विषय.	पृ.	विषय.	पृ.
हीरेगादि पूज	१४४	लोहाष्टक	१५७	आनागोर्नि	११
अग्निपूज	११	बध्यास लोह	१५८	विदग्धाजीर्ण लक्षण	११
गृहदग्नि पूज	११	नंबर लोह	११	विदग्धाजीर्ण लक्षण	११
कासीसादि तैल	१४५	लोह परिपाकके लक्षण	१६१	रमणोगोर्नि लक्षण	१७७
गृहदग्नीर्णसादि तैल	११	रक्ताशनिदान ।	१६१	अजीर्णोपद्रव	११
दन्त्यादि तैल	१४६	यातःपुनःपन्थ	१६२	अजीर्णोर्ध्व विविक्ता	११
सैन्धवादि घूर्ण	११	सामान्य चिकित्सा	११	द्वितीयष्टक घूर्ण	१७८
कटुद्रवादि घूर्ण	११	चन्द्रनादि द्वाय	११	अग्निपुर घूर्ण	११
कल्याणलक्षण	११	नखनीतादि योग	११	द्वितीय अग्निपुर घूर्ण	१७९
समप्रकर्ष घूर्ण	११	कमलपेशरतादि	११	भारहरलक्षण	१७९
व्योषादि घूर्ण	११	पेया	११	पटपानल घूर्ण	१८०
फल्गवर्त तैल	१४७	कुटजादि घृत	१६३	दिगुजादराक घूर्ण	११
विजयघूर्ण	११	अवाक्युर्णा घृत	११	गृहदग्निपुर घूर्ण	११
दन्त्यगिष्ट	११	महाचामेरी घृत	१६४	कटपामुस घूर्ण	१८१
चतुस्त्रम मोदक	१४८	कुटजरम मिषा	१६५	ज्वालामुख घूर्ण	११
भ्यन्तमूर्ण मोदक	११	हृदजलेद	११	शुषुकादराक घूर्ण	११
सुरणपिण्डी	११	त्रिप्रहादि भद्रादकावसेह	१६६	समसर्कर घूर्ण	११
गृहदग्निमोदक	११	सूत्र कथन	११	मरिचादि घूर्ण	११
अमृत्यमोदक	१४९	क्षारमूत्र	११	नागरादि घूर्ण	११
शानना गुटिका	११	कालपुष्पादिश्रार	१६७	मस्तुपदपलघृत	१८२
वांशायन मोदक	१५०	अमयगिष्ट	१६८	महापदपल घृत	११
भक्षानक गुड	११	चन्द्रप्रहार	११	मरिचादि घृत	११
भक्षतकावलेद	१५१	गुदाविशरण	११	धान्यजीरक घृत	१८३
पत्रोलाचवलेद	११	कफिधारा घृत	१७१	धान्यघृत	११
भल्लतकविधान	१५२	प्रतिमारणमात्रा	११	जीरकघृत	११
योगराजगुग्गुलु	११	धर्महीलक्षण	१७२	धान्यकघृत	११
श्रीवाःशालगुड	१५३	साध्यासाध्यता	११	अग्निपूत	११
गुटकाक	१५४	सुरमाध्यलक्षण	११	अस्त्रचुक	१८४
लोहवर्णन ।	१५४	कटसाध्यलक्षण	११	चुकसन्धानविधान	११
गृह लक्षण	१५४	असाध्यलक्षण	११	गृहदग्निपुरसन्धानविधान	११
कुण्ड लक्षण	११	वायु लक्षण	१७३	चित्रगुड	११
कण्डार लक्षण	११	अजीर्णनिदान ।	१७३	क्षारगुड	१८६
मुंजजातिमृदुलोहगुण	११	चिकित्सा	१७४	द्वितीय क्षारगुड	११
वीक्षणभेद	१५५	अष्टमंड घुण	११	त्रिपूचिकादिनिदान ।	१८६
कान्तलोहभेद	११	अग्निमांशकी चिकित्सा विधि	१७५	विषधिकाके लक्षण	१८६
सर योगर दृन्ताल वाजरादि	११	अजीर्णयोग	११	अलसकेके लक्षण	११
लोहके भेद	११	अजीर्णनिदान	१७६	विलम्बिकाके लक्षण	१८७
सरलोह गुण	११	धमन्याजीर्णलक्षण	११	अजीर्णमें आमके कार्य	११
अग्निमुखलोह	१५७				

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
असाध्य लक्षण ...	१८७	कटुकाद्य घृत ...	१९८	पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण	२०८
जीर्णाहारके लक्षण ...	"	व्योपादि घृत ...	१९९	द्वन्द्वजऔर सन्निपातज रक्त-	
विपचिकाके उपद्रव ...	१८८	देवदाव्यादिघृत ...	"	पित्तके लक्षण	"
चिकित्सा ...	"	रजानेत्रिकला घृत ...	"	रक्तपित्तके उपद्रव ...	२०९
भर्करसादि तैल ...	"	दन्तीघृत ...	"	असाध्य लक्षण	"
अंजन ...	१८९	योगराज ...	"	चिकित्सा	"
द्वितीय अंजन ...	१९०	शिवगुटी ४। ...	२००	पत्रादि-चूर्ण	२११
<b>भस्मकनिदान-चि० । १९०</b>		ज्यूपणादिवटी ...	"	श्यामाघृत	२१६
<b>कृमिरोगनिदान । १९१</b>		<b>कामलारोगनिदान । २०१</b>		दूर्वाद्य तैल	"
पेटमें कृमि होजानेके लक्षण १९१		कुम्भकामला ...	२०१	तृणपञ्चमूली क्षीर	"
चिकित्सा ...	१९२	चिकित्सा ...	"	चन्दनाद्य चूर्ण	"
त्रिफलादि घृत ...	१९३	अष्टादशंग गुटिका ...	२०२	दूर्वाद्य घृत	२१७
विडंगादि घृत ...	"	धात्रीलोह ...	"	महादूर्वाद्य घृत	"
पिप्पलादि चूर्ण ...	१९४	हरिद्रादि घृत ...	२०३	शुंगाद्य घृत	२१८
सावित्रवटक ...	"	गुडूची घृत ...	"	शतावरी घृत	"
मशकहर घृत ...	१९५	<b>पाण्डुरोगका भेद</b>		बृहच्छतावरी घृत	"
सुजंगादिनाशक धूप ...	"	<b>हलीमक । २०३</b>		वासाद्य घृत	"
विडंग तैल ...	"	पानकीके लक्षण ...	२०४	वासाघृत	२१९
अपथ्य ...	"	चिकित्सा ...	"	बृहद्वासाघृत	"
<b>पाण्डुरोग । १९५</b>		सिताद्यवलेह ...	"	कामदेवघृत	"
पाण्डुरोगके पूर्वलक्षण... १९५		अमृतादि घृत ...	"	अनंतादिघृत	२२०
पाण्डुरोगके उत्पन्न होनेके कारण ...	"	नवायसचूर्ण ...	"	दूर्वादि तैल	"
पाण्डुरोगका पूर्वरूप... १९६		मण्डूरवटक ...	२०५	मधुकादि गुटिका	"
वातज पाण्डुरोगके लक्षण	"	बृहन्मण्डूरवटक ...	"	खण्डकूष्माण्ड	२२१
पित्तज पाण्डुरोगके लक्षण	"	निम्बादिगुटिका ...	"	द्वितीय खण्डकूष्माण्ड	"
कफज पाण्डुरोगके लक्षण	"	मण्डूर गुटिका ...	२०६	वासाखण्ड	२२२
असाध्य पाण्डुरोगके लक्षण	"	विभीतक्यादि गुटिका	"	सूरणनाक	"
सृत्तिकामुक्षणजन्य पाण्डुरोग	"	मण्डूरवज्रवटक ...	"	द्वितीय वासाखण्ड	"
विशेष लक्षण ...	१९७	विडंगाद्यवलेह ...	"	खण्डखाद्य लोह	२२३
असाध्य लक्षण ...	"	आमलक्यवलेह ...	२०७	अमृताक्ष्य लोहरसायन	"
चिकित्सा ...	"	खदिरलेह ...	"	खण्डादि-लोह	२२४
दशमूलादि काद्य ...	"	कल्याणगुड ...	"	<b>राजयक्ष्मनिदान । २२६</b>	
लौहादि मोदक ...	१९८	पुनर्नवादि काय	"	पूर्वलक्षण	२२६
मूर्वादि घृत ...	"	पथ्य ...	"	राजयक्ष्मके त्रिरूपलक्षण	"
		<b>रक्तपित्तनिदान । २०८</b>		पदरूपलक्षण	"
		पूर्वलक्षण ...	२०८	दोषभेदेस एकादशरूपलक्षण	२२७
		श्लैष्मिक रक्तपित्तके लक्षण	"	द्वितीय पदरूपलक्षण	"
		वातिक रक्तपित्तके लक्षण	"	साध्यासाध्यता	"

विषय.	पृ.	विषय.	पृ.	विषय.	पृ.
यत्रायशोकादिजन्य क्षयरौ-		उरुचटाद्य मोदक ...	२४०	उरःक्षतजकासरोग-	
गके लक्षण ...	२२७	क्षतक्षयाधिकार ।	२४०	निदान ।	२५२
व्यवायशोषोके लक्षण ...	२२८	पूर्वरूप ...	२४१	चिकित्सा ...	२५२
शोकशोषोके लक्षण ...	"	असाध्य लक्षण ...	"	इक्ष्वाद्यवलेह ...	"
जराशोषोके लक्षण ...	"	अन्यथ ...	२४२	क्षीरपाक ...	२५३
अध्वशोषोके लक्षण ...	"	चिकित्सा ...	"	वासकूपमाण्ड ...	"
व्यायामशोषोके लक्षण ...	"	एलादि गुटिका ...	२४३	क्षयजकासनदान ।	२५३
व्रणशोषोके लक्षण ...	"	यष्ट्याह घृत ...	"	चिकित्सा ...	२५४
चिकित्सा ...	"	यलादि घृत ...	"	पिप्पल्यादि घृत ...	"
पटङ्गयूप ...	२२९	श्वदंष्ट्रादि घृत ...	"	कुलीरादि घृत ...	"
जीवन्त्याद्यनुवर्तन ...	२३१	त्राक्षादि घृत ...	"	द्विपंचमूलादि घृत ...	"
सितोपलादिलेह ...	२३२	अमृतप्राश ...	२४४	अश्वगन्धादि-घृत ...	२५५
तालीसादि चूर्णगुटिका ...	"	सार्पगुड ...	"	पिप्पल्याद्यवलेह ...	२५६
महातालीसादि चूर्ण ...	"	सर्पिमोदक ...	२४५	क्षयकास ...	"
तालीसादि चूर्ण ...	२३३	कासरोगनिदान ।	२४६	कासश्वास ...	"
कर्पूरादि चूर्ण ...	"	पूर्वरूप ...	२४६	धूमपान ...	२५७
जातीफलादि चूर्ण ...	"	वातज कासके लक्षण ...	"	कण्टकार्यादि काथ ...	"
शृंगादि चूर्ण ...	२३४	चिकित्सा ...	"	कुण्डल्यादि लेह ...	२५८
यवान्यादि चूर्ण ...	"	दशमूलादि घृत ...	२४७	हरीतक्यादि मोदक ...	"
सूक्ष्मैलादि चूर्ण ...	"	भाङ्ग्यादि घृत ...	"	समशर्कराचूर्ण ...	"
अमृतादि घृत ...	"	राह्यादि घृत ...	"	बृहत्समशर्करे चूर्ण ...	"
वासादि घृत ...	२३५	चित्रकाद्यवलेह ...	२४८	मारिचादि चूर्ण ...	"
यलादि घृत ...	"	पित्तजकासनदान-		विभीतकावलेह ...	"
खर्जुरादि चूर्ण ...	"	पूर्वकचिकित्सा ।	२४८	जीवन्त्यादि चूर्ण ...	"
एलादि मन्थ ...	"	पदप्रस्थ घृत ...	२४९	पद्माकादि चूर्ण ...	२५९
दशमूलोत्थत घृत ...	२३६	द्वितीय क्षीरघृत ...	"	सिंहामृतघृत ...	"
पटङ्ग घृत ...	"	कफकासानिदान		कण्टकारि घृत ...	"
जीवन्त्याद्य घृत ...	"	चिकित्सा ।	२४९	द्वितीयकण्टकारि घृत ...	"
पिप्पलीघृत ...	"	नवांगयूप ...	२४९	तृतीय कण्टकारि घृत ...	"
पाराशरघृत ...	"	शटथादि घृत ...	"	बृहद्वासकादि घृत ...	२६०
श्वदंष्ट्रादि घृत ...	"	बृहत्कटकार्यादि घृत ...	२५०	कण्टकारि लेह ...	"
छागलाद्य घृत ...	२३७	व्योपाद्य घृत ...	"	व्याघ्री हरीतकी ...	२६१
बलागर्भ घृत ...	"	निर्गुण्डी घृत ...	"	बृहद्गस्त्य हरीतकी ...	२६२
चन्दनादि तैल ...	"	कदफलादि काथ ...	२५१	वसिष्ठ हरीतकी ...	"
शतपाक तैल ...	२३८	लवंगादिसमशर्कराचूर्ण ...	"	कुलित्य गुड ...	२६३
वासावलेह ...	"	दशमूलाद्य घृत ...	"	द्वितीयकुलित्य गुड ...	२६
सार्पगुड ...	"	शृंगराज तैल ...	"		
च्यवनप्राशावलेह ...	२३९				

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
<b>हिक्काधिकार ।</b>	२६४	शुगादि घृत	२७७	अन्नजाके लक्षण	२२१
सम्प्राप्ति	२६४	निदाधिकारदि लेह	२७८	उपसर्गजाके लक्षण	२२१
पूर्वरूप	२६५	चव्यादि चूर्ण	२७९	चिकित्सा	२९२
अन्नजाके लक्षण	२६५	कण्टकारीघृत	२८०	वाततृषा	२९२
यमलाके लक्षण	२६५	<b>अरोचकाधिकार ।</b>	२७९	पित्ततृषा	२९२
क्षुद्राके लक्षण	२६५	अदाचि चिकित्सा	२७९	कफतृषा	२९२
गम्भीराके लक्षण	२६५	कलहंस कांजी	२८१	क्षयजतुपाकी चिकित्सा	२९४
महाहिक्काके लक्षण	२६५	दाडिमादि चूर्ण	२८१	<b>मूर्च्छाधिकार ।</b>	२९५
असाध्य लक्षण	२६५	खाण्डव चूर्ण	२८२	पूर्वरूप	२९५
चिकित्सा	२६६	महाखाण्डव चूर्ण	२८२	वातजमूर्च्छाके लक्षण	२९५
सुपुतिक्रीटाद्य चूर्ण	२६७	यवान्खाण्डव चूर्ण	२८३	पित्तजमूर्च्छाके लक्षण	२९६
तारीक्षीराद्य घृत	२६७	लवंगादि चूर्ण	२८३	कफजमूर्च्छाके लक्षण	२९६
दशमूलाद्य घृत	२६८	सूक्ष्मलादि चूर्ण	२८३	सान्निपातिक मूर्च्छाके लक्षण	२९६
<b>श्वासरोगाधिकार ।</b>	२६८	व्याघ्री घृत	२८३	रक्तजमूर्च्छाके लक्षण	२९६
पूर्वरूप	२६८	<b>छर्दिरोगाधिकार ।</b>	२८३	महा और विपकी मूर्च्छाके लक्षण	२९६
महाश्वसके लक्षण	२६९	पूर्वरूप	२८४	हृमके लक्षण	२९७
ऊर्ध्वश्वसके लक्षण	२६९	वातछर्दिके लक्षण	२८४	तन्द्राके लक्षण	२९७
छिन्नश्वसके लक्षण	२६९	असाध्य लक्षण	२८४	संन्यासके लक्षण	२९७
समकश्वसके लक्षण	२६९	चिकित्सा	२८४	चिकित्सा	२९७
प्रतमकश्वसके लक्षण	२७०	पित्तछर्दिके लक्षण	२८५	श्रमताशीनी गुदेका	२९८
क्षुद्रश्वसके लक्षण	२७०	चिकित्सा	२८५	<b>मदात्ययाधिकार ।</b>	२९९
श्वसादिकी चिकित्सा	२७१	कफछर्दिके लक्षण	२८६	मदात्ययका निदान	२९९
शृंग्यादिचूर्ण	२७२	चिकित्सा	२८६	त्रिगुण मदके लक्षण	३००
शङ्खादिचूर्ण	२७३	त्रिदोषज छर्दिके लक्षण	२८६	वातज मदात्ययके लक्षण	३०१
हिंसादि घृत	२७३	असाध्य लक्षण	२८६	पित्तज मदात्ययके लक्षण	३०१
सौवर्चलादि घृत	२७३	चिकित्सा	२८७	कफज मदात्ययके लक्षण	३०१
कुलित्यादि घृत	२७३	मनःशिलादिलेह	२८८	त्रिदोषजनित मदात्ययके लक्षण	३०१
तिक्तादि घृत	२७३	पद्मकादि घृत	२८९	परमदके लक्षण	३०१
द्वितीय कुलित्यादि घृत	२७४	आगन्तुजछर्दिनिदान	२९०	पानाजीर्णके लक्षण	३०२
सुवहादि घृत	२७४	चिकित्सा	२९०	पानविभ्रमके लक्षण	३०२
शुंगराजतैल	२७४	छर्दिचिकित्सा	२९०	असाध्य लक्षण	३०२
क्षीरपिप्पली	२७४	उपद्रव	२९०	उपद्रव	३०२
माहर्गुड	२७४	<b>तृषारोगाधिकार ।</b>	२९०	ध्वंसक और विशेषके लक्षण	३०२
कुलित्यगुड	२७५	वातजतृषानिदान	२९०	चिकित्सा	३०३
<b>स्वरभेदरोगाधिकार ।</b>	२७५	पित्तजतृषाके लक्षण	२९१	अष्टांग लक्षण	३०३
असाध्यके लक्षण	२७५	क्षतजतृषाके लक्षण	२९१	चव्यादि चूर्ण	३०३
चिकित्सा	२७५	क्षयजतृषाके लक्षण	२९१	मधुत्रिकलागुद्गादिक योग	३०३
कासमर्दादि घृत	२७५	आतमजाके लक्षण	२९१		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
शतावरीपुनर्वादि घृत ...	३०४	विगतोन्मादके लक्षण ...	३१६	दिगु तैल ...	३२५
त्याज्यरोगी ...	३०५	भूतौन्मादके लक्षण ...	"	जीवनीय यमक ...	"
<b>दाहरोगनिद्रा नाधिकार ।</b>	<b>३०५</b>	द्वैपमहमासितके लक्षण ...	"	<b>घातव्याधि- निदान ।</b>	<b>३२५</b>
चिकित्सा ...	३०५	असुरमहजुष्टके लक्षण ...	"	पूर्वरूप और रूप ...	३२६
शामलक्यादि खंभ ...	३०६	गन्धर्वमहमासितके लक्षण ...	"	फोटाभित वायुके कार्य ...	"
कुशादिघृत तैल ...	"	यक्षमहमासितके लक्षण ...	"	सर्वांगकुपित वायुके कार्य ...	"
रक्तज दाह ...	"	पित्तमहमासितके लक्षण ...	"	गुदामें स्थित वायुके कार्य ...	"
चिकित्सा ...	३०७	सर्पमहमासितके लक्षण ...	३१७	आमाशय स्थित वायुके कार्य ...	३२७
तृषानिरोधज दाह ...	"	राक्षसमहमासितके लक्षण ...	"	पपाशयस्थवायुके कार्य ...	"
चिकित्सा ...	"	प्रक्षाराक्षसमसितके लक्षण ...	"	इन्द्रियोंमें स्थित वायुके कार्य ...	"
रक्तपूर्णाघोज दाह ...	"	पिशाचमसित उन्मादके लक्षण ...	"	रसधातुगत वायुके लक्षण ...	"
चिकित्सा ...	"	असाध्य लक्षण ...	"	रक्तगत वायुके लक्षण ...	"
उन्मादरोगाधिकार ।	३०८	देवादिकोंका आवेदाका समय ...	"	मांसमेदोगत वायुके लक्षण ...	"
उन्मादके सामान्य फारण और सम्प्राप्ति ...	३०८	महाधूप ...	३१८	मज्जास्थित वायुके लक्षण ...	"
उन्मादका पूर्वरूप ...	"	<b>अपस्माररोगा- धिकार ।</b>	<b>३१८</b>	गुणगतवायुके लक्षण ...	"
घातज उन्मादके लक्षण ...	"	अपस्मारका निदान ...	३१९	शिरागतवायुके लक्षण ...	"
पित्तज उन्मादके लक्षण ...	३०९	अपस्मारका पूर्वरूप ...	"	स्तायुगत और सन्धिगत वायुके लक्षण ...	३२८
कफज उन्मादके लक्षण ...	"	वातज अपस्मारके लक्षण ...	"	पित्तकफाश्रित प्राणवायुके कार्य ...	"
सन्निपातज उन्मादके लक्षण ...	"	पित्तज अपस्मारके लक्षण ...	"	पित्तकफाश्रित उदानवायुके कार्य ...	३२८
शोकज उन्मादके लक्षण ...	"	कफज अपस्मारके लक्षण ...	"	पित्तकफाश्रित सामानवायुके कार्य ...	"
विषज उन्मादके लक्षण ...	३१०	त्रिदोषज अपस्मारके लक्षण ...	३२०	पित्तकफाश्रित अपानवायुके कार्य ...	"
उन्मादके असाध्य लक्षण ...	"	असाध्य लक्षण ...	"	पित्तकफाश्रित व्यानवायुके लक्षण ...	"
चिकित्सा ...	"	अपस्मारके वेगका समय ...	"	चिकित्सा ...	३२९
सिद्धार्धकाशञ्जन ...	"	चिकित्सा ...	"	वेशवार ...	"
च्यूपणादि घृत ...	३१२	जलमृतके लक्षण ...	३२१	वाजिगन्धादि गण ...	"
सारस्वत घूर्ण ...	"	पल्लकपा तैल ...	३२३	रसोन पेय ...	"
हिम्वादि घृत ...	३१३	त्रिफला तैल ...	"	स्वल्प रसोन पिण्ड ...	३३०
महापेशाधिक घृत ...	"	माही घृत ...	"	लघुन योग ...	"
सारस्वत घृत ...	"	कूपमाण्डक घृत ...	"	साल्वण स्वेद ...	३३१
पानीयकेल्याण घृत ...	३१४	स्वल्पपंचगव्य घृत ...	३२४	महासाल्वण स्वेद ...	"
महाकल्याण घृत ...	"	महापंचगव्य घृत ...	"	तीन काथ ...	३३२
चैतस घृत ...	"	महाचैतस घृत ...	"	पट्टधरण योग ...	"
द्वितीय चतस घृत ...	३१५	काथकी विधि ...	"		
निशादि घृत ...	"	मधूक घृत ...	३२५		
चन्दनादि तैल ...	"	कादमरी घृत ...	"		
		वचादि घृत ...	"		
		कटभी तैल ...	"		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
केतकथादि तैल ...	३३३	भक्षतकादि घृत ...	३४०	बलाशैरीय तैल ...	३४८
घलादि घृतमण्ड ...	"	मूक मिन्मिण और गद्रदका	"	महाबला तैल ...	"
हनुमदके लक्षण ...	३३४	निदान ...	"	द्वितीय महाबला तैल ...	३४९
चिकित्सा ...	"	उपरोक्त तीनों रोगोंकी चि०	"	सहचरादि तैल ...	३५०
जिह्वास्तम्भके लक्षण ...	३३५	सारस्वत घृत ...	"	महासहचरादि तैल ...	"
चिकित्सा ...	"	कल्याणकलेह ...	३४१	विष्णुप्रोक्त अंगवर तैल	"
मन्यास्तम्भके लक्षण ...	"	मूत्रावरोधके लक्षण ...	"	महाकल्याणक तैल ...	३५१
मन्यास्तम्भकी चिकित्सा	"	स्थान नाम लक्षणके अनुसार	"	स्वल्पनारायण तैल ...	३५२
कुञ्जलक्षण ...	"	वातव्याधिनिदान ...	"	मध्यम नारायण तैल ...	"
कुञ्जकी चिकित्सा ...	"	आक्षेपकवातके सामान्य ल०	"	महानारायण तैल ...	३५३
शिरोग्रहके लक्षण ...	"	आक्षेपवायुके अपतन्त्रक और	"	मापतैल ...	३५४
शिरोग्रहकी चिकित्सा ...	"	अपतानक इन दोनों भेदोंकी	"	वृहन्मापादि तैल ...	३५५
बाहुशोषका निदान ...	"	अवस्थाविशेष ...	"	महामापादि तैल ...	"
गृध्रसीके लक्षण ...	३३६	दण्डापतानकके लक्षण ...	३४२	सामिप महामाप तैल ...	३५६
विश्वार्चके लक्षण ...	"	धनुस्तम्भके लक्षण ...	"	शतावरीआदिको खोदनेका मंत्र	३५७
बाहुशोषकी चिकित्सा ...	"	अन्तरायामके लक्षण ...	"	महामाप तैल ...	३५८
मापतैल ...	३३७	बाह्यायामके लक्षण ...	"	मापतैल ...	"
खज और पंगुके लक्षण	"	आक्षेपकके भेद ...	"	चतुर्विंशतिका प्रसारिणी तैल	३५९
कलाय खजके लक्षण ...	"	असाध्यत्व ...	"	शुक्त बनानेकी विधि ...	३६०
पादहर्षके लक्षण ...	"	चिकित्सा ...	"	पंचपद्मके द्वारा शुद्धि	"
पाददाहके लक्षण ...	"	महाक्लेह ...	३४३	नखशुद्धि ...	३६१
क्रोण्टुशर्पके लक्षण ...	"	तिल्वक-घृत ...	"	हारिद्रावचाशुद्धि ...	"
वातकण्ठके लक्षण ...	"	मरिचादि-नस्य ...	३४४	मस्तकशुद्धि ...	"
चिकित्सा ...	"	विभीतकादि चूर्ण ...	"	शैलजशुद्धि ...	"
वाताघ्निला निदान ...	३३८	पक्षाघातके लक्षण ...	"	खट्वाशीशुद्धि ...	"
प्रत्यघ्निलाके लक्षण ...	"	पक्षाघातकी चिकित्सा ...	३४५	शिलारसादि शुद्धि ...	"
दोनोंकी चिकित्सा ...	३३९	मोपीदि-नेह्यं ...	"	महामापतैल ...	३६२
तूनों निदान ...	"	मन्थिकादि तैल ...	"	शतकप्रसारणी तैल ...	३६३
प्रातिवृत्तिके लक्षण ...	"	मापतैल ...	"	त्रिशतीप्रसारणी तैल ...	"
दोनोंकी चिकित्सा ...	"	आदित्यपाक गुग्गुलु ...	३४६	कुञ्जप्रसारिणी तैल ...	३६४
तन्द्राके लक्षण ...	"	एरण्डादि-गुग्गुलु ...	"	सप्तशतिका महाप्रसारिणीतैल	"
तन्द्राकी चिकित्सा ...	"	त्रयोदशांग गुग्गुलु ...	"	महाप्रसारिणी तैल ...	३६५
आध्मानके लक्षण ...	"	स्यायंभुवगुग्गुलु बटी ...	३४७	गन्धहस्ती प्रसारिणी तैल	"
प्रत्याध्मानके लक्षण ...	"	पत्रलवण और स्नेहलवण	"	अष्टादश शतक प्रसारिणीतैल	३६७
आध्मानकी चिकित्सा ...	"	तिल्वकालय घृत ...	"	अजितप्रसारिणी तैल ...	३६८
प्रत्याध्मानकी चिकित्सा	३४०	रास्नादि-घृत ...	"	रसोन तैल ...	३७१
कंपवातके लक्षण ...	"	अश्वगन्धादि घृत ...	३४८	मूलकादि तैल ...	"
खट्वाके लक्षण ...	"	दशमूलादि घृत ...	"	दशमूलादि तैल ...	"
कंप और खट्वावातकी चि०	"	छागलादि घृत ...	"	अश्वगन्धादि तैल ...	३७२



विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
शतावरी तैल ...	३७२	नवकार्षिक फाथ ...	३८५	साध्यासाध्य विचार ...	४०४
पथ्य ...	३७३	बलाघृत ...	३८७	आमवातकी चिकित्सा	"
साध्यासाध्यता ...	"	शजावरी घृत ...	"	फटिप्रहके लक्षण ...	४०६
<b>अर्दितरोगनिदान।</b> ३७३		गुहूची घृत ...	"	फटिप्रहकी चिकित्सा ...	४०७
वातार्दितके लक्षण ...	३७४	अमृतादि घृत ...	"	अमृतादि चूर्ण ...	"
पित्तजनित अर्दितके लक्षण	"	द्वितीय अमृतादि घृत ...	"	लघुरास्नादि ...	"
कफजनित अर्दितके लक्षण	"	द्वितीय गुहूची घृत ...	"	महारास्नादि ...	"
मिश्रित अर्दितके लक्षण ...	"	अमृतादि घृत ...	३८८	रान्नादशमूल फाथ ...	४०८
असाध्य लक्षण ...	"	महागुहूची घृत ...	"	अलम्बुयादि चूर्ण ...	"
अर्दित रोगकी चिकित्सा	"	पिण्डतैल ...	३८९	आभादि चूर्ण ...	४०९
दशमूलादिक्षीरतैल ...	३७५	द्वितीय पिण्डतैल ...	"	द्वितीय अलम्बुयादि चूर्ण ...	"
<b>ग्रधसीनिदान।</b> ३७६		गुहूचीतैल ...	"	वैश्वानर चूर्ण ...	"
वातजं ग्रधसीके लक्षण ...	३७६	अमृताह्वयतैल ...	"	शुण्ठी घृत ...	"
वातकफजनित ग्रधसीके ल०	"	नागवलयतैल ...	३९०	द्वितीय शुण्ठी घृत ...	४१०
ग्रधसीकी चिकित्सा ...	"	दशापाकबला तैल ...	"	कांजिकादि घृत ...	"
दशमूलकी औषधि ...	"	शतपाकसहस्रपाकबला तैल	"	शुंगवेरादि घृत ...	"
पथ्यादि गुग्गुलु ...	३७८	पुनर्नवा गुग्गुलु ...	३९६	अजमोदादि घटक ...	"
लशुनादि घृत ...	३७९	अमृतादि गुग्गुलु ...	३९२	योगराजगूढक ...	४११
अश्वगन्धातैल ...	"	सूर्यप्रभावटिका ...	"	शुण्ठी खण्ड ...	"
सैन्धवादि तैल ...	"	केशोर गुग्गुलु ...	३९४	रसोन पिण्ड ...	४१२
गोक्षुरादि तैल ...	"	सिंहनाद गुग्गुलु ...	"	प्रसारिणी तैल ...	"
<b>वातरक्ताधिकार।</b> ३८०		द्वितीय सिंहनाद गुग्गुलु ...	३९५	द्विपंचमूलादि तैल ...	"
वातरक्ता निदान ...	३८०	चन्द्रप्रभावटिका ...	३९६	बृहत्सैन्धवादि तैल ...	"
वातरक्तको सम्प्राप्ति ...	"	शिलाजितुशोधन विधि ...	३९८	निरूह ...	४१३
वातरक्तके पूर्वलक्षण ...	"	योगसारामत ...	३९९	पथ्यापथ्य ...	"
वाताधिक वातरक्तके लक्षण	३८१	पथ्य ...	"	<b>शूलरोगाधिकार।</b> ४१४	
रक्ताधिक वातरक्तके लक्षण	"	<b>ऊरुस्तम्भाधिकार।</b> ३९९		शूल निदान ...	४१४
पित्ताधिक वातरक्तके लक्षण	"	पूर्वरूप ...	४००	चिकित्सा ...	"
कफवातरक्तके लक्षण ...	"	ऊरुस्तम्भके लक्षण ...	"	बलादि चूर्ण ...	४१५
असाध्य लक्षण ...	३८२	असाध्यलक्षण ...	"	तुम्बरादि चूर्ण ...	"
वातरक्तके उपद्रव ...	"	ऊरुस्तम्भकी चिकित्सा ...	"	पित्तशूल निदान ...	४१६
साध्यासाध्यप्रकार ...	"	रान्नादिफाथ ...	४०२	पित्तशूलकी चिकित्सा ...	"
वातरक्तकी चिकित्सा ...	"	कुप्रादि तैल ...	"	कुशादि घृत ...	४१७
अपथ्य ...	३८३	अष्टकद्रवर तैल ...	४०३	<b>आमवातरोगाधि०।</b> ४०३	
पथ्य ...	"	<b>आमवातरोगाधि०।</b> ४०३		कफशूलनिदान ...	४१८
अमया गुड ...	३८४	आमवातका पूर्वरूप ...	४०३	कफशूलकी चिकित्सा ...	"
गुग्गुलु वरी ...	"	आमवातके सामान्य लक्षण	"	द्वन्द्वज और त्रिदोषज शूल	"
		विशेष लक्षण ...	४०४	चिकित्सा ...	४१९
		अत्यन्त बडे हुए आमवातके ल०	"	आमशूलनिदान ...	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
चिकित्सा	... ४१९	गुडपिप्पली घृत	... ४३०	द्विरुत्तरार्हिग्वाय चूर्ण	४४२
एरण्डसप्तक काथ	... "	पिप्पली घृत	... "	हिग्वाय चूर्ण	... "
शूलके स्थान	... ४२०	लोहादि लेह	... "	बचाय चूर्ण	... ४४३
कफत्रातज शूल	... "	फांलादि मण्डूर	... "	<b>गुल्मरोगाधिकार । ४४३</b>	
पार्श्वशूलके लक्षण	... "	भीमवटकमण्डूर	... "	गुल्मका सामान्य रूप	४४३
कुक्षिशूलके लक्षण	... "	क्षीरमण्डूर	... ४३१	गुल्मकी सम्प्राप्ति	... "
हृदयशूलके लक्षण	... "	शतावरीमण्डूर	... "	गुल्मका पूर्वरूप	... "
विरितशूलके लक्षण	... "	तारामण्डूर गुड	... "	गुल्मके साधारण लक्षण	...
मूत्रशूलके लक्षण	... ४२१	पुनर्नवादि मण्डूर	... ४३२	गुल्मके कारण और लक्षण	...
विद्वशूलके लक्षण	... "	बृहज्ज्यूपणाद्य मण्डूर	... "	वातगुल्मकी चिकित्सा	... ४४४
विद्वशूलकी चिकित्सा	... "	नारिकेल लवण	... "	हिगुपंचक	... "
हिग्व्यादि चूर्ण	... "	अयोगुग्गुलु	... ४३३	ज्यूपणाद्य घृत	... ४४५
बृहज्ज्युवादि चूर्ण	... ४२२	जामलक क्षेण्ड	... "	ह्युपाद्य घृत	... "
तुम्बुवादि चूर्ण	... "	अथान्नद्रवशूलनिदान	... "	चित्रकाद्य घृत	... "
विश्वादि चूर्ण	... "	चिकित्सा	... ४३४	हिग्व्याद्य घृत	... "
रुचकादि चूर्ण	... "	गुडमण्डूर	... ४३५	पथ्य	... ४४६
पुनर्नवादि भवेद	... ४२३	कलायचूर्णगुटिका	... "	पित्तगुल्मके कारण	... "
हिग्व्यादि वटक	... ४२४	<b>उदावर्त्तरोगाधिकार । ४३६</b>	...	पित्तगुल्मकी चिकित्सा	... "
एरण्डाद्य घृत	... "	उदावर्त्तका निदान	... ४३६	पक्षगुल्म लक्षण	... "
बीजपूरादि घृत	... ४२५	असाध्य लक्षण	... ४३७	त्रायमाणाद्य घृत	... ४४७
शूलघृत	... "	चिकित्सा	... "	द्राक्षाद्य घृत	... "
शूलके उपद्रव	... "	अन्यत् उदावर्त्तभेद निदान	४३८	पथ्य	... "
अपथ्य	... "	चिकित्सा	... ४३९	कफगुल्मके लक्षण	... "
<b>परिणामशूलनिदान । ४२६</b>		श्यामादि	... "	कफगुल्मकी चिकित्सा	... "
वातजपरिणामशूल	... ४२६	फलवार्त्त	... ४४०	क्षीरपद्वयल घृत...	... ४४८
पित्तजपरिणामशूलके लक्षण	... "	नारायणचूर्ण	... "	व्योपाद्य घृत	... "
श्लैमिकपरिणामशूलके लक्षण	... "	गुडाएक	... "	भल्लातकाद्य घृत...	... "
द्विदोषज और त्रिदोषज परि-	...	मूलकाद्य घृत	... "	मिश्रकसेह	... "
णाम शूलके लक्षण	... "	स्थिराद्य घृत	... "	दंतीहरीतक्यबलेह	... ४४९
चिकित्सा	... "	<b>आनाह्रोगाधिकार । ४४९</b>		पथ्य	... "
विहंगाद्य मोदक	... ४२७	निदान	... ४४१	द्वन्द्वजगुल्म	... "
शम्बूकादि मोदक	... ४२८	असाध्य लक्षण	... "	हिग्व्यादि चूर्ण	... "
त्रिफलादि लोह	... "	आनाह्रोगकी चिकित्सा	... "	द्वितीय हिग्व्यादि चूर्ण	... ४५०
चतुःसमलेह	... "	त्रिपृताद्या घटिका	... ४४२	पथ्य	... "
भक्तवारी गुटिका	... ४२९	फलवार्त्त	... "	त्रिदोषगुल्मके लक्षण	... "
त्रिफलादि लोह	... "	रामठाद्या घर्त	... "	त्रिदोषगुल्मकी चिकित्सा	... ४५१
सासुद्रादि चूर्ण	... "	त्रिभृताद्या गुटी	... "	धानीफलक घृत	... "
		त्रिकुटाद्या वर्त्त	... "	बचाय चूर्ण	... ४५२

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
भार्ङ्गीपदपल घृत ...	४३	तिक्तक चूर्ण ...	४६१	शुक्रजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा	४६८
दन्तीघृत ...	"	पथ्य ...	"	मलजनित मूत्रकृच्छ्ररोगके	"
विन्दुघृत ...	"	त्रिदोषज और क्रमिजनित हृदय-	"	लक्षण ...	"
दधिघृत ...	"	रोगके लक्षण ...	"	सुकुमारकुमारक पुनर्नवादि	"
नीलिनीघृत ...	"	उपद्रव ...	"	लह ...	४७०
वचागृतल ...	४५४	चिकित्सा ...	४६२	<b>मूत्राघातरोगा-</b>	
कांकायनगुटिका ...	"	बहुम घृत ...	४६३	<b>धिकार ।</b>	४७०
हिंवादि बटिका ...	४५५	क्षीरबहुम घृत ...	"	मूत्राघातका निदान ...	४७०
आरोग्यवटिका ...	"	अर्जुन घृत ...	"	वातकुण्डलिकाके लक्षण	"
नादेयी क्षार ...	४५६	यलाघ घृत ...	"	अप्लोलाके लक्षण	४७१
हिंवादि चूर्ण ...	"	<b>उरोमहाधिकार । ४६३</b>		वातघस्तिके लक्षण	"
रक्तगुल्मकी संप्राप्ति निदान	"	उरोमह निदान और संप्राप्ति	"	मूत्रातीतके लक्षण	"
और लक्षण ...	"	लक्षण ...	४६३	मूत्रजठरके लक्षण	"
रक्तगुल्मकी चिकित्सा ...	"	चिकित्सा ...	४६४	मूत्रोत्सर्गके लक्षण	"
शताह्वदि कल्क ...	"	<b>मूत्रकृच्छ्ररोगाधिकार । ४६४</b>		मूत्रक्षयके लक्षण	"
तिलकाय ...	४५७	मूत्रकृच्छ्रका निदान ...	४६४	मूत्र ग्रन्थिके लक्षण	४७२
पलांश क्षार घृत ...	"	संप्राप्ति ...	"	मूत्रशुक्रके लक्षण	"
कहार घृत ...	"	वातोत्पन्न मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	४६५	उष्णवातके लक्षण	"
असाध्य लक्षण ...	"	पित्तोत्पन्न मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	"	मूत्रसादके लक्षण	"
<b>हृदयरोगाधिकार । ४५८</b>		कफज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	"	विद्धविघातके लक्षण	"
हृदयरोगका निदान ...	४५८	सन्निपातोद्भव मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	"	यस्तिकुण्डलके लक्षण	"
वातज हृदयरोगके लक्षण	"	शल्यज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	"	मूत्राघातकी चिकित्सा...	४७३
हृदयरोगकी चिकित्सा...	"	पुरीषज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण	"	शिलोद्भिदादि तैल	४७४
पुष्करादि कल्क ...	४५९	अश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्रके लक्षण	"	घान्यगोक्षुरक घृत	"
पुष्करादि काय ...	"	शुक्रजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण	"	भद्रावह घृत	"
हरीतक्यादि घृत ...	"	चिकित्सा ...	"	विदारी घृत	४७५
पुनर्नवादि तैल ...	"	पुनर्नवाद्य मिश्रक ...	४६६	क्षौद्रार्द्धभाग घृत	४७६
पथ्य ...	"	पित्तजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा	"	<b>अश्मरीरोगाधिकार । ४७६</b>	
पित्तज हृदयरोगके लक्षण	"	तृणपंचमूल ...	"	अश्मरीरोग निदान ...	४७६
चिकित्सा ...	"	शतावर्यादि काय ...	"	सम्प्राप्ति ...	४७७
अर्जुनक्षीरपाक ...	४६०	एवांस बीजादि पान ...	"	पूर्वरूप ...	"
ककुभादि चूर्ण ...	"	हरीतक्यादि काय ...	"	सामान्य लक्षण	"
कसेरुकाय घृत ...	"	शतावरी घृत ...	४६७	वातोत्पन्न पथरीकी चिं०	"
शेयस्याघ घृत ...	"	त्रिकण्टाघ घृत ...	"	शुष्णवादि काय	"
स्थिराघ घृत ...	"	कफज मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा	"	पलांदि काय	४७८
पथ्य ...	"	त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा,	"	वरुणादि काय	"
कफज हृदयरोगके लक्षण	"	अभिघातजनित मूत्रकृच्छ्रकी	"	पापाणभेदादि घृत	"
चिकित्सा ...	४६१	चिकित्सा ...	४६८	वीरतरादि गण	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
पित्तोत्थणअशमरीके लक्षण	४७८	स्त्रियोंके प्रमेह न होनेका		मेदशुद्धिके लक्षण	... ४९८
पित्तोत्थणअशमरीकी		कारण	४८८	चिकित्सा	... ४९९
चिकित्सा	... ४७९	असाध्यलक्षण	...	उद्धत्तन	... ५०१
कुशादि घृत	...	सर्वप्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे	...	अमृतादि गुग्गुलु	... "
कफोत्थणाशमरीनिदान	...	मधुमेह होता है	...	दशांग गुग्गुलु	... "
कफोत्थण अशमरीकी चिकित्सा	...	मधुमेहशब्दकी प्रवृत्तिमें कारण	४८९	लोहरसायन	... "
वरुणादि घृत	...	प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे दश	...	लोहारिष्ट	... ५०२
शुक्रजाशमरीनिदान	... ४८०	प्रकारकी पिडिका	...	व्योपाय सत्तुप्रयोग	... "
उपद्रव	...	दशप्रकारकी पिडिकाओंके ल०	...	त्रिफलादि तैल	... ५०३
अरिष्ट	...	प्रमेहकी पिडिकाओंके लक्षण	...	महासुगन्धित तैल	... "
शुक्रजाशमरीकी चिकित्सा	...	प्रमेहकी पिडिकाओंमें दोषोंका	...	<b>उदररोगाधिकार ।</b>	<b>५०५</b>
पञ्चमूलादि घृत	... ४८१	निर्णय	...	उदररोगका निदान	५०५
वरुण तैल	... ४८२	विनाप्रमेहके पिडिकाओंका	...	उदररोगकी सम्प्राप्ति	... "
कुशादि तैल	...	होना	... ४९०	उदररोगके पूर्व लक्षण	... "
सामान्य चिकित्सा	...	पिडिकाओंकी असाध्यता	...	उदररोगके सामान्य लक्षण	...
वरुणादि चूर्ण	... ४८३	पिडिकाओंके उपद्रव	...	उदररोग संख्या	... "
वरुणकगुड	...	प्रमेहरोगकी चिकित्सा	...	वातोदरके लक्षण	... ५०६
कुलित्थाय घृत	... ४८४	प्रमेहमें हितकारक पदार्थ	...	साध्यासाध्य विचार	... "
शरादि पंच मूल घृत	...	प्रमेहरोगमें त्याज्य पदार्थ	...	अजातोदकके लक्षण	... "
वरुणघृत	...	न्यप्रोधादि चूर्ण	... ४९३	वातोदरकी चिकित्सा	... "
वीरतरादि तैल	...	त्रिकट्वाद्यां गुटिका	...	एरण्डादि तैल	... "
द्वितीय वीरतरादि तैल	... ४८५	दाडिमाघ घृत	... ४९४	सामुद्राद्य चूर्ण	... ५०७
पुनर्नवादि तैल	...	गोक्षुरादि चूर्ण गुटिका	...	दशमूलपद्मल घृत	... "
<b>प्रमेहरोगाधिकार ।</b>	<b>४८६</b>	सिहामूत घृत	...	दशमूलाद्य घृत	... "
प्रमेहका निदान	... ४८६	धान्वंतर घृत	... ४९५	लघुन तैल	... "
प्रमेहकी सम्प्राप्ति	...	अर्जुनादि घृत वा तैल	...	पित्तादर निदान	... ५०८
दोषदूष्योंका वर्णन	...	गोक्षुराद्यबलेह	... ४९६	पित्तादरकी चिकित्सा	... "
पूर्वरूप	...	सार लेह	...	कफोदरनिदान	... ५०९
सामान्य लक्षण	...	असनादि योग	...	कफोदरचिकित्सा	... "
प्रमेहके कारण	...	शिलाजितु स्वर्णमाक्षिक और	...	सन्निपातोदरनिदान	... "
दश कफप्रमेहोंके लक्षण	... ४८७	रौप्यमाक्षिक प्रयोग	...	चिकित्सा	... ५१०
पित्तके छः प्रमेहोंके लक्षण	...	प्रमेह पिडिकाओंकी	...	नागराद्य यमक	... "
वातके ४ प्रमेहोंके लक्षण	...	चिकित्सा	... ४९८	पदोलादि चूर्ण	... ५१३
प्रमेहके उपद्रव	... ४८८	प्रमेहसे आरोग्य हुएकी	...	नारायणचूर्ण	... "
कफप्रमेहके उपद्रव	...	परिक्षी	...	महाक्षार	... ५१४
पित्तजप्रमेहके उपद्रव	...	<b>मेदरोगाधिकार ।</b>	<b>४९८</b>	नाराच घृत	... "
वातजप्रमेहके उपद्रव	...	मेदरोगका निदान	... ४९८	द्वितीय नाराच घृत	... ५१५
प्रमेहका अरिष्ट	...	मेदशुद्धिकी सम्प्राप्ति	...	त्रिशृतादि घृत	... "

विषय.	पृ.	विषय.	पृ.	विषय.	पृ.
विन्दु घृत ...	५१५	शोभरोगाधिकार ।	५२९	त्रिकुटादि छेद ...	५४
शाहीवर्णी तैल ...	"	शोध रोगका निदान ...	५२९	शोषोदर छेद ...	"
प्लीहोदरनिदान ...	५१६	सामान्य लक्षण ...	"	<b>अन्त्रवृद्धिरोगा-</b>	
प्लीहोदरकी चिकित्सा ...	५१७	वातज शोधके लक्षण ...	"	<b>धिकार ।</b>	
यमान्यादि चूर्ण ...	५१८	पित्तज शोधके लक्षण ...	५३०	अन्त्रवृद्धिनिदान ...	५४
भिर्हंगादि चूर्ण ...	"	कफज शोधके लक्षण ...	"	वातादिजन्य शक्तिके लक्षण ...	"
महातक मोदक ...	"	दन्तज और सन्निपातज ...	"	मूत्रजशक्तिके लक्षण ...	"
अभया बटक ...	५१९	शोधके लक्षण ...	"	अन्त्रशुद्धिके लक्षण ...	"
अग्निमुल लवण ...	"	अभिघातज शोधके लक्षण ...	"	इसकी उपेक्षा करनेका फल ...	"
पद्मलठू घृत ...	"	पिपज शोधके लक्षण ...	"	असाध्य लक्षण ...	५४
वक्षिपट्टप्रस्थ घृत ...	"	शोषपरत्वसे रूजनका स्थाना- न्तरफथन ...	"	अपचय ...	"
चित्रक घृत ...	५२०	शोधके कृच्छ्रादि भेद ...	५३१	अन्त्रवृद्धिकी चिकित्सा ...	"
चित्रकादि घृत ...	"	असाध्य लक्षण ...	"	पञ्चवल्कल ...	"
प्राज्ञ घृत ...	"	आमयुक्त शोधके लक्षण ...	"	शिरविषय ...	५४
शंखद्राव ...	५२१	शोधकी चिकित्सा ...	"	कुरण्डरोगके निदान और लक्षण ...	५४
रोहीतकाय घृत ...	"	पुनर्नवादि छेद ...	५३३	कुरण्डरोगकी चिकित्सा ...	"
महारोक्षावक घृत ...	"	द्विदोषज और त्रिदोषज ...	"	शतपुष्पाघ घृत ...	"
कदलीक्षार तैल ...	५२२	शोधकी चिकित्सा ...	५३४	गन्धर्वहस्त तैल ...	५४
माणानि गुटिका ...	"	मानामण्ड ...	५३७	<b>ब्रध्नरोगाधिकार ।</b>	
चित्रक छेद ...	"	गुडचूर्ण ...	"	ब्रध्न ( बद् ) का निदान ...	५
क्षारीपप्पली ...	५२३	द्वितीयगुडचूर्ण ...	५३८	ब्रध्नरोगकी चिकित्सा ...	"
वृहत्क्षारीपप्पली ...	"	पुनर्नवाघ चूर्ण ...	"	धिल्लोच चूर्ण ...	५
अभया लवण ...	"	गोमूत्र मण्डूर ...	"	वृहत्सेन्धवाघ तैल ...	"
यकृतोदर निदान ...	५२४	पुनर्नवाघ घृत ...	"	<b>गलगण्डरोगाधिकार ।</b>	
यकृतोदरकी चिकित्सा ...	"	द्वितीय पुनर्नवादि घृत ...	५३९	गलगण्डका निदान ...	५
चित्रक घृत ...	"	चित्रकादि घृत ...	"	गलगण्डकी सम्प्राप्ति ...	"
विष्पली घृत ...	"	द्वितीय चित्रक घृत ...	"	वातिकगलगण्डके लक्षण ...	"
वज्रमुदोदरके लक्षण ...	"	माषक घृत ...	"	कफजगलगण्डके लक्षण ...	"
क्षतादरके लक्षण ...	५२५	स्थलपद्माकादि घृत ...	"	मदजगलगण्डके लक्षण ...	"
उत्पत्तिसहित जलोदरके लक्षण ...	"	पञ्चकोलक घृत ...	"	असाध्य लक्षण ...	"
चिकित्सा ...	"	गुणकमूलकादि तैल ...	"	गलगण्डकी चिकित्सा ...	५४०
क्षारगुटिका ...	"	त्रेतसादि प्रदेह ...	"	हिंसाघ तैल ...	"
उदरादि छेद ...	५२६	यवादि तैल ...	"	अमृताघ तैल ...	"
साध्यासाध्य विचार ...	५२७	शैलादि तैल ...	"	शास्त्रोदाघ तैल ...	"
कतिपय योग ...	५२८	पञ्चमूलादि तैल ...	"	काञ्चनारगुग्गुल गुटिका ...	"
आर्द्रकघृत ...	"	कंसहरीतकी ...	"	पथ्य ...	"
विन्नादि घृत ...	"	दशमूल हरीतकी ...	५४१		
		पथ्यापथ्य ...	"		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
गण्डमाला रोगाधिकार ।	५५३	पित्तजश्लेष्मपदके लक्षण	... ५६३	व्रणशोथाधिकार ।	५७५
गण्डमाला और अपचार्के लक्षण	... ५५३	कफजश्लेष्मपदके लक्षण	... "	शोथका पूर्वरूप	... ५७५
साध्य और असाध्य लक्षण	"	असाध्य लक्षण	... "	व्रण पाक	... ५७६
गण्डमालाकी चिकित्सा	... "	श्लेष्मपदकी चिकित्सा	... ५६४	अपक व्रणशोथके लक्षण	... "
चंदनाय तैल	... "	गोमूत्रहरातकी	... ५६६	पच्यमान व्रणशोथके लक्षण	"
व्याघ्रपाथ तैल	... ५५४	कृष्णाद्य मादेक	... "	पक्वव्रणशोथके लक्षण	... "
काकादन्यादि तैल	... "	पिप्पलाय चूर्ण	... "	गम्भीरपाकके लक्षण	... "
महाअजमोदाय तैल	... "	वृद्धदारुक चूर्ण	... "	सूजनमें एक दोपउत्पन्न	
वचाय घृत	... ५५५	निर्गुण्ड्यादि मण्ड	... ५६७	होनेके समय तीनों दोषोंका प्रादुर्भाव होता है	... ५७७
चक्रमर्दादिसिन्दूर तैल	... "	द्वितीयपिप्पल्यादि चूर्ण	... "	शोथके पकनेमें नतान्तर	... "
निर्गुण्डी तैल	... "	काकादन्यादि क्षार	... "	पक्वव्रणमेंसे राध न निकालनेका परिणाम	... "
गुञ्जाय तैल	... "	सौरेश्वरघृत	... ५६८	व्रणशोथके पक्वापक जाननेमें वैद्यके गुणदोष	... "
तुम्बी तैल	... "	दन्ती घृत	... "	व्रणरोग निदान	... "
शाखोटकविलवाय तैल	५५६	वृद्धदारुक घृत और तैल	... ५६९	वातजव्रणके लक्षण	... "
छुच्छुन्दरी तैल	... "	विडम्गाय तैल	... "	पित्तजव्रणके लक्षण	... "
त्रिफलादि गुग्गुलु	"	विद्राधिरोगाधिकार ।	५६९	कफजव्रणके लक्षण	... ५७८
ग्रन्थिरोगाधिकार ।	५५६	विद्राधिका संप्राप्तिपूर्वक निदान	५६९	रक्तज और द्वन्द्वजव्रणके लक्षण	... "
वातजग्रन्थिके लक्षण	... ५५७	वातजविद्राधिके लक्षण	... "	सुखसाध्यव्रणके लक्षण	... "
पित्तजग्रन्थिके लक्षण	... "	पित्तजविद्राधिके लक्षण	... ५७०	कृच्छ्रसाध्य और असाध्यव्रणके लक्षण	... "
कफजग्रन्थिके लक्षण	... "	कफजविद्राधिके लक्षण	... ५७०	व्रणके लक्षण	... "
भेदजग्रन्थिके लक्षण	... "	पकनेके अनन्तर उनका स्त्राव	"	शुद्धव्रणके लक्षण	... "
शिराजग्रन्थिके लक्षण	... "	सन्निपातजविद्राधिके लक्षण	"	भरनेवाले व्रणके लक्षण	... "
साध्यासाध्य लक्षण	... "	भागन्तुकाविद्राधिके लक्षण	... "	व्याधि विशेषसे व्रणको कृच्छ्रसाध्यत्व कहते हैं	... ५७९
ग्रन्थिकी चिकित्सा	... "	रक्तजविद्राधिके लक्षण	... "	साध्यासाध्य लक्षण	... "
अर्बुदरोगाधिकार ।	५५९	अन्तर्विद्राधिके लक्षण	... "	व्रणरोगकी चिकित्सा	... "
अर्बुदरोगका संप्राप्ति निदान	५५९	विद्राधिके स्थान	... "	वृहन्त्यग्रोधादि लेप	... ५८०
रक्तार्बुदके संप्राप्ति लक्षण	५६०	स्त्राव निर्गम	... ५७१	उपनाह द्रव्य	... ५८१
मांसार्बुदके लक्षण	... "	साध्यासाध्यता	... "	रक्त मोक्षण	... "
अध्यर्बुदके लक्षण	... "	विद्राधिके उपद्रव	... "	शस्त्रसे भेदन निषेध	... ५८२
द्विर्बुदके लक्षण	... "	स्तन विद्राधि	... ५७२	शोधन	... "
अर्बुद न पकनेका कारण	... "	विद्राधिकी चिकित्सा	... "	व्रणरोगियोंका भोजन	... ५८६
अर्बुदकी चिकित्सा	... "	भूनिम्बाय चूर्ण	... ५७४	अपच्य	... "
श्लेष्मपदरोगाधिकार ।	५६३	वरुणकाय घृत	... "		
श्लेष्मपदका निदान	... ५६३	करञ्ज घृत	... ५७५		
वाक्जश्लेष्मपदके लक्षण	... "	प्रियङ्गाय तैल	... "		
		द्विपञ्चमूली तैल	... "		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
<b>आगन्तुकवणरोगा- धिकार ।</b>	५२७	सप्तविंशतिक गुग्गुलु ...	५९४	पित्तजनाडीव्रणकी चिकित्सा	६०३
आगन्तुक व्रणकी संख्या और संक्रामि ...	५८७	अग्निदग्धव्रण निदान ...	५९५	श्यामा घृत ...	६०४
छिन्नक लक्षण ...	५८७	अग्निदग्धकी चिकित्सा ...	५९५	कफजनाडीव्रणकी चिकित्सा	६०४
भिन्नक लक्षण ...	५८७	पथ्यादि लेप ...	५९६	स्वाजिकाघ तैल ...	६०४
कोष्ठके लक्षण ...	५८७	मधूकिल्लिष्टाघ घृत ...	५९६	संघवाघ तैल ...	६०४
श्न भेदोंके लक्षण ...	५८७	लांगली घृत ...	५९६	शल्यजनाडीव्रणकी चिकित्सा	६०४
आमाशयस्थित रक्तके लक्षण	५८८	पटोली तैल ...	५९६	कुम्भोकाघ तैल ...	६०४
पकाशयस्थके लक्षण ...	५८८	चन्दनाघ तैल ...	५९६	मेपरोममपी ...	६०५
विद्वन्नके लक्षण ...	५८८	अपघ्न्य ...	५९७	कर्पूराघ तैल ...	६०५
क्षतके लक्षण ...	५८८	व्रणप्रस्थिकी चिकित्सा	५९७	स्वाजिकाघ तैल ...	६०५
पिषितके लक्षण ...	५८८	कम्पिलक तैल ...	५९७	सप्ताङ्ग गुग्गुलु ...	६०६
घृष्टके लक्षण ...	५८८	<b>भन्नरोगाधिकार ।</b>	५९७	<b>भगन्दररोगा- धिकार ।</b>	६०६
शल्यसाहितव्रणके लक्षण	५८८	सन्धिभन्नके सामान्य लक्षण	५९७	भगदरका पूर्वरूप ...	६०६
कोष्ठभेदके लक्षण ...	५८८	काण्डभन्नके सामान्य लक्षण	५९७	वातजशतेपानक भगन्दरके निदान और लक्षण...	६०६
असाध्यके लक्षण ...	५८८	कण्टसाध्य ...	५९८	पैत्तिक उष्ट्रघ्राव भगन्दरके निदान और लक्षण	६०६
मर्मोंमें चोट लगनेसे जो व्रण होता है उसका सामान्य लक्षण	५८९	असाध्य लक्षण ...	५९९	श्लेष्मकपरिस्त्रावी भगन्दरके लक्षण	६०६
मर्मरहित शिराविद्धके लक्षण	५८९	भन्नरोगकी चिकित्सा ...	५९९	त्रिदोषजन्यशम्बूकावत भगन्दरलक्षण ...	६०६
रुणयुविद्धके लक्षण ...	५८९	आभागुग्गुलु ...	६००	शल्यसम्बन्धी उन्मार्ग भगन्दरके लक्षण ...	६०६
सन्धिविद्धके लक्षण ...	५८९	लाक्षादि गुग्गुलु ...	६००	साध्यासाध्य लक्षण ...	६०६
अस्थिविद्धके लक्षण ...	५८९	गन्धतैल ...	६००	भगन्दररोगकी चिकित्सा	६०६
मर्मविद्धके लक्षण ...	५८९	अवस्थानुसार भन्नकी साध्यतादि ...	६०१	विष्यन्दन तैल ...	६०६
मांस मर्म व्रणके लक्षण	५८९	विशेष उपदेश ...	६०१	निशाघ तैल ...	६०६
व्रणायामके लक्षण ...	५९०	अपघ्न्य ...	६०१	करवीराघ तैल ...	६०६
सर्वव्रणके लक्षण ...	५९०	भन्नआरोग्यके लक्षण ...	६०१	नवकार्पक गुग्गुलु ...	६११
आगन्तुकव्रणकी चिकित्सा	५९०	<b>नाडीव्रणरोगा- धिकार ।</b>	६०२	पथ्यापघ्न्य ...	६११
गुग्गुलुवटिका ...	५९२	नाडीव्रणकी संख्यारूप सम्प्रामि ...	६०२	<b>उपदंशरोगा- धिकार ।</b>	६११
अमृत गुग्गुलु ...	५९२	वातजनाडीव्रणके लक्षण ...	६०२	वातोपदंशके लक्षण ...	६११
जात्यादि घृत ...	५९२	पित्तज नाडीव्रणके लक्षण...	६०२	पित्तोपदंशवारकोपदंशके लक्षण ...	६११
तिक्ताघ घृत ...	५९२	कफज नाडीव्रणके लक्षण...	६०३	कफोपदंशके लक्षण ...	६११
जोतकाघ तैल ...	५९३	द्विदोषजनाडीव्रणके लक्षण	६०३		
विपरीतमेल तैल ...	५९३	त्रिदोषजनाडीव्रणके लक्षण...	६०३		
कुठार तैल ...	५९३	शल्यजनाडीव्रणके लक्षण ...	६०३		
दूर्वाघ तैल ...	५९३	साध्यासाध्य लक्षण ...	६०३		
नूत तैल ...	५९३	नाडीव्रणकी चिकित्सा	६०३		
वटिका गुग्गुलु ...	५९३	हिंसाघ तैल ...	६०३		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
त्रिदोषज उपदंशके लक्षण	६११	प्रकार कथन ...	६२०	निन्दादि महाकपाय ...	६२५
असाध्य लक्षण	”	कुष्ठके पूर्वरूप ...	६२१	मञ्जिष्ठादि महाकपाय ...	”
उपदंशकी उपक्षाका फल	”	कपालकुष्ठके लक्षण ...	”	उदयमार्कण्ड महाकपाय	६३०
लिङ्गांशके लक्षण	६१२	औदुन्धरकुष्ठके लक्षण ...	”	कुष्ठपर लेप	६३१
उपदंश रोगोंकी चिकित्सा	”	मण्डलकुष्ठके लक्षण ...	”	घत्तूर तैल	६३२
करञ्जाद्य घृत	६१४	ऋक्षजिह्वकुष्ठके लक्षण ...	”	श्रीवास घृत	६३३
भूनिम्बाद्य तैल	६१५	पुण्डरीककुष्ठके लक्षण ...	”	सिन्दूराद्य तैल	”
आगारधूमाद्य तैल	”	सिध्मकुष्ठके लक्षण ...	”	बृहत्सिन्दूराद्य तैल	”
गोजी तैल	”	काकणकुष्ठके लक्षण ...	६२२	अर्क तैल	६३४
जम्बवाद्य तैल	”	ग्यारहसुद्रकोढोंके लक्षण	”	त्रिफलाद्य गुटिका	”
कोशातकी तैल	”	चर्मकुष्ठके लक्षण ...	”	शशांकलेखादि लेह	”
पथ्य	”	किटिभकुष्ठके लक्षण ...	”	त्रिफलाद्य मोदक	”
लिङ्गांशकी चिकित्सा	६१६	वैपादिककुष्ठके लक्षण ...	”	महाभलातक	६३५
<b>शूकदोषरोगाधिकार</b>	<b>६१६</b>	अलसककुष्ठके लक्षण ...	”	पञ्चनिन्दादि चूर्ण	६३६
पैपिकाके लक्षण	६१६	दद्रुमण्डलकुष्ठके लक्षण ...	”	त्रिफलाद्य चूर्ण	६३७
अष्टौलाके लक्षण	”	चर्मदलकुष्ठके लक्षण ...	”	पथ्याद्य बटक	”
मथितके लक्षण	”	पामाकुष्ठके लक्षण ...	”	तिक्तपदक घृत	”
कुम्भिकाके लक्षण	”	कच्छुकुष्ठके लक्षण ...	”	पञ्चतित्तक घृत	६३८
अलजीके लक्षण	”	विस्फोटककुष्ठके लक्षण...	”	द्वितीय पञ्चतित्तक	”
मुदितके लक्षण	”	शतारुकुष्ठके लक्षण ...	”	गुग्गुलुपञ्चतित्तक घृत	”
संमूढपिडिकाके लक्षण...	”	विचाचिकाके लक्षण ...	६२३	द्वितीयगुग्गुलुपञ्चतित्तक घृत	”
अवमन्यपिडिकाके लक्षण	६१७	वातजादिकुष्ठोंके लक्षण...	”	महातित्तक घृत	६३९
पुष्करिकाके लक्षण	”	सप्तधातुगतकुष्ठोंके लक्षण	”	वज्रक घृत	”
स्पर्शहानिके लक्षण	”	रसगतकुष्ठके लक्षण ...	”	महावज्रक घृत	६४०
उत्तमाके लक्षण	”	रक्तगत कुष्ठके लक्षण ...	”	खादिराद्य घृत	”
शतपानकके लक्षण	”	मांसगतकुष्ठके लक्षण ...	”	महाखादिर घृत	”
त्वक्पाकके लक्षण	”	मेदोगतकुष्ठके लक्षण ...	”	मेपशृङ्गाद्य तैल	६४१
शोणितार्बुदके लक्षण	”	अस्थिमज्जागतकुष्ठके लक्षण	”	वज्रक तैल	”
मांसार्बुदके लक्षण	”	शुक्रार्चयगतकुष्ठके लक्षण	”	महावज्रक तैल	”
मांसपाकके लक्षण	”	साध्यासाध्य विचार ...	६२४	तृण तैल	”
विद्रविके लक्षण	”	प्रधानदोषके लक्षण ...	”	बृहत्तृण तैल	६४२
तिलकालकके लक्षण	६१८	श्वित्र लक्षण ...	”	मरिचाद्य तैल	”
असाध्य लक्षण	”	दोषभेदसे लक्षण भेद ...	”	द्वितीय मरिचाद्य तैल	”
शूकदोषकी चिकित्सा	”	श्वित्रकी साध्यासाध्यता...	६२५	तृतीयमरिचाद्य तैल	६४३
दार्ढी तैल	६१९	सांसर्गिक रोग	”	चतुर्थमरिचाद्य तैल	”
<b>कुष्ठरोगाधिकार</b>	<b>६२०</b>	कुष्ठरोगकी चिकित्सा ...	”	विपतैल	६४४
कुष्ठरोगका निदान	६२०	खादिराष्टक	६२९	सोमराजी तैल	६४५
कुष्ठ उत्पन्न होनेके विशेषकारण	”	नक्षकपाय	”	श्वेतकरवीराद्य तैल	”



विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
गण्डोराग तैल	... ६४५	द्राक्षादि गुटिका	... ६६०	साध्यासाध्य विचार	... ६६०
स्तुष्याग तैल	... "	विसर्परोगाधिकार ।	६६०	विस्फोटकके उपद्रव	... ६६१
कनकचिन्दुनामारिष्ट	... "	विसर्पके सातप्रकार	... ६६०	विस्फोटककी चिकित्सा...	...
पश्यापपथ्य	... ६४६	विसर्पके दोषदूष्य	... ६६१	दशांग लेप	... ६७२
श्वित्रकुटकी चिकित्सा	... "	घातजविसर्पके लक्षण	... "	पथ्यक घृत	... "
सोमराजो घृत	... ६४८	पित्तज विसर्पके लक्षण	... "	पथ्यातिकफ घृत	... ६७१
नीली घृत	... "	कफजविसर्पके लक्षण	... "	कम्पिलकार तैल	... "
महानीली घृत	... "	सन्निपातजविसर्पके लक्षण...	... "	न्नायुरोगाधिकार। ६७१	...
ज्योतिष्मती तैल	... ६४९	घातपिण्डोत्पन्न आश्रयविसर्पके	...	न्नायुरोगकी चिकित्सा ...	६७१
विपतैल	... "	लक्षण	... "	मन्त्रिणादि प्रलेप	... ६०२
<b>उदरदंशीतपित्तकोठा-</b>		वातपित्तोद्भव मन्थि	...	<b>मसूरिकारोगा-</b>	
<b>धिकार । ६४९</b>		विसर्पके लक्षण	... ६६२	<b>धिकार । ६७२</b>	
शीतपित्तके पूर्वरूप	... ६४९	कफपित्तोत्पन्नकर्दमक विसर्पके	...	मसूरिकाके पूर्वरूप	... ६७२
उदर या शीतपित्तके लक्षण	६५०	लक्षण	... "	वातजमसूरिकाके लक्षण...	६७३
फोडके लक्षण	... "	क्षतजविसर्पके लक्षण	... "	पित्तजमसूरिकाके लक्षण...	...
उदरकी चिकित्सा	... "	विसर्पक उपद्रव	... "	रक्तजमसूरिकाके लक्षण...	...
सिद्धार्थकाण्डहर्तन	... ६५१	साध्यासाध्य लक्षण	... ६६३	कफजमसूरिकाके लक्षण...	...
<b>अम्लपित्ताधिकार । ६५२</b>	...	विसर्परोगकी चिकित्सा...	...	त्रिदोषजमसूरिकाके लक्षण	...
अम्लपित्तके लक्षण	... ६५२	दशांग लेप	... ६६४	चर्मपिण्डका	... "
प्रथम अशोक्त अम्ल-	...	शुष्याघ. घृत	... ६६६	रोमान्तक	... "
पित्तके लक्षण	... "	गौरवाघ घृत	... ६६७	सप्तधातुगत मसूरिकाके लक्षण	६७४
ऊर्ध्वगत अम्लपित्तके लक्षण	... "	करञ्ज तैल	... ६६७	गध्यासाध्य विचार	... "
अम्लपित्तकी विशेष अवस्था	... "	<b>विस्फोटकरोगा-</b>		मसूरिकाका अरिष्ट	... ६७५
साध्यासाध्यता	...	<b>धिकार । ६६७</b>		अथान्यग्रन्थान्तरात्	... "
अम्लपित्तमें दोषोंका संसर्ग	६५३	विस्फोटकका स्वरूप	... ६६७	मसूरिकाका अन्यभेद	... "
दोषभेदोंसे लक्षणभेद	... "	वातजविस्फोटकके लक्षण	...	मसूरिकाकी चिकित्सा	... ६७६
कफपित्तके लक्षण	... "	पित्तजविस्फोटकके लक्षण	...	धूप	... "
अम्लपित्तकी चिकित्सा	... "	कफजविस्फोटकके लक्षण	...	पटोलादि काथ	... ६७८
पित्तली घृत	... ६५६	कफपित्तात्मक विस्फोटकके	...	निम्बादि काथ	... ६७९
शतावरी घृत	... "	लक्षण	... ६६८	साध्यासाध्य विचार	... "
रसाशृतचूर्ण	... ६५७	घातपित्तात्मक विस्फोटकके	...	दावी घृत	... ६८१
नारिकेल खण्ड	... "	लक्षण	... "	<b>धुद्रोगाधिकार । ६८२</b>	...
शृङ्गारिकेल खण्ड	... "	कफवातात्मक विस्फोटकके	...	अजगल्लिकाके लक्षण	... ६८२
नारिकेलामत	... ६५८	लक्षण	...	अजगल्लिकाकी चिकित्सा...	...
अविपत्यकर चूर्ण	... ६५९	त्रिदोषजन्य विस्फोटकके	...	विद्रुतापिण्डिका के लक्षण	... "
पिप्पलायवलेह	... "	लक्षण	... "	इन्द्रबद्धाके लक्षण	... "
खण्ड कृष्माण्ड	... ६६०	रक्तजविस्फोटकके लक्षण	...	गर्दभिकाके लक्षण	... "
द्राक्षाघ घृत	... "	...	...	...	...

विषय	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
पापाणगर्दभके लक्षण	६८२	कदरके लक्षण	६९०	वल्मीकके असाध्य लक्षण	७००
पनासिकाके लक्षण	६८३	कदरकी चिकित्सा	६९१	गुदभ्रंशके लक्षण	७०१
जालगर्दभके लक्षण	६८४	चिप्यके लक्षण	६९२	गुदभ्रंशकी चिकित्सा	७०२
इरिवेलिकाके लक्षण	६८५	चिप्यकी चिकित्सा	६९३	मूषकाद्य तैल	७०३
कक्षाके लक्षण	६८६	कुनखके लक्षण	६९४	द्वितीयमूषकाद्य तैल	७०४
गन्धनास्रीके लक्षण	६८७	कुनखकी चिकित्सा	६९५	तृतीयमूषकाद्य तैल	७०५
विधृता पिडिकाकी चिकित्सा	६८८	अलसके लक्षण	६९६	चतुर्थमूषकाद्य तैल	७०६
अन्त्रालजाक लक्षण	६८९	अलसकी चिकित्सा	६९७	शूकरदंष्ट्रके लक्षण	७०७
थवप्रख्याके लक्षण	६९०	अरुपिकाके लक्षण	६९८	शूकरदंष्ट्रकी चिकित्सा	७०८
कच्छपिकाके लक्षण	६९१	अरुपिकाकी चिकित्सा	६९९	मेघ्याविक तैल	७०९
अन्त्रालजाकी चिकित्सा	६९२	स्तुहाद्य तैल	७००	परिवर्तिकाके लक्षण	७१०
अनुशयीके लक्षण	६९३	मांसी तैल	७०१	परिवर्तिकाकी चिकित्सा	७११
अनुशयीकी चिकित्सा	६९४	दारुणकके लक्षण	७०२	अवपाटिकाके लक्षण	७१२
विदारिकाके लक्षण	६९५	दारुणककी चिकित्सा	७०३	अवपाटिकाकी चिकित्सा	७१३
विदारिकाकी चिकित्सा	६९६	गुञ्जादि तैल	७०४	निरुद्धप्रकाशके लक्षण	७१४
शर्कराके संप्रामि लक्षण	६९७	कीचकाद्य तैल	७०५	निरुद्धप्रकाशकी चिकित्सा	७१५
शर्कराशुद्धके लक्षण	६९८	चित्रक तैल	७०६	सन्निरुद्धगुदके लक्षण	७१६
शर्कराशुद्धकी चिकित्सा	६९९	भृंगराज तैल	७०७	सन्निरुद्धगुदकी चिकित्सा	७१७
जंतुमणिका निदान	७००	इन्द्रलुप्तके लक्षण	७०८	अहिपूतनके लक्षण	७१८
मापके लक्षण	७०१	इन्द्रलुप्तकी चिकित्सा	७०९	अहिपूतनकी चिकित्सा	७१९
जंतुमणिकादिकी चिकित्सा	७०२	स्तुहादिखालित्यहर तैल	७१०	पटोल घृत	७२०
मुखदूषिकाके लक्षण	७०३	यष्टीमधुकाद्य तैल	७११	घृणकच्छूके लक्षण	७२१
न्यच्छके लक्षण	७०४	पलितके लक्षण	७१२	घृणकच्छूकी चिकित्सा	७२२
व्यंगके लक्षण	७०५	पलितकी चिकित्सा	७१३	चर्मकालके लक्षण	७२३
नीलिकाके लक्षण	७०६	निम्बर्वाज तैल	७१४	चर्मकालकी चिकित्सा	७२४
मुखदूषिकादिकी चिकित्सा	७०७	केतक्यादि तैल	७१५	क्षुद्ररोगोंकी सामान्य चि०	७२५
मुखपर लेप करनेकी मात्रा-	७०८	नीलविन्दु तैल	७१६	<b>मुखरोगाधिकार ।</b>	७२६
और लेप करनेकी विधि	७०९	काश्मर्याद्य तैल	७१७	मुखरोगोंका निदान	७२७
हरिद्राद्य तैल	७१०	केशरञ्जन तैल	७१८	वातिकओष्ठरोगके लक्षण	७२८
मजिष्ठाद्य तैल	७११	केतक्याद्य तैल	७१९	पैक्तिकओष्ठरोगके लक्षण	७२९
कनक तैल	७१२	मयूरविंसाद्य तैल	७२०	श्लैष्मिक ओष्ठरोगके लक्षण	७३०
कुंकुमाद्य तैल	७१३	मधूक तैल	७२१	सन्निपातिकके लक्षण	७३१
पश्चिमीकण्टकके लक्षण	७१४	प्रपौण्डरीकाद्य तैल	७२२	रक्तज ओष्ठरोगके लक्षण	७३२
पश्चिमीकण्टककी चिकित्सा	७१५	अभिरोहिणीके लक्षण	७२३	मांसजनित ओष्ठरोगके लक्षण	७३३
पाददारोगके लक्षण	७१६	अभिरोहिणीकी चिकित्सा	७२४	भेदज ओष्ठरोगके लक्षण	७३४
पाददारोगकी चिकित्सा	७१७	वल्मीकका निदान तथा लक्षण	७२५	अभिघातजके लक्षण	७३५
स्पोदिकाद्य तैल	७१८	वल्मीककी चिकित्सा	७२६	मुखरोगकी चिकित्सा	७३६
उन्मत्त तैल	७१९	मनःशिलाद्य तैल	७२७	साम मुखरोगके लक्षण	७३७

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
दंतवेष्टरोगनिदान । ७०९		जिह्वारोगनिदान । ७१८		मांसतानके लक्षण ...	७२४
दंतवेष्टरोगांकी संख्या और नाम ...	७०९	वातज जिह्वारोगके लक्षण ...	७१८	विदारिके लक्षण ...	"
शीतादके लक्षण ...	"	पित्तज जिह्वारोगके लक्षण ...	"	गलरोगोंकी चिकित्सा ...	"
दन्तपुण्ड्रके लक्षण ...	"	कफज जिह्वारोगके लक्षण ...	"	सितादि घृत ...	७२५
दन्तवेष्टके लक्षण ...	"	अह्लासके लक्षण ...	"	कालक चूर्ण ...	७२६
शीपिरके लक्षण ...	"	उपजिह्वाके लक्षण ...	"	पीतक चूर्ण ...	"
महासौपिरके लक्षण ...	"	जिह्वारोगकी चिकित्सा ...	७१९	यवक्षारादि गुटिका ...	"
परिदरके लक्षण ...	"	तालुरोगनिदान । ७१९		क्षार गुटिका ...	"
उपकुशके लक्षण ...	७१०	तालुगत चुण्डी रोगके लक्षण ७१९		सर्वमुखगत रोगका निदान ।	७२६
वैदर्भके लक्षण ...	"	तुंडिकेराके लक्षण ...	७२०	वातजमुखपाकके लक्षण ...	७२६
खड्गिचूर्णके लक्षण ...	"	अभूपके लक्षण ...	"	पित्तजमुखपाकके लक्षण ...	"
करालके लक्षण ...	"	कच्छपके लक्षण ...	"	कफजमुखपाकके लक्षण ...	"
अधिमांसके लक्षण ...	"	तास्वयुद्धके लक्षण ...	"	सर्वमुखगत रोगोंकी चिकित्सा ७२७	
पांचप्रकारकी दन्तनाड़ियोंके लक्षण ...	"	मांससंपातके लक्षण ...	"	रौहिदक धूम ...	"
दन्तरोगका निदान ...	"	तालुपुण्ड्रके लक्षण ...	"	सर्वसरोपक्रम ...	"
कृमिदन्तके लक्षण ...	"	तालुस्रोपके लक्षण ...	"	यष्टितैल ...	७२८
भंजनेके लक्षण ...	"	तालुपाकके लक्षण ...	"	मुखरोगोंमें असाध्य रोग ...	७२९
दन्तहर्षके लक्षण ...	७११	तालुरोगकी चिकित्सा ...	"	मुखगत समस्त असाध्य रोग ...	"
दन्तविद्राधिके लक्षण ...	"	गलरोगका निदान । ७२१		कर्णरोगाधिकार ।	७२९
दन्तशर्कराके लक्षण ...	"	रोहिणीके लक्षण ...	७२१	कर्णरोगका निदान ...	७२९
दन्तकपालिकाके लक्षण ...	"	वातजाके लक्षण ...	७२२	कर्णनादके लक्षण ...	"
श्यावदन्तके लक्षण ...	"	पित्तजाके लक्षण ...	"	वाधिर्यके लक्षण ...	"
हनुमोक्षके लक्षण ...	"	कफजाके लक्षण ...	"	कर्णद्वेदके लक्षण ...	"
दन्तरोगकी चिकित्सा ...	"	निदोपजाके लक्षण ...	"	कर्णलावके लक्षण ...	७३०
भद्रमुस्तादि वटिका ...	७१२	रक्तजाके लक्षण ...	"	कर्णकण्डूके लक्षण ...	"
दन्तोपक्रमः ...	७१४	रोहिणीकी मारनेकी अवधि ...	"	कर्णगण्डके लक्षण ...	"
विदार्यादि तैल ...	७१५	कण्ठशालूके लक्षण ...	"	कर्णप्रतिनाहके लक्षण ...	"
वकुलाय तैल ...	७१६	आधिजिह्वके लक्षण ...	"	कृमिकर्णके लक्षण ...	"
सहचराय तैल ...	"	बलयके लक्षण ...	७२३	कानमें पतंगादि कृमि घुसनेके लक्षण ...	"
हरिद्राय तैल ...	"	बलासके लक्षण ...	"	द्विविध कर्णविद्राधिके लक्षण ...	"
लाशाय तैल ...	"	एकवृन्दके लक्षण ...	"	कर्णपाकके लक्षण ...	"
शिरमेदाय तैल ...	७१७	वृन्दके लक्षण ...	"	पूतिकर्णके लक्षण ...	"
स्वल्पसंदिग्धवाटिका ...	"	शतपत्रीके लक्षण ...	"	कर्णशोथ्यादिकोंके लक्षण ...	७२१
महासंदिग्धवाटिका ...	"	गिलायुके लक्षण ...	"	वातज कर्णरोगके लक्षण ...	"
पध्यापध्द्य ...	७१८	गलविद्राधिके लक्षण ...	"	पित्तज कर्णरोगके लक्षण ...	"
		गलौषके लक्षण ...	"	कफज कर्णरोगके लक्षण ...	"
		स्वप्नके लक्षण ...	७२४		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय	पृष्ठ.
सन्निपातज कर्णरोगके लक्षण	७३१	पूतितरयके लक्षण	७४१	धवाद्य तैल...	७५०
परिपोटकके लक्षण	...	नासापाकके लक्षण	...	वलाह्याद्य तैल	...
उत्पातके लक्षण	...	पूररक्तके लक्षण	...	रसाञ्जनाद्य तैल	...
उन्मन्थकके लक्षण	...	क्ष्वथुके लक्षण	...	मुस्तकादि तैल...	...
दुःखवर्द्धनके लक्षण	...	आगन्तुक क्ष्वथुके लक्षण...	...	क्षीरघृत...	७५१
परिलेहीके लक्षण	७३२	भ्रंशथुके लक्षण	...	गृहधूम तैल...	...
कर्णरोगोंकी चिकित्सा	...	दीप्तके लक्षण	...	शिशुतैल	...
दोषिका तैल	७३३	प्रतिनाहके लक्षण	७४२	करवीराद्य तैल	...
राला गुग्गुलु	...	नासास्त्रावके लक्षण	...	व्योपाद्य तैल...	...
कर्णपूरणाविधि	७३४	अन्यमतसे नासास्त्रावके लक्षण	...	<b>नेत्ररोगाधिकार ।</b>	७५१
मात्रा लक्षण	...	नानापरिशापके लक्षण	...	अभिष्यन्दके लक्षण	७५२
श्यानाक तैल	...	आमपीनसके लक्षण	...	वाताभिष्यन्दके लक्षण...	...
हिंन्वादि तैल	...	पकपीनसके लक्षण	...	पित्ताभिष्यन्दके लक्षण...	...
देवदारवादि तैल	...	पीनसरोगकी चिकित्सा	...	कफाभिष्यन्दके लक्षण	...
पिप्पल्यादि तैल	...	पञ्चमूल्यादि यूष...	...	रक्ताभिष्यन्दके लक्षण	...
एरण्डादि तैल	७३५	कट्फलादि चूर्ण	...	अभिष्यन्दसे आधिमन्थकी उ०	...
सूकरवसा	...	कटुत्रिकादि चूर्ण और गुटिका	७४३	दोषभेदसे कालमर्यादा	७५३
स्वर्जिकातैल	...	व्योपाद्यचूर्ण	७४४	आमयुक्त नेत्ररोगके लक्षण	...
मयूरनालाद्य तैल	७३६	न्यात्रा तैल	...	निरामके लक्षण	...
विल्वतैल	...	त्रिकटुकाद्य तैल	...	सशोथ और शोधरहित नेत्र-	...
अपामार्ग तैल	...	शिशु तैल	...	पाकके लक्षण	...
क्षार तैल	...	राजरसायन	...	हृताधिमन्थके लक्षण	...
मधुशुक्के लक्षण	...	पिप्पली तैल	७४५	वातपर्यर्थके लक्षण	...
जम्बाद्य तैल	७३७	शुण्ठी तैल और घृत	...	शुष्काक्षिपाकरोगके लक्षण	७५४
विपगर्भ तैल	...	प्रतिश्यायका निदान	७४६	अन्यतोवातके लक्षण	...
पंचवंस्कल तैल	७३८	चयादिकक्रमसे इसका दूसरा	...	अम्लाध्युपितके लक्षण...	...
चतुष्पर्ण तैल	...	निदान...	...	शिरोत्पातके लक्षण	...
चतुष्पद्म तैल	...	प्रतिश्यायका पूर्वरूप	...	शिराहर्षके लक्षण	...
कुशाद्य तैल	...	वातिक प्रतिश्यायके लक्षण	७४७	पांच रोगोंकी चिकित्सा	...
सन्धूक तैल	...	पैक्षिक प्रतिश्यायके लक्षण	...	वृक्षादन्याद्य घृत	७५५
गन्धकाद्य तैल	...	शैक्षिक प्रतिश्यायके लक्षण	...	वासकादि काय	७५६
		शैक्षिक प्रतिश्यायके लक्षण	...	द्वितीयवासकादि काय...	...
<b>कर्णपालीकी</b>		त्रिदोषज प्रतिश्यायके लक्षण	...	त्रिकला अथवा पथ्यादिकाद्य	७५७
<b>चिकित्सा ।</b>	७३९	दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण	...	<b>कृष्णगतारोगनिदान ।</b>	७६७
शतावरी तैल	७४०	रुधिरजन्य प्रतिश्यायके लक्षण	...	सत्रणरोगके लक्षण	७६७
जीवनीय तैल	...	असाध्य लक्षण...	...	सत्रणशुक्रके साध्यासाध्य लक्षण	...
		नासिकागतअन्यान्यरोग...	...	अत्रणशुक्रके लक्षण	...
<b>नासारोगा-</b>		घृष्टिकी प्राप्त हुआ प्रतिश्याय	७४८	अत्रणशुक्रकी अवस्थाभेदसे	...
<b>धिकार ।</b>	७४०	नासिकागतअरी औरअर्जुन्दके ल०	...	असाध्यता	...
नासारोगका निदान और	...	प्रतिश्यायकी चिकित्सा	...		
पीनसके लक्षण	७४०				

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
अत्रणशुक्रकी अवस्थादोषसे		धूमदाष्टिके लक्षण ...	७७८	विभीतकाद्य तैल ...	७९४
असाध्यता ...	७६७	ह्रस्वजात्यके लक्षण ...	"	त्रिफलाद्य तैल ...	"
अक्षिपाकात्ययके लक्षण	७६८	नकुलान्धके लक्षण ...	"	गोमयतैल ...	"
अजकाजातेके लक्षण ...	"	गम्भीरदाष्टिके लक्षण ...	"	भृंगराजतैल ...	"
अन्यमतसे अजकाके लक्षण	"	आगन्तुज लिंगनाशके लक्षण	"	द्वितीय भृंगराजतैल ...	"
अन्यच्च ...	"	अनिमित्त लिंगनाशके लक्षण	"	अजिततैल ...	"
अजकाजातेकी साध्यासाध्यता	"	साध्यासाध्य ...	७७९	नीलोत्पलाद्य तैल ...	७९५
कृष्णगतरोगोंकी चिकित्सा	"	दृष्टिगतरोगकी चिकित्सा	"	नृपनहभतैल ...	"
लामञ्जकाद्यञ्जन ...	७७०	नेत्ररोगमें पथ्य ...	"	महापिप्पल्याद्य तैल ...	"
दन्तवार्त ...	७७१	नेत्ररोगमें अपथ्य ...	"	अथ कृष्णगतकी चिकित्सा	७९६
चूर्णाञ्जन ...	७७२	रास्तादि घृत ...	७८०	मरिचादि चूर्णाञ्जन ...	"
पटोलाद्य घृत ...	७७३	पित्ततिभिरकी चिकित्सा	"	नेपशृंगाद्यञ्जन ...	"
द्राक्षाद्य घृत ...	"	कफतिभिरकी चिकित्सा	"	मनःशिलाद्यञ्जन ...	"
कृष्णाद्य तैल ...	"	भास्करवार्त ...	७८३	वचादि काथ ...	७९७
वृहच्छशकाद्य घृत ...	७७४	अन्धसुदर्शक अञ्जन ...	"	अथ नक्तान्धकी चिकित्सा	"
<b>दृष्टिगतरोगका</b>		सुषाववी वार्त ...	७८४	अथ दृष्टिरोगकी चिकित्सा	७९८
<b>निदान ।</b>	७७४	मुक्तादि महाञ्जन ...	"	अथ शुक्लगतरोगका निदान	"
दूसरे पटलगत दोषोंका		चन्द्रोदयादि वार्त ...	"	प्रस्ताप्यमेंके लक्षण ...	"
स्वभाव ...	७७४	हरीतक्यादि वार्त ...	७८५	शुद्धार्मके लक्षण ...	"
तृतीयपटलगतदोषोंके लक्षण	७७५	त्रिफलादि वार्त ...	"	रक्तार्मके लक्षण ...	"
चतुर्थपटलगततिभिरके लक्षण	"	शह्लादि वटी ...	"	अधिमांसार्मके लक्षण ...	"
दोषविशेषके द्वारा रूपोंका		कुसुमिका वार्त ...	"	स्नाय्वर्मके लक्षण ...	"
दीखना ...	"	चन्दनादि वार्त ...	७८६	शुक्तिरोगके लक्षण ...	७९९
पित्तजलिंगनाशके लक्षण	७७६	व्योपादि वार्त ...	"	अर्जुनके लक्षण ...	"
कफजलिंगनाशके लक्षण	"	नगार्जुनाञ्जन ...	"	पिट्टके लक्षण ...	"
रक्तजलिंगनाशके लक्षण	"	शशचर्मगर्भ मर्षी ...	"	शिराजालके लक्षण ...	"
परिम्लायिसङ्गक लिंगनाशके		शतावय्यादि चूर्णाञ्जन ...	"	शिराजपिडिकाके लक्षण	"
लक्षण ...	"	नयनामृताञ्जन ...	७८७	बलासके लक्षण ...	"
वार्तादिजन्यनेत्रके वर्णानुसार		मनःशिलादि अञ्जन ...	"	शुद्धगतरोगकी चिकित्सा	"
लिंगनाशके छः प्रकार	"	शशक शलाका ...	७८९	<b>सन्धिजरोगका</b>	
परिम्लायि मण्डलके लक्षण	"	<b>नेत्रनिर्माणप्रकार ।</b>	७८९	<b>निदान ।</b>	८००
वातादिकारणभूतसे उत्पन्न		फलात्रिकाद्य घृत ...	७९१	उपनाहके लक्षण ...	८००
नेत्रमण्डलके रूपविशेष	७७७	मध्यमत्रिफलाद्य घृत ...	"	स्त्राव अथवा नेत्रनाडीके लक्षण	"
दृष्टिरोगोंके नाम तथा संख्या	"	महात्रिफलाद्यघृत ...	"	पथेणो तथा अलजोंके लक्षण	८०१
पित्तवद्विधेद्वै एवं दिवान्धके		द्वितीय महात्रिफलाद्य घृत	७९२	कुमिप्रान्थिके लक्षण ...	"
लक्षण ...	"	भास्कराद्य घृत ...	७९३	सन्धिजरोगकी चिकित्सा ...	"
कफविदग्धदृष्टि और नक्तान्धके		महापटोलाद्य घृत ...	"		
लक्षण ...	"	रास्ताद्य घृत ...	७९४		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
<b>वर्मजरोगका</b>		शैथिलिक शिरोरोगके लक्षण	८०९	वातजन्यप्रदरके लक्षण...	८२३
<b>निदान ।</b>	८०२	त्रिदोषजाशिरोरोगके लक्षण	"	त्रिदोषजप्रदरके लक्षण...	"
उत्संगिनाके लक्षण	८०२	रक्तजशिरोरोगके लक्षण ...	८१०	असाध्यप्रदरोगवाली स्त्रीकी	
कुम्भिकाके लक्षण	"	रसादि धातुक्षयजन्यशिरोरोगके		त्याज्य चिकित्सा ...	"
पोथकीके लक्षण	"	लक्षण	"	चिकित्सानिवृत्तिके पश्चात्	
वर्मशर्करके लक्षण	"	कृमिजशिरोरोगके लक्षण	"	शुद्धातवके लक्षण ...	"
अशोवर्त्मके लक्षण	"	सूर्यावर्त्तिके लक्षण	"	खीरोगकी चिकित्सा ...	८२४
शुष्काशके लक्षण	"	अतन्त्रवातके लक्षण	"	पुण्यानुग मूर्ण	८२७
अंजननामिकाके लक्षण	"	अर्द्धवर्भेदके निदान और		अशोक घृत	"
बहलवर्त्मके लक्षण	८०३	लक्षण	"	शीतकल्याण घृत	८२८
वर्मबन्धके लक्षण	"	शंखके लक्षण	८११	शतावरी घृत	"
क्रिष्टवर्त्मके लक्षण	"	शिरोरोगकी चिकित्सा...	"	सुद्वृघृत	८२९
वर्मकर्मके लक्षण	"	शिरोवर्त्तिके	८१२	शाल्मलीघृत	"
श्याववर्त्मके लक्षण	"	मयूरघृत	"	काश्मरीघृत	"
प्रच्छिन्नवर्त्मके लक्षण	"	लघुमयूरघृत	८१३	सोमरोगका निदान	"
अच्छिन्नवर्त्मके लक्षण	"	महामयूर घृत	"	सोमरोगके लक्षण	"
वातहतवर्त्मके लक्षण	"	बलादि घृत मण्डूर	८१४	सोमरोगकी चिकित्सा ...	८३०
वर्त्मविदके लक्षण	"	पित्तजाशरोरोगकी चिकित्सा	"	मूत्रातिसारके लक्षण	"
निमेषके लक्षण	८०४	रुधिरजन्य शिरोरोगकी चि०	८१५	स्त्रियोंके विद्वेषकी चिकित्सा	"
शोणितार्शके लक्षण	"	कफजशिरोरोगकी चिकित्सा	"	<b>योनिरोगका निदान।</b>	८३१
लगणके लक्षण	"	हरिद्राद्य तैल	"	योनिरोगकी चिकित्सा...	८३३
विसवर्त्मके लक्षण	"	पद्मविन्दु घृत	८१६	गुहृच्यादि घृत	"
कुञ्चनके लक्षण	"	पद्मविन्दु तैल	"	गुहृच्यादि तैल	८३४
पद्मकोपके लक्षण	"	शताहा तैल	८१७	नताय. तैल	"
पद्मशातके लक्षण	"	जीवकाय तैल	"	अथ गर्भप्रदयोग	८३५
वर्मजरोगकी चिकित्सा	"	बलाय तैल	"	लक्ष्मणाद्य घृत	"
<b>पिल्लरोगका</b>		श्लयज शिरोरोगकी चिकित्सा	"	फळ घृत	"
<b>निदान ।</b>	८०५	विडंग तैल	८१८	गर्भोत्पादनविधि	"
पिल्लरोगकी चिकित्सा	८०६	अपामार्गके तैल	"	वृहत्कल्याणघृत	८३७
अयोपपद्मके लक्षण	८०७	सूर्यावर्त्तरोगकी चिकित्सा	"	वृहत्फल घृत	८३८
उपपद्मकी चिकित्सा	"	जीवकाय तैल	८२०	शतावरी घृत	"
अय सशत्य नेत्र लक्षण	८०८	<b>छीरोगाधिकार ।</b>	८२२	वृद्धदारुक. घृत	८३९
सशत्य नेत्रकी चिकित्सा	"	नष्ट आर्त्तवकी चिकित्सा	८२२	अथ संजातगर्भके लक्षण	"
<b>शिरोरोगाधिकार ।</b>	८०९	अथ प्रदररोगका निदान	"	नागोदरके लक्षण	"
शिरोरोगका निदान	८०९	प्रदरके सामान्य लक्षण	८२३	गर्भदाय और गर्भपातके	
वातज शिरोरोगके लक्षण	"	अत्यन्त रुधिर बहनेके उपद्रव	"	अवधिपूर्वक लक्षण	....
पित्तजशिरोरोगके लक्षण...	"	कफजप्रदरके लक्षण	"	गर्भनाश और गर्भपातकी	
		विधिवानुप्रदरके लक्षण	"	चिकित्सा	...

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
अकालपातमें निदानपूर्वक		करवीराय तैल ...	८५८	राक्षाघ घृत ...	७५
दृष्टान्त ...	८३९	कर्पूराय तैल ...	८५८	गौर्याघ घृत ...	७५
मूढगर्भके लक्षण ...	८४०	<b>योनिकेन्द्रनिदान ।</b>	८५८	लाक्षाघ घृत ...	७५
मूढगर्भकी आठप्रकारकी गति ..	७७	वातादिभेदसे रूप ...	८५९	चांगेरी घृत ...	७५
असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके		योनिकेन्द्रकी चिकित्सा ..	८५९	पाठाघ घृत ...	७५
लक्षण ...	७७	<b>बालरोगाधिकार ।</b>	८६०	सोमघृत ...	८७६
मूढगर्भके लक्षण ...	७७	बालरोगका निदान ...	८६०	अष्टमङ्गल घृत ...	८७७
गर्भमरण हेतु ...	७७	वातदूषित दूधके लक्षण ...	७७	कुमारकल्याण घृत ...	७७
असाध्य लक्षण ...	७७	पित्तदूषित दूधके लक्षण ...	७७	खदिराघ घृत ...	७७
प्रीतमासगर्भिणीकीचिकित्सा	८४२	कफदूषित दूधके लक्षण ..	७७	अवस्थाविशेषसे बालकोंको	
गर्भिणीके उबरकी चिकित्सा	८४४	बालकोंकी अन्तर्गत पीडा		घृतपान ...	७७
गर्भिणी प्रसव विटम्बकी		जाननेका उपाय ...	८६१	सिद्धार्थकादि घृत ...	७७
चिकित्सा ...	८४५	बालरोगोंकी चिकित्सा ...	७७	मधुकपान ...	७७
अथ मकल्लशूलका निदान	८४८	पलङ्कपादि धूप ...	७७	द्विपंचमूलाघ घृत ...	८७८
मकल्लशूलकी चिकित्सा ..	७७	सर्पत्वगादि धूप ...	७७	वचाघ घृत ...	७७
सूतिका रोगके लक्षण ...	७७	विसर्पमहापद्मारोगके लक्षण	८६७	दयामाघ घृत ...	७७
सूतिका रोगका निदान ...	७७	उसकी चिकित्सा ...	७७	नागराघ घृत ...	७७
अथ सूतिकारोगोंकी चि०	८४९	कुङ्कुमके लक्षण ...	८६८	क्षीरद्वयाघ घृत ...	७७
प्रतापलङ्केश्वर रस ...	८५२	कुङ्कुमकी चिकित्सा ...	८६८	विभोतकाघ तैल ...	७७
यवादि धूप ...	७७	<b>पारिगर्भिकका</b>		लाक्षाघ तैल ...	७७
द्वितीय यवादि धूप ...	७७	<b>निदान ।</b>	८६९	बालग्रह निदान ...	७७
पिप्पल्यादि धूप ...	७७	पारिगर्भिककी चिकित्सा	८७०	सामान्यग्रहप्रसितके लक्षण	७७
सुवोष्यवादि धूप ...	८५३	तालुकण्टक रोगका निदान	७७	बालग्रहकी चिकित्सा ...	८७९
पिप्पल्यादि काय ...	७७	तालुपाक रोगकी चिकित्सा	७७	<b>स्कन्दग्रहजुष्टके लक्षण ।</b>	८७९
पिप्पल्याघ घृत ...	७७	घ्रणपश्चात्तक रोगके लक्षण	८७१	स्कन्दग्रहजुष्टकी चिकित्सा	८७९
भद्रोत्कटाघ घृत ...	८५४	घ्रणपश्चात्तकी चिकित्सा ...	८७१	रक्षाविधि ...	८८०
पञ्चजीरक गुड़ ...	७७	शय्यामूत्र चिकित्सा ...	८७२	स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टनिदान	८८१
अथ स्तनरोगका निदान	७७	<b>उपशोषी रोगका</b>		तत्स चिकित्सा ...	७७
स्तनरोगकी चिकित्सा ...	८५५	<b>निदान ।</b>	८७२	सुरसादि गण ...	७७
अथ स्तन्यरोगका निदान	७७	उपशोषी रोगकी चिकित्सा	७७	अष्टमूत्र तैल ...	७७
शुद्ध दुग्धके लक्षण ...	८५६	दन्तरोगका निदान ...	८७३	फाकोल्यादि घृत ...	७७
स्तन्यरोगकी चिकित्सा ...	७७	दन्तरोगकी चिकित्सा ...	७७	शकुनिग्रहका निदान ...	८८९
अन्यान्य लक्षण ...	७७	अथ प्रायश्चित्त ...	८७४	शकुनिग्रहकी चिकित्सा	७७
सत्य चिकित्सा ...	७७	दन्तदंष्ट्रेके लक्षण ...	७७	रेवतीग्रहका निदान ...	८८३
चन्द्रकाञ्चिक ...	८५७	दन्तदंष्ट्रीकी चिकित्सा ...	७७	रेवतीग्रहकी चिकित्सा ...	७७
पत्रकाञ्चिक ...	७७	अन्यरोग ...	७७	पूतनाग्रहजुष्टके लक्षण	८८४
अलम्बुपाघ तैल ...	८५८	अश्वगन्धाघ घृत ...	८७५	पूतनाग्रहजुष्टकी चिकित्सा	७७
श्रीपर्णतिल ...	८५८			अन्धपूतनाग्रह निदान ...	७७
कासीसाघ तैल ...	७७				

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
अन्यपूतनाग्रहकी चिकित्सा	८८५	गरविप	८९५	गरविप	९०५
शीतपूतनाग्रहके लक्षण	८८६	रूताविपकी उत्पत्ति और		शूषाघ घृत	९०६
शीतपूतनाग्रहकी चिकित्सा	"	निरास्ति	८९६	रूताविपकी चिकित्सा	"
मुखमण्डिकाका निदान	"	आसुदूर्पाविपके लक्षण	"	मूषकाविपकी चिकित्सा	९०७
मुखमण्डिकाकी चिकित्सा	८८७	असाध्य मूसेके लक्षण	"	अलर्काविपकी चिकित्सा	"
नेगमेपग्रहका निदान	"	कुकलासदृशके लक्षण	"	शृश्रिकविपकी चिकित्सा	९०८
नेगमेपग्रहकी चिकित्सा	"	शृश्रिकदृष्टके लक्षण	८९७	नखदन्तजाविपकी चिकित्सा	९०९
अन्यग्रहप्रसितके लक्षण	८८८	असाध्यशृश्रिकदृष्टके लक्षण	"	खजुराविपकी चिकित्सा	"
ग्रहशाधाकी चिकित्सा	"	कणभदृष्टके लक्षण	"	जलौकाविपकी चिकित्सा	९१०
<b>विषरोगाधिकार ।</b>	<b>८८९</b>	उक्षिदिगदृष्टके लक्षण	"	कीटाविपकी चिकित्सा	"
वैद्यके गुण	८८९	मण्डूकदृष्टके लक्षण	"	पिपीलिकादिविपकी चिकित्सा	"
पाकशालाका विधान	८९०	मत्स्यविपके लक्षण	"	असाध्य लक्षण	९११
विपके लक्षण	"	जलौकाविपके लक्षण	"	पथ्य	९१२
विष देनेवालेके लक्षण	"	ग्रहगोधिकाके लक्षण	"		
विषयुक्त अन्नकी परीक्षाका प्रकार	८९१	शतपदीविपके लक्षण	"	<b>जलदोषादियोगा- धिकार ।</b>	<b>९१२</b>
विषरोगकी चिकित्सा	"	मशकाविपके लक्षण	"	<b>रसायनाधिकार ।</b>	<b>९१४</b>
स्थावरविपके सामान्य कार्य	"	असाध्य मशकदंशके लक्षण	८९८	मधुशुक्त	९१४
क्षरविपके कार्य	८९२	मक्षिकादंशके लक्षण	"	गुडवक्त्र	९१५
धातुविपके कार्य	"	चतुष्पादादिकांके विपके साधारण लक्षण	"	पिप्पल्यादि पट्ट घृत	"
विपलिप्तसखहतके लक्षण	"	विष उत्तरे हुए मनुष्यके लक्षण चिकित्सा	"	पालिवर्धन चतुःस्रह	"
विपपातके लक्षण	"	दोषाविशेषके विषमेदके लक्षण	८९९	शित्रगुटिका	"
जंगम विपके लक्षण	"	चिकित्सा	"	गुग्गुलुरसायन	९१७
सर्पविपके लक्षण	"	जंगमविपकी चिकित्सा	९००	गन्धककल्प	"
विपके दश गुण	८९३	धरिष्टवन्धन	"	गन्धकरसायन	"
विषरोगकी सामान्य चिकित्सा	"	आचूषणच्छेद दाहादिक्रिया	"	गन्धकद्रुति	९१८
सर्पदंशकी असाध्यत्व	"	तार्क्ष्य अंगद	९०२	गन्धकयोग	"
दूर्पाविपके लक्षण	८९४	महागद	"	गन्धककल्प	"
दूर्पाविपके कार्य	"	दशाङ्गधूप	"	ताम्र रसायन	९१९
अस्थानविपके उत्पन्न दूर्पा- विपके लक्षण	"	चन्द्रोदयोऽगद	९०४	द्वितीय ताम्ररसायन	९२०
दूर्पाविपके प्रकोपका समय	८९५	सूर्योदयोऽगद	"	पञ्चामृतस	९२२
प्रकुपितदूर्पाविपके पूर्वरूप	"	अमृतघृत	"	ताम्रक	९२३
प्रकुपित दूर्पाविपके रूप	"	नागदन्त्याघ घृत	"	द्वितीय ताम्रक	"
दूर्पाविपके भेदोंसे विकार भेद	"	तण्डुलीयघृत	"	ताम्रामृताख्यरसायन	"
दूर्पाविपशब्दकी निरुक्ति	"	अजेयघृत	"	पर्यटाल्य रसायन	९२४
दूर्पाविप साध्य, याप्य और असाध्य	"	सूर्यपाशापह घृत	९०५	गन्धकरसायन	"
				अभ्रककल्प	९२५
				महाबल विधानाभ्रक	९२६
				अभ्रक	



विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
उमाभाषितअभ्रक ...	१२९	मांसमर्म	... १४४	दूषित आर्त्तवकी चिकित्सा	१६१
तृतीय अभ्रक ...	"	शिरामर्म	... "	वाजीकरण प्रयोग	... १६२
पानीय भक्तवटी ....	१३०	ज्ञायुमर्म	... "	पुपालिका	... १६३
द्वितीय पानीय भक्तवटी...	"	अस्थिमर्म	... "	रसाढा	... "
तृतीय पानीय भक्तवटी...	"	सन्धिर्मर्म	... "	वृद्धश्वग्धादि घृत	... "
चतुर्थ पानीय भक्तवटी ...	१३१	मर्मोंके पाँच विकल्प	... "	अश्वगन्धादि घृत	... १६४
पञ्चम पानीयभक्तवटी	"	सद्यःप्राणनाशक मर्म	... "	शतावरीघृत	... १६५
अभ्रक संधान ...	"	कालान्तर प्राणहारक मर्म	... "	वाजीकरणाविधान	... "
पट्टी पानीयभक्तवटी...	१३२	विशल्यत्र मर्म	... १४५	नपुंसकत्व कथन	... "
<b>लोहरसायन ।</b>	<b>१३३</b>	वैकल्यकर मर्म	... "	शतावरीघृत	... १६८
सूर्यमयूखसे लोह मारण...	१३३	मर्मोंघातसे शृत्युका कारण	१४६	मापघृत	... "
सूर्यमयूखके द्वारा अभ्रक मारण,	"	घातजरोगगणना	... "	गोधूमाद्य घृत	... "
सप्तम पानीय भक्तवटीका...	१३४	पित्तजनितरोगगणना	... १४७	जीवन्तीयमक	... १६९
सर्वतोभद्रलोह	"	कफके बीस रोग	... "	गुडकूमाण्ड	... १७०
वातशूलप्रकृतिवाले रोगोंके	"	रसायनविधि	... १४८	वाय्वेक्ष्यके कारण और लक्षण	१७१
लिये रसायन ...	१३६	भृंगराजरसायन	... १४९	<b>स्नेहपानाधिकार ।</b>	<b>१७१</b>
कफपित्तप्रकृतिवाले रोगियोंके	"	जलपान	... १५२	स्नेहपानका निषेध	... १७४
लिये रसायन ...	१३७	मधुहरोतकी	... १५३	अस्तिग्धात्रके लक्षण	... "
आमवातादिरोगोंपर दिव्य रं	"	लोहमुग्गुलु	... "	स्निग्धके लक्षण	... १७५
श्लासादिव्याधियोंपर रसायन	१३८	नारसिंह चूर्ण	... १५४	अतिस्निग्धके लक्षण	... "
वातरक्तादिरोगोंपर रसायन	"	अश्वगन्धाद्य चूर्ण	... "	स्नेहपानका फल	... "
प्लीहादिरोगोंपर रसायन	"	वृद्धदाह कल्प	... "	<b>स्वदाधिकार ।</b>	<b>१७५</b>
राजयक्ष्मापर रसायन ....	१३९	ज्योतिषमतीतैलपानाविधि	... १५६	अच्छे प्रकारसे स्वेदित किये	
वातजग्रहणरोगपर रसायन	"	लोहरसायन	... "	हुएके लक्षण	... १७७
पित्तजग्रहणीपर रसायन...	"	दासरसायन	... १५७	अत्यन्त स्निग्धके लक्षण	... "
कफजग्रहणीपर रसायन ...	"	नागार्जुन लोह	... "	<b>वमनाधिकार ।</b>	<b>१७८</b>
वातपित्तकमहणीपर रसायन	१४०	स्थालीपाकाविधि	... १५९	पथ्यापथ्य	... १८१
वातकफजग्रहणीपर रसायन	"	सारस्वत घृत	... "	<b>विरचनाधिकार ।</b>	<b>१८२</b>
पित्तकफजग्रहणीपर रसायन	"	गुह्यच्यादि घृत	... "	अभयाद्य मोदक	... १८५
लोहाभ्रक ...	१४१	चतुष्कुबलय घृत	... १६०	मणिभद्र मोदक	... "
खर्पराख्य रसायन ...	"	द्वितीय सारस्वतघृत	... "	गुहाद्य मोदक	... १८६
शिरोवस्तिप्रकार ...	१४२	अष्टांगमंगल घृत	... "	पथ्यापथ्य	... १८८
मर्मनिर्देश ...	१४३	पथ्यापथ्य	... "	<b>वस्तिकमर्माधिकार ।</b>	<b>१८८</b>
संक्षिप्तमर्म	"	रसायनका विशेष कल	... १६१	वस्तिघ्न निर्माण विधि	... १८९
उदर और उरोगतमर्म ...	"	<b>वाजीकारणा-</b>		गुह्यची तैल	... १९७
पृष्ठमर्म	"	<b>धिकार ।</b>	<b>१६१</b>	जीवंत्याद्य थमक	... "
बाहुमर्म	"	दूषित शुक्रके लक्षण	... १६१	निरुद्धण विधि	... १९८
जत्र्ध्वमर्म	"	वाजीकरण चिकित्सा	... "		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
अन्यच्च	... ९९९	कवलाधिकार ।	१०१५	क्षीरवर्ग	... १०७२
द्वादशप्रसूत	... १००२	कवलशुद्धिके लक्षण	... १०१६	दधिवर्ग	... १०७३
विच्छिन्न वस्ति	... १००३	अशुद्ध कवलके लक्षण	... ,,	तक्रवर्ग	... १०७४
उत्क्लेशन वस्ति	... ,,	<b>नस्याधिकार ।</b>	<b>१०१६</b>	नवनीत और घृत वर्ग	... ,,
दोपहर वस्ति	... ,,	शुद्ध नस्यके लक्षण	... १०१९	तैलवर्ग	... १०७५
शमन वस्ति	... ,,	अन्यच्च	... ,,	मधुवर्ग	... ,,
शोधन वस्ति	... ,,	हीन शुद्धिके लक्षण	... ,,	इधुवर्ग	... १०७६
लेखन वस्ति	... ,,	अतिशुद्धिके लक्षण	... ,,	मद्यवर्ग	... ,,
वृंहण वस्ति	... १००४	<b>स्वस्थवृत्ताधिकार ।</b>	<b>१०२१</b>	मूत्रवर्ग	... १०७७
मधुतैलिक वस्ति	... ,,	<b>द्रव्यगुणाधिकार ।</b>	<b>१०२७</b>	<b>अरिष्टाधिकार ।</b>	<b>१०७८</b>
यापन वस्ति	... १००५	प्रतिनिधि	... १०३३	दूतलक्षण	... १०७८
शुद्ध वस्ति	... ,,	<b>गणपाठाधिकार ।</b>	<b>१०३६</b>	दूत शुभके लक्षण	... १०८०
क्षीर वस्ति	... १००६	<b>संशोधन संशमन-</b>		शकुन लक्षण	... १०८१
मूत्र वस्ति	... ,,	<b>रसद्रव्यादिकाका</b>		स्वप्नाधिकार	... १०८२
वैतरण वस्ति	... ,,	<b>वर्गाधिकार ।</b>	<b>१०४१</b>	कालज्ञान	... १०८५
अर्धमात्रिक निरूह	... ,,	अतुचर्याधिकार	... १०४४	नेत्रपरीक्षा	... १०९४
एरण्डाद्य निरूह	... १००७	स्वस्थके लक्षण	... १०५०	आरोग्यदृष्टिके लक्षण	... १०९५
पथ्य	... १००८	घान्यवर्गाधिकार	... ,,	मुखपरीक्षा	... ,,
अथोत्तरवस्ति विधि	... ,,	मांसवर्गाधिकार	... १०५२	जिह्वापरीक्षा	... ,,
अपिच	... १०११	शाकफलवर्गाधिकार	... १०५५	मूत्रपरीक्षा	... ,,
<b>धूमपानाधिकार ।</b>	<b>१०११</b>	व्यंजनमांसव्यंजनाधिकार	१०६१	अन्य प्रकारके मूत्रकी परीक्षा	१०९६
धूमपानका निषेध	... १०१३	मत्स्यव्यंजनगुणाधिकार	... १०६७	<b>दीपनपाचनद्रव्यलक्षणा-</b>	
अन्यच्च	... ,,	<b>द्रवद्रव्याधिकार ।</b>	<b>१०७०</b>	<b>धिकार ।</b>	
धूमपानका काल	... १०१४	तोयवर्ग	... १०७०	वंगसेनोत्पत्ति	... ११००
				टीकाकारोक्त विज्ञप्ति वर्णन	११०१

इति भाषाटीकासह वङ्गसेनस्थविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।



श्रीः।

अथ भाषाटीकासहितो बङ्गसेनः प्रारम्भः ।

मङ्गलाचरणम् ।

नत्वा शारदपादपद्मयुगलं मत्त्वाप्तवाचां चयं  
गत्वा पारमशेषपूर्वभिपजां सहन्धवारानिधेः ।  
श्रीमत्पण्डितबङ्गसेनगचितां तन्नामिकां संदितां  
शालग्रामपदाभिष नकलितो व्याख्याति विद्वन्मुदे ॥ १ ॥

ग्रन्थारम्भः ।

ध्यात्वा गिरिशामपदाय यत्नःमपत्वं  
सृष्टानुपास्य भिषज्जलदुदाहनीभ ।  
श्रीबङ्गसेनभिपजां सख्यु वेदाङ्गसिद्ध-  
मयोगनिबद्धो बहु लिख्यतेऽस्मिन् ॥ १ ॥  
मैं श्रीबङ्गसेन के, प्रथम गीर्वाणदेवश्रीया प्यान  
कर और शारदपदपद्मयुगलं धनतोको लेखकर एवं  
सृष्ट धर्मोकी उपासना कर और उनकी उपासनाको  
विचार कर मूढ लोगोंके सिद्ध किये हुए प्रयोगोंको  
इन ग्रन्थमें लिखना हूँ ॥ १ ॥

सृजजनप्रार्थना ।

नत्वा शिवं प्रथमतः प्रणिपत्य चण्डीं  
वाग्देवतां तदनु तातपदं शुभं च ।  
संगृह्यते किमपि यत्सुजनेस्तद्व चेतो  
विधातुमुचितं तदनुग्रहेण ॥ २ ॥

प्रथम शिव, पार्वती और सरस्वती देवीको  
कन्दना कर पश्चात् विता और गुणके चरणकमलोंको  
प्रणाम कर उनके अनुग्रहसे मैं इस ग्रन्थमें जो कुछ  
संग्रह करना हूँ उसको सृजन हुआ कर ध्यान  
देकर पढ़ें ॥ २ ॥

दुर्जनप्रार्थना ।

हनुर्जनः परगुणेषु भवाद्दशानां द्वेषः  
किमेव सहजो गुणितापहारी याञ्छापि

( १ ) 'तत् हस्तो' इति पाठान्तरम् । ( २ ) इत्यन्तार-  
धिकः पाठ इति केचित् ।

दैन्यपल्लभगिपला तदानीं तादृग्वि-  
धस्य मिथुनस्य विमोचनाय ॥ ३ ॥

जय दुर्गोके गुणोंमें आर सारीने मनुष्योंका  
दरतेवाना श्याभाविक द्वेष हूँ तब भाष्यमें क्षिणताके ही  
नदान, कल हो प्राम करना इस प्रकारके मिथुन (द्वेष)  
और चान्द्राके मिये क्या रह जन अर्थात् ग्रन्थकार  
गण्ड हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

कान्तिकायासनिजातश्रीगदाधरसु-  
तुना । क्रियते बङ्गसेनन चिकित्सा-  
सारसंग्रहः ॥ ४ ॥

'कान्तिकायास' नगरमें उत्पन्न श्रीगदाधरका  
पुत्र म बङ्गसेन, इस चिकित्सासारसंग्रहको बनाता  
है ॥ ४ ॥

एदि तिष्ठति यस्यैव चिकित्सातत्त्व-  
संग्रहः । सनिदानचिकित्सायां न  
दरिद्रात्यसौ भिषक ॥ ५ ॥

जिस वैद्यके हृदयमें यह चिकित्सातत्त्वसंग्रह स्थित  
रहना है वह वैद्य निदान और चिकित्साके विषयमें  
कदापि दरिद्रताको प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह निदान  
वादि चिकित्साके जाननेमें निपुण हो जाता है,  
उसको किराी और दायकी निदान और चिकित्सामें  
आवश्यकता नहीं रहती, यही पर्याप्त है ॥ ५ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमु-  
त्तमम् । रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो  
जीवितस्य च ॥ ६ ॥

घर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उत्तम मूल (जड़) आरोग्य है और रोग उमके, कल्याणके और जीवन के हरने वाले हैं ॥ ६ ॥

तेषां प्रथमनोपायमनिदुर्वारं हसम् ।  
द्रुमहे नातिविस्तीर्णं सनिदानं  
चिकित्सितम् ॥ ७ ॥

उन अत्यन्त दुर्निवार्य रोगवाले रोगोंके निदान और चिकित्सा सहित शमन करनेवाले उपायोंका अनावश्यक विस्तार रहित पूर्ण रूपसे कहते हैं ॥ ७ ॥

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशय-  
स्तथा । सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां  
पञ्चधा स्मृतम् ॥ ८ ॥

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति यह रोग जाननेके पांच कारण हैं अर्थात् इनके द्वारा रोगका ज्ञान होता है ॥ ८ ॥

येनाहारविहारेण रोगाणामुद्भवो  
भवेत् । क्षयो वृद्धिश्च दोषाणां  
निदानं हि तदुच्यते ॥ ९ ॥

जिम आहार और विहार के द्वारा रोगोंकी उत्पत्ति तथा वातादि दोषोंका क्षय और वृद्धि होती है उसको निदान कहते हैं ॥ ९ ॥

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।

निदानमाहुः पर्यायैः प्राग्रूपं येन

लक्ष्यते ॥ १० ॥ उत्पित्तुरामयो

दोषविशेषणानधिष्ठितः । लिङ्गम-

व्यक्तमल्पत्वाद्ग्राहीनां तद्यथाय-

थम् ॥ ११ ॥ तदेव व्यक्ततां यातं

रूपमित्यभिधीयते । संस्थानं व्यञ्जनं

लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ १२ ॥

जिस लक्षणसे उत्पन्न होनेवाले रोगका ज्ञान हो उसको पूर्वरूप कहते हैं जैसे कि, उबरेके पूर्वमें श्रम आदिका होना उबरेका पूर्वरूप है ।

अब निदानके पर्याय वाचक शब्दोंको कहते हैं— निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्र व्यवहारके अर्थ सुनीश्वरोंने कहे हैं । इनके कहनेका कारण यह है कि व्यवहारके लिये अर्थात् शास्त्रमें इन छहों शब्दोंमेंसे

कोई शब्द जाये तो उसको निदानवाचक ही जाने । जिस जम्भाई आदिसे उत्पन्न होनेवाली व्याधिका ज्ञान हो उनको पूर्वरूप कहते हैं । फिर वह व्याधि दोष (वात पित्त कफ) से बहूना अग्रगत हो । शोभा-  
रणादि दोषोंसे अग्रगत होगी तो व्याधिका

प्रगट होना असम्भव है क्योंकि कारण तो वाता-  
दिक दोष है । अब दोष ही नहीं तो रोग कैसे प्रगट हो सकेगा । उन्तर—इस पदका यह अर्थ है कि दोष (वात पित्त कफ) का व्याधिके अल्प होनेसे अग्रगत रूप होगा अर्थात् थोड़ा २ होना, अतएव तत्तन् उबरादिव्याधिके अपने अपने अग्रगत उद्भूत ।

पूर्वरूप जैसे जैसे हो होते हैं । अब कहते हैं कि पूर्वरूप दो प्रकारका है, एक सामान्य दूसरा विशिष्ट । सामान्यप्राग्रूप (पूर्वरूप) उसे कहते हैं जैसे दोष (वात पित्त कफ) से दूषित धातु उसके विगड़नेसे प्रगट होनेवाले उबरादि व्याधिमात्रकी प्रतीति हो और वात आदि दोषोंके चिह्न न मालूम हो जस

“श्रमोऽस्ति विवर्णत्वमिति” अर्थात् उबरेमें श्रम हो, मनका न लगना, देहका विवर्ण इत्यादि लक्षण । और जिसमें होनाहार रोगारम्भक दोष उनके चिह्न उसके एक अंशकी प्रतीति हो उसका विशिष्ट प्राग्रूप कहते हैं, जैसे “जुभात्यर्थ समारणान्” अर्थात् जंभाइका आना केवल वातके दोषसे ही है । इसमें होनाहार रोग कौन उबर, उसका आरम्भक दोष कौन वात, उस वातका एक अंश कौन जंभाई, पेश और भी जानने चाहिये । इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाई आदि रूप देखकर कदाचिन् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये । क्योंकि यह तो केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिह्न है । इस वातको दृष्टांत देकर समझते हैं—दृष्टान्त । जैसे तृणके समूहको छोटी अंगिकी चिनगारी गिरनेसे धूम (धुआँ) मात्र प्रकट देखकर हाथ, वस्त्र आदिके मारनेमें ही शांति कर सकते हैं, परन्तु जब अग्नि एक साथ जोरसे प्रज्वलित हो गई तब शान्त नहीं होसके ऐमें ही विशिष्ट पूर्वरूपके अल्प होनेसे चिकित्सा करनेमें शांति कर सकते हैं, परन्तु जब रूप

होगया तब उसका उपाय नहीं हो सकता है इसी से पूर्वरूप और रूपमें भेद है । अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरिक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक

तु मनसे सम्बन्ध रखते हैं । शारीरिक जैसे  
में मुखका विरस होना, देह भारी, नेत्रोंसे  
गिरना इत्यादिक और मानसिक जैसे मनका  
जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंमें  
तिन होना तथा खटे चरण पर पदार्थ पर मन  
रना । जब पूर्वोक्त प्रामूप प्रगट होजाय तब उसको  
कहते हैं । और संस्थान, व्यञ्जन, लिंग,  
क्षण, चिह्न और आकृति ये छ द्रव्य रूपके पर्याय-  
वाचक हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

उपशयः ।

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारि-  
णाम् । औषधान्नविहारणामुप-  
योगं सुखावहम् ॥ १३ ॥ विद्याहु-  
पशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति  
स्मृतम् । विपरीतोऽनुपशयो व्याध्य-  
सात्म्यमिति स्मृतः ॥ १४ ॥

अब उपशयके लक्षणको कहते हैं—हेतुविपरीत,  
व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, हेतुविपर्यस्ता-  
र्थकारी, व्याधिविपर्यस्तार्थकारी, हेतुव्याधिवि-  
पर्यस्तार्थकारी ऐसे जो औषध अन्न ( पथ्य ) विहार  
( आचरण ) इनका सेवन सुखकारक जानना  
उसको व्याधिका उपशय कहते हैं । इसका तात्पर्य  
यह है कि, रोगी और रोगका हेतु इनको सुखकारक  
जो औषध पथ्य आचरणरूप प्रयोग उसको उपशय  
कहते हैं और व्याधिसात्म्य ये पर्यायवाचक नाम उन्हीं  
उपशयके हैं । सुखकारकके कहनेसे यह प्रयोजन है  
कि दाह और प्यासयुक्त नवीन ज्वरमें शीतलजलका  
पीना व्याधिका बढानेवाला है इससे शीतल जल  
सुखकर्ता न हुआ अतएव शीतल जलको उपशय न  
समझना चाहिये परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतल जल  
उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है ॥

( अब क्रमसे उदाहरण लिखते हैं । )

हेतुविपरीत औषध-जैसे शीतकफज्वरमें सोंठ, तो  
इसमें प्रथम समझना चाहिये कि, यहां हेतु कौन है  
कि, सर्दी उसका शीतल धर्म है तो अब शीत कफ  
यह कब शान्त हो जब कि सर्दी और कफसे विपरीत  
औषध मिले ऐसी औषध गुंठी सर्दी और कफ  
दोनोंको शान्त करती है तो शीतकफज्वरमें हेतुवि-  
परीत औषध सोंठ हुई । ऐसे ही हेतुविपरीत अन्न

जैसे श्रम और वातसे प्रगट ज्वरोंमें मांसका रस  
और चावल । इसमें हेतु कौन श्रम और वात, ये कब  
शान्त हों, जब श्रम और वात-हरणकर्त्ता पथ्य  
मिले, ऐसा पथ्य कौन है मांसरस और चावलका  
भात, ये श्रम और वातके विपरीत हैं अर्थात् नाशक  
हैं । ऐसे ही हेतुविपरीत विहार कहिये आचरण कौन  
जैसे दिनके सोनेसे प्रकट कफपर रातमें जागना, यहां  
हेतु कौन हुआ कि दिनका सोना, इससे प्रगट दोष  
कौन कफ है, यह कफ कब शान्त हो जब जिस हेतुसे  
प्रगट हुआ उस हेतुसे विपरीत आचरण किया जाय,  
तो दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन है रातमें  
जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरण हुआ । इसी  
प्रकार और उदाहरण व्याधिविपरीत आदिके  
बुद्धिमान मनुष्य स्वयम् समझ लेंगे । जो उपशयके  
लक्षण कहे हैं उससे विपरीत लक्षण अनु-  
पशयके हैं और व्याधिका असात्म्य अर्थात् अस-  
मान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द  
है ॥ १३ ॥ १४ ॥

सम्प्राप्ति ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।  
निवृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जा-  
निरागतिः ॥ १५ ॥

दोष कहिये वात पित्त कफ इनका दुष्ट होना  
नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वका-  
रण या दूसरेके कारण करके ऐसे कुपित दोष अपने  
स्थानको छोड़कर देहमें ऊपर नीचे निरछे विचरते  
हैं उस विचरनेसे जो रोग प्रकट हो उसको सम्प्राप्ति  
कहते हैं और जाति तथा आगति ये दोनों पर्याय-  
वाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं । तात्पर्य यह है  
कि मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ ये सम्पूर्ण दोष  
वढकर जैसे रोगको प्रगट करे वैसेही उसको सम्प्राप्ति  
कहते हैं । उदाहरण—जैसे कुपित दोषोंका आमाश-  
यमें प्रवेश होनेसे और उस स्थानमें इतन्तता गमन  
करनेसे और पकाशयमें रहनेवाली अग्निका बाहर  
निकालनेसे तथा उसी जठर अग्निसे सर्व देहके तन  
होनेसे यह ज्वर है, ऐसा जो निश्चय किया जाता है  
उसीको संप्राप्ति कहते हैं, ऐसे ही अतिमागदि रोगोंकी  
संप्राप्ति जाननी चाहिये ॥ १५ ॥

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः । सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ १६ ॥

अब संप्राप्तिके भेद कहते हैं, सा कहिये सा संख्यादि विशेषण करके पांच प्रकारकी है जैसे १ संख्या २ विकल्प ३ प्राधान्य ४ बल ५ काल, जैसे इसी ग्रंथमें आगे आठ प्रकारका ज्वर, पांच प्रकारकी खाँसी कही जायगी अर्थात् रोगोंकी गणनाको ही संख्यारूप संप्राप्ति कहते हैं ॥ १६ ॥

दोषाणां समवेतानां विकल्पांशशांशकल्पना । स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १७ ॥

मिल हुए दोष कहिये वात पित्त कफ इनके अंशशांशका अनुमान करना उसको विकल्परूप संप्राप्ति कहते हैं, जैसे धूँके निकलनेसे यह पर्वत आगिनवाला है, ऐसे ही इस रागीके दहमें वात का अंश विशेष है कोहसे कि वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहते हैं । उदाहरण—जैसे रूखी शीतल हलकी और फलानेवाली इत्यादि गुणयुक्त जो पवन उसका रूक्ष आदि गुणयुक्त कसैला रस वातको सर्वांश करके बढ़ानेवाला है । ऐसे ही कटुरस सर्व भाव करके पित्तका बढ़ानेवाला है अर्थात् कटु, उष्ण, तद्विग्नत्व करके हींग पित्तको बढ़ाने वाली है । ऐसे ही मधुररस जैसे भैरुका दूध यह सर्व भाव करके कफ बढ़ाने वाला है इत्यादि । इसमें “दोषाणाम्” जो बहुवचन है सो दोषोंके पृथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है और “समवेतानाम्” यह पद जो है सो द्वंद्वज और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धरा है । व्याधिकी स्वतन्त्रता और परतंत्रता करके प्रधानता और अप्रधानता कही है, जैसे स्वतंत्र ज्वरको प्रधानता है और ज्वरार्धानं श्वास आदि रोगोंको अप्रधानता है । अर्थात् व्याधिकी स्वतंत्रतासे प्रधानता और परतंत्रतासे अप्रधानता जाननी चाहिये ॥ १७ ॥

हेत्वादिकात्स्न्यावियवैर्बलावलविशेषणम् ॥ १८ ॥

हेतु आदि शब्दोंसे हेतु, पूर्वरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसे व्याधिकी बलवान् जानना और दोषे लक्षण मिलनेसे निर्बल

जानना जस रागीक प्रति जो निदान कहा है वह निदान सम्पूर्ण रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है या एकदेश, ऐसे ही पूर्वरूप भी समस्त अवयवों करके व्याधिका प्रकाशक है या एकदेशसे इत्यादि ॥ १८ ॥

नक्तंदिनर्तुमुक्तांशिव्याधिकालो यथावलम् ॥ १९ ॥

नक्त ( रात्रि ) दिन ( दिवस ) ऋतु ( वसन्तादि ) भुक्त ( आहार ) इनका अंश कहिये एकदेश उसको यथादोष ( वात, पित्त, कफ ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटने बढ़नेके हेतुका समय जाने । उदाहरण दिखाते हैं । जैसे रात्रिके तीन भाग करे प्रथम, मध्य और अन्त्य तो रात्रिका प्रथमभाग कफका, मध्यभाग पित्तका, अन्त्यभाग वातका है । ऐसे ही दिनके भी तीन भाग करे तो पूर्वाह्न कफका, मध्याह्न पित्तका, अपराह्न वातका है । ऐसे ही ऋतु, जैसे वसंतऋतु में कफ, शरदऋतुमें पित्त और वर्षामें वात कुपित होता है । ऐसे ही भोजनका, जैसे भोजन करनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भले प्रकार परिपक होगया तब वातका काल, इसके जाननेसे यह प्रयोजन है कि, जिस दोष ( वात, पित्त, कफ ) का जो काल कहा है उसका उसी २ काल में जान लेना कठिन मालूम नहीं होता ॥ १९ ॥

इति प्रोक्ता निदानार्थस्ततद्रचासेनोपदिश्यते ॥ २० ॥

इति कहिये यह संक्षिप्त प्रकारसे जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक प्रतिरोगके निदान पूर्वरूपादि करके कहेंगे ॥ २० ॥

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपितामलाः । तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विधिधाहितसेवनम् ॥ २१ ॥

अब पूर्व कहे निदान के दो भेद कौन सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट उसमें सन्निकृष्ट कौन वातादिक समीपके कारण करके सर्व रोगोंका कारण है सो कहते हैं “सर्वेषामिति” कुपित हुए जो मल ( वात, पित्त, कफ ) से सम्पूर्ण रोगोंके कारण होते हैं और उन वात, पित्त, कफ दोषोंके कोपका कारण अनेक प्रकारका अपभ्यसेवन करना ही है ॥ २१ ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते । तद्यथा ज्वरसन्तापद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते । घ्नीहाभि वृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ अशोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥ प्रतिश्यायाद्भेत्कासः कासात्संजायते क्षयः । क्षयो रोगस्य हेतुर्वे शोषस्याप्युपजायते ॥ २२ ॥

कोई प्रश्न करे कि जो, पूर्व कह आये हैं यह ही निदान है अथवा इसके व्यातीरिक्त और इसलिये कहते हैं रोगका रोग भी निदान होता है अर्थात् जो निदानसे कार्य होता है वह ही रोगसे भी होता है, इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं "तद्यथेति" जैसे ज्वरसंतापसे रक्तपित्त प्रगट होता है और रक्तपित्तसे ज्वर और रक्तपित्त व ज्वरसे श्वास प्रगट होता है और घ्नीहाके बढनेसे जैसे उदररोग और उदररोगसे तुजन, बवासीरसे जस उदररोग और गुल्म (गोला) रोग, दिनमें सोने आदिकोंसे जुकाम होता है और जुकामसे खांसी तथा खांसीसे ओज-प्रभृति धातुओंका क्षय होता है। यह क्षयरोग (राज यक्ष्मा) संपूर्ण रोगोंमें राजा है और शोषको भी प्रगट करता है ॥ २२ ॥

ते पूर्व केवला रोगाः पश्चाद्भेत्त्वर्थकारिणः । उभयार्थकरा दृष्टास्तथैव कार्यकारिणः ॥ २३ ॥

वे रोग प्रथम स्वतंत्र होत हैं और पीछे जब बल मिल गया तो वे ही हेत्वर्थकारी अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं, जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है । इस प्रकार रोग उभयार्थकारी अर्थात् कार्य-कारण रूप हैं, सारांश यह कि स्वतंत्र रोग होनेसे कार्यरूप हैं और अन्य रोगका कारण होनेसे कारणरूप हैं ॥ २३ ॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा निवर्तते । न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेतुत्वं कुरुतेऽपि च ॥ एवं कृच्छ्रतमो नृणां दृश्यते व्याधिसंकरः ॥ २४ ॥

१ 'शोषश्च' इति पाठान्तरम् ।

अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधि की विचित्रता दिखाते हैं, जैसे कोई एक रोग दूसरे का कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगट कर आप शांत हो जाता है । जैसे ज्वरके संतापसे रक्तपित्त होता है उस समय ज्वर दूर हो जाय और रक्तपित्त रह जावे । और कोई रोग दूसरे रोगको प्रगट कर आप जैसाका तैसा बना रहता है, जैसे बवासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदररोग पैदा होते हैं । इस प्रकार मनुष्योंके घोर क्लेशदायक मिले हुए रोग देखनेमें आते हैं । विशेष करके चिकित्सा विरुद्ध होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होते हैं ॥ २४ ॥

नस्माद्यत्नेन सद्द्वैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् । ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥ २५ ॥

अब कहे हुए निदानादिपंचकद्वारा रोगनिवृत्ति रूप सिद्धिकी इच्छा करके अवश्य जानने योग्यको कहते हैं "तस्मात्" इति इसी कारण उत्तम सिद्धि हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सद्द्वैत्योंकी इच्छा है उनको ज्वरादि रोगोंका निदान जो आगे कहते हैं वह यत्नेसे जानना चाहिये ॥ २५ ॥

रोगमादौ परीक्षित ततोऽनन्तरमौषधम् । ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ २६ ॥

वैद्यको चाहिये कि प्रथम रोगकी परीक्षा करे पीछे औषध की परीक्षा करे फिर ज्ञानपूर्वक चिकित्सा करे ॥ २६ ॥

यस्तुरोगमविज्ञाय कर्माप्यारभते भिषक् । अप्यौषधविधानज्ञस्तस्यसिद्धिर्यदृच्छ्यात् ॥

जो वैद्य रोगोंको बिना जाने चिकित्सा करता है चाहे वह औषधमें प्रवीण भी हो तथापि उसकी सिद्धि प्रारब्धके अधीन है ॥ २७ ॥

अप्यौषधविधानज्ञः सर्वभेषज्यकोविदः । देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ २८ ॥

जो वैद्य सम्पूर्ण औषधियोंके विधानको जाननेवाला है और सर्व औषधियोंके जाननेमें प्रवीण है तथा देश और कालके प्रमाणको जानता है, उसको सिद्धि में कुछ संशय नहीं ॥ २८ ॥



भेषज्याहारचेष्टानां यो न वेत्ति गुणा-  
गुणम् । न स वेत्ति भिषकसम्पत्तस्य  
स्वास्थ्यहिताहितम् ॥ २९ ॥

जो वैद्य औषध, आहार और रोगीकी चेष्टाके  
गुण अचरुणोंको नहीं जानता वह उसके स्वास्थ्य  
संबन्धी हित और अहितको भी अच्छे प्रकारसे नहीं  
जान सकता ॥ २९ ॥

आदावन्ते रुजां ज्ञानं प्रयतेत चिकि-  
त्सकः । साध्यासाध्यविभागज्ञस्तनः  
कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ ३० ॥

साध्य और असाध्य रोगका जाननेवाला वैद्य प्रथम  
रोगको अच्छे प्रकारसे जाने फिर उसकी चिकित्सा  
करे ॥ ३० ॥

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभेषज्यको-  
विदः । देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य  
सिद्धिर्न संशयः ॥ ३१ ॥

जो वैद्य सम्पूर्ण रोगों और सब औषधियोंके  
विधानमें प्रवीण है तथा देश और कालके  
प्रमाणको जाननेवाला है, उसकी-निस्संदेह सिद्धि  
होती है ॥ ३१ ॥

दर्शनस्पर्शनमश्रुव्याधिज्ञानं त्रिधा  
मतम् । आदौ दृशस्ततः स्पर्शाच्छी-  
तादिप्रभृतोऽपरम् ॥ ३२ ॥

दर्शन (देखना), स्पर्श छूना और प्रश्न (पूछना)  
इन तीन प्रकारसे रोगका ज्ञान होता है, वहाँ प्रथम  
मल, मूत्र, जिह्वादिकको देखें, पश्चात् रोगीके शरी-  
रको छूकर शीतादिकको जाने फिर उससे सम्पूर्ण  
हाल पूछें ॥ ३२ ॥

कृच्छ्रोपायः सुखोपायो द्विविधः  
साध्य उच्यते । असाध्यो द्विविधो  
ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः ॥ ३३ ॥

कष्टसाध्य और सुखसाध्य ऐसे साध्य दो  
प्रकारका है तथा असाध्य भी दो प्रकारका है, एक  
याप्य और दूसरा अधिकित्स्य अर्थात् त्याज्य ॥ ३३ ॥

याप्याः केचित्प्रकृत्यैव साध्या  
याप्या उपेक्षिताः । स्वभावाद्वा-  
धयोऽसाध्याः केचिद्याप्या उपेक्षि-  
ताः ॥ ३४ ॥

कोई रोग तो स्वभावसे याप्य होने है और कोई  
साध्यकी उपेक्षा करनेमें याप्य हो जाते हैं, कोई  
स्वभावसे ही असाध्य होते हैं और कोई याप्यरोग  
उपेक्षा अर्थात् उनकी चिकित्सा नहीं करनेमें  
असाध्य होजाते हैं ॥ ३४ ॥

साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चा-  
साध्यतां तथा । प्रन्ति प्राणानसाध्या-  
स्तु नराणां निष्क्रियावताम् ॥ ३५ ॥

चिकित्सा नहीं करनेवाले मनुष्योंके साध्यरोग  
याप्य होजाते हैं, याप्यरोग असाध्य होजाते हैं और  
असाध्यरोग प्राणोंका नाश करते हैं ॥ ३५ ॥

जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्प-  
तया गदः । वह्निशत्रुविपेस्तुल्यः  
स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ ३६ ॥

रोगके उत्पन्न होने ही उसका यत्न करना चाहिये  
यह न समझे कि, रोग तो अभी उत्पन्न हुआ, साध्य  
है अथवा जरामा ही है ऐसी उपेक्षा न करे । क्यों  
कि, थोड़े दिनोंका उत्पन्न हुआ अल्प ही रोग, अग्नि,  
शत्रु और विपके समान अनेक प्रकारके विकारोंको  
उत्पन्न कर देता है ॥ ३६ ॥

स च प्रकुपितो दोषः समुत्थानविशे-  
षतः । स्थानान्तरगतश्चापि विकारा-  
न्कुरुते बहून् ॥ ३७ ॥

वही दोष कालान्तरमें अनेक कारणोंसे कुपित होकर  
पश्चात् स्थानान्तर में जाकर बहुतसे विकारोंको उत्पन्न  
कर देता है ॥ ३७ ॥

निवृत्तोऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनायाति  
हेतुना । क्षीणे मार्गे कृते दोषैः शेषः  
सूक्ष्म इवानलः ॥ ३८ ॥

आराम हुआ रोग, दोषोंके द्वारा क्षीण किये  
हुए मार्गमें शेष रह जाने पर अल्प कुप्य करकेसे ही  
जरामी अग्निकी चिनगारीके समान फिर प्रचण्ड  
हो जाता है ॥ ३८ ॥

कर्मजा व्याधयः केचिदोपजाः  
सन्ति चापरे । कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये  
कर्मजास्तं स्वहेतुकाः ॥ ३९ ॥

कोई व्याधि कर्मज होती है और कोई दोषज होती  
है और कोई व्याधि कर्मज और दोषज दोनों मिली



## ऋतुप्रकरण ।

वर्षा नभोनभस्यो तु तत्र वायुः प्रकु-  
प्यति । पित्तं प्रायेण रक्तञ्च शरदा-  
शिवनकार्तिकौ ॥ ५० ॥

श्रावण और भादोंको वर्षाऋतु कहते हैं, वर्षाऋ-  
तुमें वायु कुपित होती है, आश्विन और कार्तिकको  
शरदऋतु कहते हैं, शरदऋतुमें प्रायः पित्त और  
रुधिर कुपित होते हैं ॥ ५० ॥

हेमन्तो मार्गशीर्षो तु वातलो रूक्ष  
एव तु । तद्वच्च शिशिरो माघः  
फाल्गुनश्च प्रकीर्त्तितः ॥ ५१ ॥

मार्गशिर और पौषको हेमन्तऋतु कहते हैं, हेमन्त  
ऋतु वातकारक और है । माघ और  
फाल्गुनको शिशिरऋतु कहते हैं, शिशिरऋतुके  
गुण भी इसीके समान हैं ॥ ५१ ॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखौ तस्मिन्शुष्पमा  
प्रवर्त्तते । ज्येष्ठापाटो च विख्यातौ  
निदाघः पित्तवानपि ॥ ५२ ॥

चैत्र और वैशाखको वसन्तऋतु कहते हैं, वसन्त-  
ऋतुमें कफ कुपित होता है । ज्येष्ठ और आपादको  
ग्रीष्मऋतु कहते हैं, ग्रीष्मऋतुमें पित्त कुपित होता  
है ॥ ५२ ॥

## जलप्रकरण ।

यथर्तुक्रमनिर्दिष्टं जलं काथ्यं च  
वक्ष्यते । वर्षासूदकमादाय पचेत्तत्स-  
प्तभागिकम् । अष्टभागावशिष्टं तु  
निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ ५३ ॥

जिसप्रकार ऋतुओंमें जलके काथका क्रम कहा है  
उसीको अद्य कहता हूँ, वर्षाऋतुमें जल लेकर औटाये  
जब पचते २ सात भाग जल जाय अर्थात् सेरभरका  
आधपाक बाकी रह जाय तब उस अष्टावशेष निर्दोष  
जलको पीवे ॥ ५३ ॥

धारापातेन विष्टम्भि दुर्जरं पवना-  
हृतम् । शृतशीतं त्रिदोषघ्नं वाप्या-  
न्तर्भावितं भुवि ॥ ५४ ॥

बड़ा औटा हुआ जल धारारूपसे पतित होनेपर  
विष्टंभकारक होता है और वायुसे ताडित होनेपर

दुर्जर होता है । जो औटाकर घर्त्तनमें ही मुँह टक  
कर शीतल किया गया हो ऐसा शृतशीतल जल  
त्रिदोषनाशक होता है ॥ ५४ ॥

प्रावृट् नभोनभस्यो च इषोर्जो तु  
शरन्मतौ । मार्गशीर्षो तु हेमन्तः  
शिशिरो माघफाल्गुनौ ॥ वसन्तश्चै-  
त्रवैशाखौ निदाघः शुचिशुक्ल-  
भाक् ॥ ५५ ॥

श्रावण और भादोंको प्रावृट्ऋतु कहते हैं, कार  
और कार्तिकको शरदऋतु कहते हैं, मार्गशिर और  
पौषको हेमन्तऋतु कहते हैं, माघ और फाल्गुनको  
शिशिरऋतु कहते हैं, चैत्र और वैशाखको वसन्त  
ऋतु कहते हैं, ज्येष्ठ और आपादको ग्रीष्मऋतु  
कहते हैं ॥ ५५ ॥

प्रावृट्काले शृतं तोयं दद्याच्चाष्टगुणं  
जलम् । अष्टभागावशिष्टं तु निर्दो-  
षमुदकं पिबेत् ॥ ५६ ॥

प्रावृट्ऋतुमें अष्टावशेष अर्थात् सेरभरका आधपाक  
शेष रहा और औटाकर शीतल कियाहुआ निर्दोष  
जल पीना चाहिये ॥ ५६ ॥

शरदि षड्गुणं तोयं दत्त्वा कथित-  
माचरेत् । षष्ठभागावशिष्टन्तु पिबे-  
दोषहरं जलम् ॥ ५७ ॥

शरदऋतुमें षष्ठावशेष अर्थात् तीन पाव जलको  
औटावे, जब औटते २ आध पाव रह जाय तब उस  
दोषनाशक जलको पीवे ॥ ५७ ॥

हेमन्ते च शृतं तोयं दत्त्वा पञ्चगुणं  
जलम् । पञ्चभागावशिष्टन्तु निर्दो-  
षमुदकं पिबेत् ॥ ( १ )

हेमन्तऋतुमें सवासेर जलको औटावे जब  
औटते २ पावभर जल बाकी रह जाय तब उस  
पंचावशेष निर्दोष जलको पीवे ॥ ( १ )

शिशिरे च शृतं तोयं दत्त्वा  
चतुर्गुणं जलम् । चतुर्भागावशिष्टन्तु  
निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ ( २ )

शिशिरऋतुमें चतुर्थांश शेष अर्थात् एक सेर  
जलको औटावे जब औटते २ पाव भर बाकी रह

जाय तत्र शीतल करके उस निर्दोष जलको पीवे ॥ (२)

वसन्ते त्रिगुणं तोयं दत्त्वा कथितमाचरेत् । तृतीयभागशिष्टन्तु पिवेदोषहरं जलम् ॥ ५८ ॥ (३)

वसन्तऋतुमें तीन भागका एक भाग जल बाकी रह जाय अर्थात् तीनपाव जलको औटावे जय औटते २ एक पाव रह जाय तब उसको शीतल करके पान करे ॥ ५८ ॥ (३)

ग्रीष्मे च द्विगुणं तोयं दत्त्वा वापि भिषग्वरः । अर्धोदकावशिष्टन्तु पिवेदोषहरं जलम् ॥ ५९ ॥

ग्रीष्मऋतुमें अर्द्धावशेष अर्थात् एकसेर जलको औटावे जय औटते २ आधसेर बाकी जल रह जाय तब उसको शीतल करके पान करे ॥ ५९ ॥

ऋषोपः शरद्वसन्तेषु बहुकालेषु शान्तिः ॥ कफपित्तानिलाः पूर्वमध्यान्तेषु व्यवस्थिताः । वयोहोराविभुक्तानां सन्धिष्वपि कफानिला ॥ ६० ॥ वायोः प्रत्यूषसायाह्ने जीर्णान्ते च विसर्पणम् । पित्तस्याहो निशश्चाह्ने जीर्णमाने च लक्षयेत् ॥ ६१ ॥ भुक्तमात्रप्रदोषे तु पूर्वाह्ने श्लेष्मणो भवेत् । एकद्वित्रिविभागेन दुष्टान्दोषान्विशोधयेत् ॥ ६२ ॥

शरद और वसन्तऋतुमें कुपित हुए वातादिदोष बहुत कालमें शांत होते हैं - कफ, पित्त और वात ये तीनों दोष अवस्था, दिन, रात्रि और भोजन, इनके प्रथम, मध्य और अंतभागमें व्यवस्थित हैं अर्थात् प्रथम वाल्यावस्थामें कफ, दूसरी तरुणावस्थामें पित्त और अंत अर्थात् वृद्धावस्थामें वायुका समय होता है, दिनके प्रथमभागमें कफ, मध्यमें पित्त, अन्तमें वातका समय होता है, रातके प्रथमभागमें कफ, मध्यभागमें पित्त और रात्रिके अंतमें वातका समय होता है । भोजन करते समय कफ, भोजनके पचते समय पित्त और भोजनके पच जानेपर वायुका समय होता है तथा इनकी संधियोंमें कफ और वायुका

समय होता है एक, दो, तीन इन भागोंसे दुष्ट दोषोंको क्रमसे शोधन करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

शीते शीतप्रतीकारमुष्णे चैवोष्णवारणम् । कृत्वा कुर्यात्क्रियां प्रातः क्रियाकालं न हापयेत् ॥ ६३ ॥

शीत कालमें शीतका प्रतिकार करते हुए और उष्ण कालमें उष्णताका प्रतिकार करतेहुए चिकित्सा करे ! किन्तु समयके विपरीत कदापि चिकित्सा न करे तथा क्रियाके कालको न जाने दे अर्थात् समयपर चिकित्सा करे ॥ ६३ ॥

अप्राप्ति वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न कृता क्रिया । क्रिया हीनातिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिध्यति ॥ ६४

जो वैद्य अप्राप्तसमयमें चिकित्साको करता है और प्राप्तसमयमें अथवा क्रियाके समयमें क्रिया नहीं करता है वह क्रियाहीन वैद्य साध्य रोगोंको भी नहीं सिद्ध कर सकता ॥ ६४ ॥

यात्युदीर्णं शमयति नान्यव्याधिं करोति च । सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ ६५ ॥

जो बड़े हुए रोगको शमन करे तथा दूसरे रोगको उत्पन्न नहीं करे उसको चिकित्सा कहते हैं किन्तु उसको चिकित्सा नहीं कहते कि जो एक रोगको तो नष्ट करे और दूसरेको उत्पन्न करे ॥ ६५ ॥

प्रकृतिलक्षण ।

शुक्रासृग्गभिणीभोज्यचेष्टा गर्भाशयान्तरे । यः स्याद्दोषोऽधिकस्तत्र प्रकृतिः सतथोदिता ॥ ६६ ॥

पुरुष और स्त्रीके संयोगके समय वीर्य, रज, स्त्रीका भोजन, स्त्रीकी चेष्टा और गर्भाशय इन्हीं जौनमा दोष अधिक हो उसी दोषके अनुसार गर्भाशयकी प्रकृति होती है, इस प्रकार यह प्रकृति वातादिदोषसे सात प्रकारकी प्रकृति है ॥ ६६ ॥

कृशां कृशोऽल्पकेशश्च कृशान्वितो च स्थिरः । बहुयागदं वातप्रकृतिको नरः ॥ ६७ ॥ वातप्रकृतिवाले मनुष्य प्रत्येक प्रकृतिको नरः

स्थित नहीं रहे, बहुत बोलनेवाले और स्वप्नमें आकाशमें जानेवाले अर्थात् प्रायः सुप्नमें आकाशमें गमन करते हैं ॥ ६७ ॥

अकालप्रलितो गौरः प्रस्वेदी कोपनी  
बुधः । स्वप्नेऽपि दीप्तिवत्प्रेक्षी पित्त-  
प्रकृतिको नरः ॥ ६८ ॥

पित्तप्रकृतिवाले मनुष्य विना समय ( थोड़ा-अवस्था ) में सफेद बालोंवाले, गौरवर्ण, अधिक पसीनेवाले, श्रोणस्थभात्री, पीडित और स्वप्नमें सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि इत्यादि दीप्त पादाथोंको देखते हैं ॥ ६८ ॥

स्थिरचित्तः सुवद्भाङ्गः सुव्रतः स्निग्ध-  
मूर्द्धजः । स्वप्ने जलाशयालोकी  
श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ ६९ ॥

कफप्रकृतिवाला मनुष्य स्थिरचित्तवाला, गठीले शरीरवाला, सुबैल, सदाचारी, चिकने बालोंसे युक्त और स्वप्नमें जलाशयको देखनेवाला होता है ॥ ६९ ॥

संमिश्रैर्लक्षणैर्ज्ञेया द्वित्रिदोषानुगा  
नराः । दोषश्रेद्रससद्भावे व्याधित-  
प्रकृतिः स्मृतः ॥ ७० ॥

दो दोषोंके लक्षणोंके होनेसे द्वन्द्वज प्रकृति और तीन दोषोंके होनेसे त्रिदोषज प्रकृति होती है, दोष और रसभावके होनेसे रोगीकी व्याधित प्रकृति कही है ॥ ७० ॥

प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं कोचि-  
दाहुः पवनदहनतोयैः कीर्तिता-  
स्तास्तु तिस्रः । स्थिरविपुलशरीरः  
पार्थिवश्च क्षमावान् शुचिरथ चिर-  
जीवी नाभसः खेमहृदिः ॥ ७१ ॥

कोई २ वेष कहते हैं कि, मनुष्योंकी प्रकृति पंच महाभूतोंसे बनी है जैसे कि पवन ( वात ), अग्नि ( पित्त ) और जल ( कफ ) इन तीन महाभूतोंवाले मनुष्योंकी प्रकृति तो ऊपर कह चुके, अब दो पृथ्वी और आकाश प्रकृतिवाले मनुष्योंके लक्षण कहते हैं, जो मनुष्य स्थिर और पुष्ट शरीरवाला हो तथा क्षमावान् हो उनकी पृथ्वी प्रकृति जानना । जो शुद्ध आत्मावाला हो और बहुतकाल पर्यन्त जीवे उनकी आकाशप्रकृति जाननी ॥ ७१ ॥

विपजातो यथा कीटो न विषेण  
विपद्यते । तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शक्तु-  
वन्ति न बाधितम् ॥ ७२ ॥

जिस प्रकार विषसे उत्पन्न हुआ कोई विषके द्वारा पीडित नहीं होता उसी प्रकार प्रकृतिगत दोष उसी प्रकृतिवाले मनुष्यको पीडित नहीं करते ॥ ७२ ॥

वायुः सामो विवन्धाप्रिसाद्गुत्तम्भन-  
कजनः । वेदनाशोफनिस्तोदः क्रम-  
शोऽङ्गानि पीडयेत् ॥ ७३ ॥

आमयुक्त वायु-विषमन्थ, अग्निकी संदला, सन्भ, कूजन, पीड़ा, सूजन, तोड़नेके समान वेदना और क्रमसे सब अंगोंको पीडित करता है ॥ ७३ ॥

विचरेद्युगपथापि गृह्णाति कुपितो  
भृशम् । स्नेहाद्यैर्वृद्धिमायाति मेघे  
सूर्योदये निशि ॥ ७४ ॥

एकसाथ सब अंगोंमें विचरण करती है और बारंबार कुपित होती है तथा स्नेहादिक ( तैलादि ) पदार्थोंसे वृद्धिको प्राप्त होती है एवं मेघके समय, सूर्योदय और रात्रिमें बढ जाती है ॥ ७४ ॥

निरामो विशदो रुक्षो निर्विवन्धो-  
ऽल्पवेदनः । विपरीतगुणैः शान्तिं  
स्निग्धेर्याति विशेषतः ॥ ७५ ॥

निरा मंत्रवायु-विशद, रूखी, विवन्धरहित, अल्प वेदना युक्त, सामवायुसे विपरीत गुणोंवाली और विशेषकर स्निग्ध पदार्थोंसे शांत होती है ॥ ७५ ॥

दुर्गन्धं हरितं श्यावं पित्तमम्लरसं  
गुरु । अम्लिकाकण्ठहृदाहकरं सामं  
विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥

सामपित्त-दुर्गन्धित, हरित, श्यामरंगका, खट्टे रसवाला, भारी तथा खटापन व कंठ और हृदयमें दाहको उत्पन्न करता है ॥ ७६ ॥

आताम्रं पित्तमद्युष्णं रसे कटुकम-  
स्थिरम् । पक्वं विगन्धिं विज्ञेयं रुचि-  
वह्निबलप्रदम् ॥ ७७ ॥

निराम पित्त-ताम्रवर्ण, अत्यंत उष्ण, रसमें कटु और चंचल होता है एवं पक्व, गंधरहित, रुचि-कारक, अग्नि और बलकारक होता है ॥ ७७ ॥

फेनिलतंतुलः श्यावः कण्ठदेशेऽव-  
तिष्ठति । सामो बलाशो दुर्गन्धः  
शुद्धहारविघातकृत ॥ ७८ ॥

साम कफ-फेनिल (झागोंसे मिला हुआ), तंतुवार,  
श्याव, कंठमें रुकनेवाला, दुर्गन्धित तथा छींक और  
बुकारकी रोकनेवाला है ॥ ७८ ॥

फेनवान्पिण्डितः पाण्डुर्निःसारोऽग्ध-  
एव च । पक्वः स एव विज्ञेयः स्वेद-  
वान्वक्त्रशुद्धिकृत ॥ ७९ ॥

फका हुआ कफ झागोंदार, गांठवाला, पांडुवर्ण,  
सारहीन, गंधराहित, पसिनेसे युक्त और मुखको शुद्ध  
करनेवाला होता है ॥ ७९ ॥

देशप्रकृतिलक्षण ।

बहूदकनगोऽनूपः कफमारुतुरोग-  
वान् । जाङ्गलोऽल्पाम्बुशाखा च  
रक्तपित्तगदोत्तरः ॥ ८० ॥

जिसमें बहुतसे जलाशय और पर्यंत हों उसको  
अनूपदेश कहते हैं, अनूपदेश-रुफ और चायुके  
रोगोंको उत्पन्न करता है, जिसमें थोड़े जलाशय  
और थोड़े वृक्ष हों उसको जांगलदेश कहते हैं,  
जांगलदेश-रक्त और पित्तके रोगोंको उत्पन्न करता  
है ॥ ८० ॥

संश्लिष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणो  
मतः । समाः साधारणे यस्माद्वर्षा-  
शीतोष्णमारुताः । समता तेन  
दोषाणां तस्मात्साधारणो वरः ॥ ८१ ॥

जिसमें दोनों देशोंके लक्षण मिलते हों उसको  
साधारणदेश कहते हैं, साधारणदेशमें वर्षा, शीत,  
उष्ण और पवन समान होते हैं, इस कारण साधारणदेश  
सब देशोंमें उत्तम है ॥ ८१ ॥

स्वदेशे निचिता दोषास्त्वग्यस्मि-  
न्कोपमागताः । बलवन्तस्तथा न  
स्युर्जलजा वा स्थलाहताः ॥ ८२ ॥

अपने देशमें संचित हुए दोष अन्य देशमें कुपित  
हों तो बलवान् नहीं होते, उसीप्रकार जलदेशके  
दोष स्थलमें और स्थलदेशके दोष जलमें कुपित  
हानपर बलवान् नहीं होते ॥ ८२ ॥

उचिते वर्तमानस्य नास्ति देशकृत  
भयम् । आहारस्वप्नचेष्टादौ तदे-  
शस्य गुणे सति ॥ ८३ ॥

जो मनुष्य उचित आहार और विहार करने  
उनको दुष्टदेशका कुछ भी भय नहीं, इसलिये कि  
देशमें रहे उसके अनुसार ही आहार, निद्रा  
चेष्टा करनी चाहिये ॥ ८३ ॥

मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्याता  
स्तथैव च । यथा दुष्परिपृष्टाश्च मोह-  
येयुश्चिकित्सकान् ॥ ८४ ॥

जिन रोगोंको वैद्यने अच्छे प्रकारसे नहीं देखे  
और जिन रोगोंका समस्त हाल रोगीने वैद्यसे नहीं  
नहीं कहा तथा जिन रोगोंका हाल वैद्यने रोगी  
अच्छे प्रकार नहीं पूछा ऐसे रोग वैद्यको मोहित  
हैं, इसलिये वैद्यको उचित है कि, अच्छे प्रकारसे रोग  
की चेष्टाको देखे और समस्त व्यवस्था  
तथा रोगी भी वैद्यको अच्छे प्रकारसे सब  
सुना दे ॥ ८४ ॥

चिकित्सापादचतुष्टय ।

वेद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषज्यं परिच-  
रकः । एते पादाश्चिकित्सायाः कर्म-  
साधनहेतवः ॥ ८५ ॥

वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक ये चिकित्सा  
के चार पाद चिकित्सा कर्म हैं और येही (कारण)  
साधनके हेतु हैं ॥ ८५ ॥

वैद्यलक्षण ।

तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मणा स्व-  
कृती । लघुहस्तः शुचिः शूरः सर्व-  
पस्करभेषजः ॥ ८६ ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्य-  
मानव्यवसायी म्रियंवदः । सत्यधर्मत-  
यश्च स भिषक्पदमश्नुते ॥ ८७ ॥

जो आयुर्वेद शास्त्रके तत्त्वार्थको अच्छे प्रकार  
जानता हो, जिसने अन्य वैद्यकी कीर्ति कि-  
अनेकवार देखा हो और अपने आप चिकित्सा र-  
न्धी क्रियामें कुशल हो, हलके हाथवाला हो,  
हो, शूर ( गंभीर रोगीको देखकर घबड़ाये ना-  
सबेप्रकारके चिकित्साके उपकरण और औषधि

युक्त हो, अत्यन्त लक्षणबुद्धिवाला, महाबुद्धिमान्, उद्योगी, प्रियवचन धोलनेवाला और सत्यवर्ममें तत्पर ऐसा वैद्य उत्तम होता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

### रोगीके लक्षण ।

आयुष्मान् सत्यवर्मपरायण, साध्य, द्रव्यवान्, त्मवानपि । उच्यते व्याधितः पादौ वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ८८ ॥

आयुष्मान्, सत्यवर्मपरायण, साध्य, द्रव्यवान्, इष्टमित्रांसे युक्त, वैद्यकी आज्ञाको माननेवाला और आस्तिक ऐसा रोगी अच्छा कहा है ॥ ८८ ॥

### औषधलक्षण ।

प्रशस्तदेशसम्भृतं प्रशस्तेश्नि चोद्ध-  
तम् । अल्पमात्रं महावीर्यं गन्धवर्ण-  
रसान्वितम् ॥ ८९ ॥ दोषघ्नमग्नानिक-  
रमविकारि विपर्यये । समीक्ष्य काले  
दत्तं च भैषज्यं पाद उच्यते ॥ ९० ॥

उत्तम देशमें उत्पन्न हुई, शुभ दिनमें उखाड़ी हुई, अल्प मात्रा वाली और अत्यन्त वीर्यवान् तथा गंध वर्ण और रससंयुक्त, दोषनाशक, ग्लानि और विकार नहीं करनेवाली और विचारकर उत्तम समयमें दी गई ऐसी औषध उत्तम होती है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

### परिचारकलक्षण ।

स्निग्धोऽनुगुप्सुर्वलवान्युक्तो व्याधि-  
तरक्षणे । वैद्यवाक्यकृदश्रान्तः पादः  
परिचरो मतः ॥ ९१ ॥

स्नेहयुक्त, ग्लानिहीन, बलवान्, रोगीकी रक्षा करनेमें चतुर और वैद्यके वचनोंमें श्रद्धा करनेवाला ऐसा परिचारक उत्तम होता है ॥ ९१ ॥

गुणवद्विस्त्रिभिः पादेष्वनुगुणवा-  
न्निषक् । व्याधिमलेन कालेन  
महान्तमपि साधयेत् ॥ ९२ ॥

औषध, रोगी और परिचारक च तीनों गुणवान् पाद और चौथा गुणवान् वैद्य ये चारों पाद अल्पकाल में ही बड़े रोगीको आरोग्य कर देते हैं ॥ ९२ ॥

वैद्यहीनास्त्रयः पादा गुणवन्तो-  
ऽप्यपार्थकाः । उद्गातृहोतृवद्भाषो  
यथाऽध्वर्युं विनाऽध्वरे ॥ ९३ ॥

वैद्यके विना चिकित्साके तीनों पाद गुणवान् भी हों तो भी व्यर्थ है, जैसे अध्वर्युके विना यज्ञमें उद्गाता, होत और ब्रह्मा निरर्थक हैं ॥ ९३ ॥

वद्यस्तु गुणवानेकस्तारयेदातुरं सदा ।  
प्लवं प्रतितरहीनं कर्णधार इवा-  
म्भासि ॥ ९४ ॥

एक गुणवान् वैद्य ही संदेह रोगियोंको रोगरह सागरसे तारता है जैसे प्रतितर (भीतरसे सहाय लगानेवाले अन्य मनुष्यों) के विना अकेला महाह्व ही नावको पार लगाता है ॥ ९४ ॥

### अथ मान ।

जालान्तरगते भानो रजो यदणु  
दृश्यते । तैश्चतुर्भिर्भवेद्विक्षा लिक्षापह-  
मिश्च सर्पपः ॥ ९५ ॥

सूर्यकी किरणें जो घरके जाली, झरोखे, रोसन-दान और धमारोंमें पड़ती हैं और उनमें जो रजके प्रसरेणु दृश्यते हैं उन चार प्रसरेणुओंकी एक लिक्षा होती है, छः लिक्षाकी एक सरसों होती है ९५

पदसर्पपर्यवस्त्वेको गुञ्जैका च यव-  
द्विभिः । गुञ्जाभिर्दशभिः भोक्तो  
मापको ब्रह्मणा पुरा ॥ ९६ ॥

छः सरसोंका एक जो होता है, तीन जवोंकी एक गुंजा, दश गुंजाका एक मासा होता है ॥ ९६ ॥

चत्वारो मापकाः शाणास्तद्व्यं  
कोलसंज्ञितम् । चटकं द्रंक्षणं चैव  
कर्पस्तद्विगुणो भवेत् ॥ ९७ ॥

चार मासेका एक शाण होता है, दो शाणका एक कोल होता है, चटक और द्रंक्षण यह कोलके नाम हैं, दो कोलका एक कर्प होता है ॥ ९७ ॥

अक्षः पिचुः पाणितलं कर्पं तच्च  
सुवर्णकम् । विडालपदकं तुल्यं  
किञ्चिच्च कवलप्रहम् ॥ ९८ ॥

अक्ष, पिचु, पाणितल, कर्प, सुवर्णक, विडालपद, तुल्य, किञ्चित् और कवलप्रह य कर्पके पर्याय हैं ॥ ९८ ॥

द्राभ्यामर्धपलं ताभ्यां शुक्तिश्चापि  
तदुच्यते । स्याच्चतुष्कार्षिकं चैव पलं  
सर्वत्र निश्चितम् ॥ ९९ ॥

दो कर्षका आधा पल होता है, उसको शुक्ति भी  
कहते हैं, चार कर्षका एक पल होता है ॥ ९९ ॥

यन्मुकुञ्चं पलं मुष्टिस्तथा विल्वं  
चतुर्थिका । षोडशिका समुष्टिः  
पलमेकं प्रमाणतः ॥ १०० ॥

प्रकुञ्च, पल, मुष्टि, विल्व, चतुर्थिका और षोड-  
शिका यह पलके नाम हैं ॥ १०० ॥

रक्तिकादिषु मानेषु यावत्सु कुडवेषु  
च । शुष्कद्रवाद्रद्रव्याणां तुल्यमानं  
प्रकीर्तितम् ॥ १०१ ॥

रक्तीसे लेकर कुडवपर्यंत सूखे, गीले आर  
पतले पदार्थ समान लेने चाहिये ॥ १०१ ॥

क्वाथद्रव्यस्य बाहुल्यादुदकं स्वल्प-  
मेव च । सम्यक्पाकं न मुञ्चन्ति  
हीनवीर्य्यन्तु केवलम् ॥ १०२ ॥

क्वाथद्रव्योंके अधिक और जलके अल्पहानसे अच्छे  
प्रकारसे पाक नहीं होता अर्थात् केवल हीनवीर्य्य  
होता है ॥ १०२ ॥

आर्द्रद्रव्यद्रवद्रव्यपलैरष्टाभिरेव च ।  
शुष्कद्रव्यचतुष्केण कुडवः समुदा-  
हतः ॥ १०३ ॥

गीले पदार्थ और पतले पदार्थोंका आठ पलका  
कुडव होता है और सूखे पदार्थोंका चार पलका  
कुडव होता है ॥ १०३ ॥

चतुष्पलस्तु कुडवः स शरावार्द्धं  
उच्यते । मानिकाष्टौ पलान्येव धरणं  
दशभिः पलैः ॥ १०४ ॥

चार पलका कुडव होता है उसको अर्द्धशराव भी  
कहते हैं, आठ पलकी मानिका होता है, दस पलका  
धरण होता है ॥ १०४ ॥

द्राभ्यां पलाभ्यां प्रसृतं तच्च षोडशकं  
विदुः । खारी च षोडश द्रोणा दश-  
भिर्धरणैस्तुला ॥ १०५ ॥

दो पलका एक प्रसृत होता है, उसको षोडशक भी  
कहते हैं, षोडश द्रोणकी एक खारी होती है, दश  
धरणकी एक तुला होती है ॥ १०५ ॥

चत्वारः कुडवः प्रस्थः स शरावद्वयं  
मतम् । पलानि चैव विद्वद्भिः षोड-  
शैव प्रकीर्तिताः ॥ १०६ ॥ प्रस्थाश्च-  
त्वार एव स्युराढकोऽष्टशरावकः ।

कंसः स एव विज्ञेयः स तु पात्रं च  
पण्डितैः ॥ १०७ ॥ अपि मानविदो  
ह्येष चतुष्पष्टिपलो मतः । चत्वारश्चा-

ढको द्रोणः स द्वात्रिंशच्छरावकः  
॥ १०८ ॥ शूर्पाद्धं नल्वणं चैव कलशो  
घट एव च । अयं च पलसंख्यातः

पट्टपञ्चाशच्छतद्वयम् ॥ १०९ ॥

चार कुडवका एक प्रस्थ होता है, उसको शराव-  
द्वय और षोडशपल भी कहते हैं । चार प्रस्थका  
एक आढक होता है, उसको अष्टशराव, कंस, पात्र,  
और चतुःपष्टि पल भी कहते हैं । चार आढकका  
एक द्रोण होता है, उसको द्वात्रिंशच्छरावक, शूर्पाद्धं,  
नल्वण, कलश और घट कहते हैं । इसकी पलसंख्या  
२५६ होती है ॥ १०६ ॥ । १०७ ॥ १०८ ॥  
॥ १०९ ॥

द्रोणद्वयं च शूर्पः स्यात्स कुम्भ  
इति चोच्यते । चतुष्पष्टिशरावोऽसौ  
व्यवहारार्थमुच्यते ॥ ११० ॥

दो द्रोणका एक शूर्प होता है । उसको कुम्भ और  
चतुष्पष्टि शराव भी व्यवहारके लिये कहते हैं ॥ ११० ॥

स द्वादशपलानीह शतानां पञ्च  
चोच्यते । गोणी द्रोणाश्च चत्वारः  
स शराह्वशतं मतम् । अष्टाविंशति

संयुक्तं सर्वथा सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ १११ ॥  
पलानां तु सहस्रैकं चतुर्विंशतिकं  
स्मृतम् । प्रस्थादिमानमारभ्य द्रव्या-

दैर्द्विगुणान्वितम् । कुडवोऽपि क्वचि-  
दृष्टं यथा दन्तीघृते स्मृतम् ॥ ११२ ॥



इसकी पलमेंख्या ५१२ होती है, चार ट्रेणकी एक गोणी है, उसके एकसौ अष्टाईस ( १२८ ) शराव तथा १०२४ पल होते हैं, प्रथमसे लेकर आगेको जो द्रव्य लेना हो तो दुगुना लेना चाहिये जैसे कि, धृती-घृतमें लिये जाते हैं ॥ १११ ॥ ११२ ॥

वैणवाक्षांयसादीनां भाण्डं तु चतुरंगुलम् । विस्तीर्णमथ वृत्तं च कुडवत्तं विनिर्दिशेत् ॥ ११३ ॥

कुडवपरिमाण-बौल, काठ और लोहे आदिका चार अंगुल चौड़ा, चार अंगुल गहरा ऐसा एक गोल पात्र सामान्य वस्तु डालनेके लिये बनाया जाता है उसको कुडव परिमाण कहते हैं ॥ ११३ ॥

त्याज्यरोगी ।

चण्डः साहसिको भीतः कृतघ्नो व्यग्र एव च । यो वैद्यनृपतिद्वेषासङ्घेष्टा शोकपीडितः ॥ ११४ ॥ यादृच्छिको मुमूर्शुश्च विहीनः करणेश्वरः । वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनः सुशङ्कितः ॥ ११५ ॥ भिषजामभिधेयश्च नोपक्रम्या भिषग्विधाः । एतावुपाचरन्वैद्या बहून्टोपानवाप्नुयात् ११६ ॥ अभ्योऽन्ये समुपक्रम्या नराः सर्वैरुपक्रमैः । नैव कुर्वीत लोभेन चिकित्सापुण्यविक्रयम् । ईश्वराणां वस्तुमतां लिप्सेनार्थन्तु वृत्तये ॥ ११७ ॥

जो अत्यन्त क्रोधी, दुस्माहसके काम करनेवाला, डरपोक, उपकारको न माननेवाला, हठ करनेवाला, वैद्य, संजन और राजसे द्वेष करनेवाला, शोकसे पीडित, भवेच्छाचारी, मर्गकी इच्छा करनेवाला, शिथिल इन्द्रियो वाला, वैरी, वैद्यपर विश्वास नहीं करनेवाला, श्रद्धारहित और वैद्यके वचनोंमें शंका करनेवाला ऐसे रोगीको वैद्यको चिकित्सा नहीं करनी चाहिये तथा जो वैद्यके समान हो और जो वैद्यकां ठगनेवाला हो ऐसे रोगीको भी चिकित्सा नहीं करे क्योंकि ऐसे रोगियोंकी चिकित्सा करनेसे वैद्य अत्यन्त अपवादको प्राप्त होता है, इनके सिवा अग्यान्य सर्व प्रकारके

रोगियोंकी विधिपूर्वक चिकित्सा करे, वैद्य लोभसे निर्धन पुरुषोंसे धन लेकर चिकित्साके पुण्यको वंचे नहीं किन्तु जो मनुष्य समर्थ और धनवान् हो उनसे आजीविकाके लिये धन लेनेकी इच्छा करे ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः । स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं भिषगश्नुते ॥ ११८ ॥

जो दुष्टवृद्धि मनुष्य, अपने शरीरकी चिकित्सा कराता है और वैद्यको उसका कुछ बदला नहीं देता तो उसका उस शरीरके द्वारा किया हुआ समस्त पुण्य वैद्यको प्राप्त होजाता है ॥ ११८ ॥

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्दुर्मनः क्वचिदशः । कर्माभ्यासः क्वचिच्चैव चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ ११९ ॥

चिकित्सा करनेसे कहीं धनकी प्राप्ति होती है, कहीं मित्रता होती है, कहीं धर्म, कहीं यश और कहीं किया करनेका अभ्यास बढ़ता है इसप्रकार चिकित्सा करना कहीं भी निष्फल नहीं होता ११९ ॥

कुचैलः कर्कशः स्तब्धो ग्रामीणः स्वयभागतः । शस्यते यश्च वैद्यो न धन्वन्तरिसभो यदि ॥ १२० ॥

जो वैद्य मैले कुचैले बल्लवाला, अग्रिय वचन बोलनेवाला, मूर्ख, व्यवहारमें अकुशल, घासका रहनेवाला, बिना थुलाये अपने आप आयाहुआ धन्वन्तरिके समान हो तो भी उसका आदर नहीं होता ॥ १२० ॥

स वैद्यो नहि योऽसाध्यानारभेत चिकित्सितुम् । अवैद्यजीविकासिद्धिः स्याद्दुष्पुणाक्षरवत्क्वचित् ॥ १२१ ॥

जो असाध्यरोगकी चिकित्सा करना आरम्भ करता है वह वैद्य नहीं अर्थात् दुर्वैद्य है। ऐसे कुर्वैद्यकी जीविकासिद्धि कदापि दुष्पुणाक्षरवत्के समान होजाती है ॥ १२१ ॥

भाषान्त्रं विद्वद्ग्रेहे मेहे यवमद्यं मदात्ययं च । अदुद्धिपूर्वमप्याशु सेवितं भेषजं भवेत् ॥ १२२ ॥

जैसे कि मूर्ख मनुष्य भी शीघ्र ही विद्वद्ग्रह और प्रमेहरोगमें प्रथम मापाश्र और मदात्यय रोगमें जौकी मद्रिा सेवन करे तो औषधि होजाती है ॥ १२२ ॥ आयुर्वेदोदितो युक्तिं कुर्वन्ति स्वहिताय ये । पुण्यायुर्वुद्धिसंयुक्ता नीरोगास्तु भवन्ति ते ॥ १२३ ॥

जो मनुष्य अपने हितके लिये आयुर्वेदोक्त युक्तिको पालन करते हैं वे पुण्य, आयु और युद्धियुक्त होकर सदैव नीरोग रहते हैं ॥ १२३ ॥

### आयुर्वेदलक्षण ।

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा । विद्यते यत्र विद्वद्भिः स चायुर्वेद उच्यते ॥ १२४ ॥

जिसमें आयुका हित, अहित, रोगका निदान और उसके शमनके उपाय विद्यमान हों उस शास्त्रको विद्वान् आयुर्वेद कहते हैं ॥ १२४ ॥

### रोगगणना ।

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी चाशोऽजीर्णं विपूचिका । अलसः सबिलम्बी च कृमिरुक्पाण्डुकामलाः ॥ १२५ ॥

हलीमर्क रक्तपित्तं राजयक्ष्मा उरक्षतम् । कासो हिका तथा श्वासः स्वरभेदस्त्वरोचकाः ॥ १२६ ॥

छद्दिस्तृण्णा च मूर्च्छा च रोगाः पानात्ययादयः । दाहाख्यस्त्वपरोन्मादश्चापस्मारोऽनिलामयः ॥ १२७ ॥

वातरक्तमुरुस्तम्भ आमवातोऽथ शलरुक् । पङ्क्तिजं शूलमानाह उदावर्तोऽथ गुल्मरुक् ॥ १२८ ॥

हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं तथाऽश्मरी । प्रमेहो मधुमेहश्च पिट्टिकाश्च प्रमेहजाः ॥ १२९ ॥

मेदोदोषोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगण्डकाः । गण्डमाला ततो भ्रान्तिरुद्वेदं श्लेष्मिपदं ततः ॥ १३० ॥ विद्वधिव्रणशोफो च द्वौ व्रणौ भ्रमना-

डिकौ । भगन्दरोपदंशौ च शुकदोष-स्त्वगामयः ॥ १३१ ॥ शीतपित्तमुद्वेदश्च कोष्ठश्चेवाम्लपित्तिकः । विसर्पश्च स-विस्फोटः सरोमन्ती मसूरिका ॥ १३२ ॥ क्षुद्रास्यकर्णनासाद्विच्छरः स्त्रीवालकामयाः । विषं क्षेत्ययमेवात्र ज्ञेय उद्देशसंग्रहः ॥ १३३ ॥

( सब रोगोंकी गणना लिखते हैं:—)

ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, अर्श ( ववासीर ), अजीर्ण, विपूचिका, अलस, बिलम्बिका, कृमिरोग, पांडुरोग, कामला, हलीमर्क, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, उरक्षत, कास ( खाँसी ), टिफारोग, श्वास, स्वरभेद, अरोचक, छाई ( वमन ), तृणारोग, मूर्च्छारोग, पानात्ययादिरोग, दाहरोग, उन्मादरोग, अपस्मार, वातरोग, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, आमघात, शूलरोग, पित्तशूल, आनाहरोग, उदावर्त, गुल्मरोग, हृदयरोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरीरोग, प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहपिट्टिका, मेदोरोग, उदररोग, शोथरोग, अंडवृद्धि, गलगण्डरोग, गण्डमाला, ग्रन्थिरोग, अर्बुदरोग, श्लेष्मिपदरोग, विद्वधि, व्रणशोफ, व्रणरोग, नाडीव्रण, भ्रमररोग, भगन्दर, उपदंशरोग, शुकदोष, कुष्मादि त्वचाके रोग, शीतपित्त, उद्वेद, कोष्ठरोग, अम्लपित्त, विसर्परोग, रोमास्तिका, मसूरिका, क्षुद्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, स्त्रीरोग, बालरोग, विषरोग ये रोग इस ग्रंथमें कहे जायेंगे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

इति निदानाधिकारः ।

### अथ ज्वराधिकारः ।

ज्वरः समस्तरोगाणां यतो राजेति विभ्रुतः । अतः प्रथमतस्तस्य प्रवक्ष्यामि चिकित्सितम् ॥ १३४ ॥

ज्वर सकल रोगोंका राजा है ऐसा सुना जाता है, इसकारण सबसे पहले ज्वरकी चिकित्सा कहता हूँ ॥ १३४ ॥

दक्षापमानसंक्रुद्धरुदनिःश्वाससम्भवः।  
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वः सङ्घातागन्तुजः  
स्मृतः ॥ १३५ ॥

ज्वर दक्षके अपमानसे क्रोपित हुए महादेयके ६पा-  
ससे उत्पन्न हुआ है और वह पृथक् (चातज, पित्तज,  
कफज), द्वन्द्वज—(चातपित्तज, कफपित्तज, चात-  
कफज), त्रिदोषज—(सन्निपात जिसमें चात, पित्त,  
कफ तीनों मिले हुए हों) और जागन्तुज—(आग्नि-  
घातादिजनित) इन भेदोंसे आठ प्रकारका है ॥ १३५ ॥

दुष्टाहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाश-  
याश्रयाः । वह्निर्निरस्य कौष्ठाग्निं  
ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ १३६ ॥

दुष्ट आहार और दुष्ट विहारके करनेसे चातादि दोष  
आमाश्रयमें स्थित होकर कोठेके अग्निकी गरमीको  
बाहर निकालकर रसमें प्राप्त होकर ज्वरको उत्पन्न  
करते हैं ॥ १३६ ॥

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः।  
इच्छाद्वेषो मुहुश्चापि शीतवातात-  
पादिषु ॥ १३७ ॥ जृम्भाङ्गमदो गुरुता  
रोमहर्षोऽरुचिस्तमः । अप्रहर्षश्च शीतं  
च भवत्युपत्यति ज्वरे ॥ १३८ ॥

विना परिश्रम किये श्रम मालूम होना, यहाँ चित्त  
न लगना, शरीरका रंग बदल जाय, मुखमें नीरसना,  
नेत्रोंमें जल भर आना, शीतवायु और धूपमें वारंवार  
इच्छा और चारंवार अप्रीतिका होना, जम्भाइयोंका  
आना, अंगोंका टूटना, शरीरमें भारीपन, रोमोंच  
होना, भोजनमें अरुचि, अंधकारदर्शन, हर्षका नाश  
और शीतका लगना ये ज्वरके पूर्वरूप हैं अर्थात्  
ज्वरके पहिले ये लक्षण होते हैं ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थं स-  
मीरणात् । पित्तान्नयनयोर्दाहः कफा-  
दन्नारुचिस्तथा ॥ १३९ ॥

ये सामान्य पूर्व लक्षण कहे, अब कुछ विशेष  
कहते हैं । वातज्वरमें प्रथम जम्भाई अधिक आती हैं,  
पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह होता है और कफज्वरमें अन्नसे  
अरुचि होती है ॥ १३९ ॥

सर्वलिङ्गसमावायः सर्वदोषमको-  
पजे । रूपरन्यतराभ्यां च संतुष्टै-  
न्द्वर्जं विदुः ॥ १४० ॥

त्रिदोषज ज्वरमें तीनों दोषोंके लक्षण होने हैं  
और द्वन्द्वजज्वरके पूर्वमें अन्यान्य दोषोंके मिले हुए  
लक्षण होते हैं ॥ १४० ॥

ज्वरस्य पूर्वरूपेषु वर्तमानेषु शुद्धिमानां  
पाययेत्सर्पिरेवार्त्तं ततः स लभते  
सुखम् ॥ १४१ ॥ विधिर्मारुतजेष्वेष  
पत्तिकेषु विरेचनम् । मृदुप्रच्छदं  
तद्वत्कफजेषु विधीयते । सर्वं त्रिदोष-  
जेषुक्तं यथादोषं विकल्पयेत् ॥ १४२ ॥  
स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं  
तथा । गुग्गुलुश्च रोगे तु स ज्वरो  
व्यपदिश्यते ॥ १४३ ॥ दोषैः सर्वैर्व-  
दुधा समुद्धान्तेर्विमार्गैः । विक्षिप्य-  
मानोऽन्तरिर्भवेत्प्याशु वहिश्चरः १४४  
रुणाद्धि चाप्यपां धातुं यस्मात्तस्मा-  
ज्ज्वरातुरः । भवत्यल्पुष्णगात्रश्च स्वि-  
द्यति न च सर्वशः ॥ १४५ ॥ परिपे-  
कान्प्रदेहांश्च स्नेहान्संशोधनानि च ।  
द्विवास्वप्नं व्यायामं  
शिशिरं जलम् । क्रोधप्रवातभोज्यांश्च  
वर्जयेत्तरुणज्वरो ॥ १४६ ॥

अब ज्वरके पूर्वरूपकी चिकित्सां कहते हैं । वात-  
ज्वरके पूर्वरूपमें रोगीको घी पिलाने तो उसको सुख  
प्राप्त होता है । पित्तज्वरके पूर्वरूपमें मृदु विरेचन है  
और कफके पूर्वरूपमें मृदु वमन करावे । त्रिदोषज्वर  
के पूर्वरूपमें दोषोंकी कल्पना कर यथादोषानुसार  
कर्म करे । ज्वरके लक्षण—पसीनिका न आना,  
सन्तापका होना और सम्पूर्ण अंगोंमें पीडाका होना  
ये सब लक्षण जिसमें एक साथ हों उसको ज्वर कहते  
हैं । वातादिदोष वेगवान् हो इधर उधर फलकर एवं  
तिर्यग्गामी होकर भीतर आग्निको बाहर निकाल  
देते हैं । उस आग्निके निकलनेसे पसीना रुक जाता है  
इसकारण सब शरीर गरम हो जाता है तब उसको  
ज्वरातुर कहते हैं। ज्वरमें परिपेक (जलादिकसे शरीरको

सौचता ) चन्दनादिका शरीरमें लेप करना, तैल घृतादिक भिन्नघ पदार्थोंका सेवन, वमन, विरेच-  
नादि कर्म, दिनमें सोना, मैथुन करना, दंड कसरत  
आदि करना, शीतल जलका सेवन, श्रोत्र, वायुका  
सेवन और भोजन चें सव, नवीन ज्वरवाला मनुष्य  
त्याग देवे ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ १४४ ॥  
१४५ ॥ १४६ ॥

शोथश्छर्दिर्मदो मूर्च्छा तृष्णा भ्रम-  
मरोचकाः । प्राप्नोत्युपद्रवानेतान्परि-  
पेकादिसेवनात् ॥ १४७ ॥

यदि नवीन ज्वरवाला उपरोक्त परिपेकादि  
सेवन करे तो उसके शोथ, ( सूजन ), धनन, मद्,  
मूर्च्छा, तृष्णा, भ्रम और अरुचि आदि उपद्रव उत्पन्न  
होते हैं ॥ १४७ ॥

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा भोजयेत्प्रभो-  
नम् । श्लेष्मशये प्रवृद्धोष्मा बलवान-  
नलस्तदा । वेगापायेऽन्यथा तद्धि  
ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ १४८ ॥

जो ज्वरसे पीडित हो अथवा जो ज्वरसे मुक्त हो  
गया हो उसको अवश्य हलका भोजन करना चाहिए।  
क्योंकि कफके क्षय होनेसे गरमी घटजाती है और  
उससे जठराग्नि प्रबल हो जाती है इसलिये वेगके  
हलके होने पर पथ्य देना चाहिए नहीं तो वेग  
को प्राप्त होकर ज्वरके वेगको बढा देते हैं ॥ १४८ ॥

ज्वरितो हितमश्नायाद्यद्यप्यस्याऽरु-  
चिर्भवेत् । अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षी-  
यते त्रियत्तेऽथवा ॥ १४९ ॥

अतएव ज्वरवाले मनुष्यको यदि अरुचि भो हो  
तो भी हितकारक पदार्थोंको भक्षण करावे, क्योंकि  
अन्न देनेके समय भोजन नहीं करनेसे ज्वररोगी  
क्षीण हो जाता है अथवा मर जाता है ॥ १४९ ॥

शुर्वभिप्यन्दकाले च ज्वरी नाद्या-  
त्कथञ्चन । न तु तस्याहितं भुक्तमा-  
युपे वां सुखाय च ॥ १५० ॥

ज्वररोगीको भारी और अभिप्यन्दी पदा-  
र्थोंका भोजन तथा बिना समय कदापि भोजन नहीं  
खाना चाहिए, क्योंकि यह उसकी आयु और सुखके  
लिए हितकारक नहीं होता ॥ १५० ॥

आनद्धः स्तिमितेदोषैर्यावन्तं काल-  
मातुरः । तावत्कालान्तु लघ्वन्नमश्री-  
यात्तु विरिक्तवत् ॥ १५१ ॥

जबतक ज्वररोगी दोषोंसे विरा रहे तबतक उसके  
हलका अन्न विरिक्त ( जुलाब लिए हुए ) के समान  
देना उचित है ॥ १५१ ॥

सातत्यात्स्वाद्यभावाच्च पथ्यं द्वेष्य-  
त्वमागतम् । कल्पनाविधिभिस्तंस्तेः  
भियत्वं गमयेत्पुनः ॥ १५२ ॥

बहुत दिनोंतक निरंतर सेवन करने और स्वादिष्ट  
न होनेसे पथ्य द्वेषभावको प्राप्त हो जाता है—अर्थात्  
उससे अरुचि हो जाती है तब उसको पथ्य अनेक  
प्रकारकी कल्पनाओंसे सुन्दर करें ॥ १५२ ॥

अरुचौ मातुलुङ्गस्य केसरं साज्यसे-  
न्धवम् । धात्रीद्राक्षासितानां वा  
कल्कमास्थेन धारयेत् ॥ १५३ ॥

इति तरुणज्वरविधिः ।

जो ज्वरमें अरुचि हो तो धिजौरे नीबूकी केसर  
को घी और सेंधे नोनमें मिलाकर अथवा आमले,  
दाख और मिश्री इनके कल्कको मुखमें धारण  
करे ॥ १५३ ॥

विनापि भेषजेर्व्याधिः पथ्यादेव निव-  
र्त्तते । न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां  
शतैरपि ॥ १५४ ॥

केवल पथ्य सेवन करनेसे ही बिना औषधके  
भी रोग नष्ट हो जाते हैं किन्तु कुपथ्य सेवन करने  
वाले मनुष्यके सैकड़ों औषधियोंके सेवन करनेसे भी  
आरोग्य नहीं होते ॥ १५४ ॥

शालयो रक्तशाल्याद्याः शस्यन्ते  
पष्टिकादयः । यवाग्वोदनलाजार्थे  
ज्वरितानां ज्वरापहाः ॥ १५५ ॥

शालिधान, लाल शालिधान, पष्टिकधान ( साठी )  
ये सब धान ओदन ( भात ), खीलें और यवागु  
वनानेके लिये लेवे । ओदन ( भात ) और खीलोंकी  
यवागु ये सब ज्वररोगियोंके ज्वरको हरनेवाले  
हैं ॥ १५५ ॥

सुद्वान्मसूरांश्चणकान्कुलित्यान्समकुष्ठ-  
कान् । यूपार्थं यूपसात्स्यानां ज्वरि-  
तानां प्रकल्पयेत् ॥ १५६ ॥

मूँग, मसूर, चने, कुलधी और मोठ ये यूपके  
लिए देने चाहिए । इनमेंसे जौनसा यूप । ज्वररोगीको  
सात्स्य (माफिक) हेतवे वही उसको देना चाहिए ॥ १५६

पटोलपत्रं सफलं कुलकं कारवेह्लकम् ।  
कर्कोटकं कठिल्लं च विद्याच्छाकं ज्वरे  
हितम् ॥ १५७ ॥

पटोलपत्र, पटोलफल, मीठे परवल, करेला,  
ककोडा और पुननेवा इनका शाक ज्वरमें हित-  
कारी है ॥ १५७ ॥

लावान्कपिञ्जलानिणांश्चकोरानुपचक्र-  
कान् । सकुरङ्गान्कालपुच्छान्हरि-  
णान्पृषताञ्जशान् । प्रदद्यान्मांससा-  
त्स्यानां ज्वरितानां ज्वरापहान् ॥ १५८ ॥

लवा, कपिंजल ( तीतर ), एण ( काला हिरन ),  
चकोर, चक्रवा, कुंग, कालपुच्छ, पुपतमृग और  
शशक ( खरगोस ) इन जावोंका मांस ( मांस  
भोजी ) ज्वररोगीको देना चाहिये । परन्तु जिस  
रोगीको जिस जीवका मांस सात्स्य (माफिक) हो वही  
उसको देना चाहिये, ये ज्वरको हरेनेवाले हैं, जो मांस  
नहीं खाते उनके लिये यह विधि नहीं है ॥ १५८ ॥

न कषायं प्रशंसन्ति नराणां तरुण-  
ज्वरे । कषायेनाकुलीभूता दोषा जतुं  
सुदुस्तराः ॥ १५९ ॥

नवीन ज्वरवाले रोगियोंको कषाध नहीं देना  
चाहिये क्योंकि कषाधसे दोष आकुलित हो जाते हैं  
फिर इनको जेतना अत्यन्त दुस्तर हो जाता है १५९

दोषा वृद्धाः कषायेण स्तम्भितास्त-  
रुणज्वरे । स्तम्भ्यन्ते न विपच्यन्ते  
कुर्वन्ति विषमज्वरम् ॥ १६० ॥

नवीन ज्वरमें कषाधके देनेसे दोष वृद्धिको प्राप्त  
होकर स्तम्भित हो जाते हैं, स्तम्भित दोष न पचते  
और न शमन होते हैं किन्तु विषम ज्वरको उत्पन्न  
करते हैं ॥ १६० ॥

न च्यवन्ते न पच्यन्ते कषायैस्तम्भिता-  
मलाः । तिर्यग्विमार्गागाः स्थित्वा  
घोरं कर्तुर्नवज्वरम् ॥ १६१ ॥

कषायसे स्तम्भित हुए दोष न निकलते हैं और न  
पचते हैं किन्तु तिर्यग्मार्गी होकर घोर नवीन ज्वर  
को उत्पन्न करते हैं ॥ १६१ ॥

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान्  
पिधापयन् । विदधाति ज्वरं घोरं  
तस्माद्ब्रह्मणमादिशेत् ॥ १६२ ॥

वातादिदोष आमाशयमें स्थित होकर आमके  
साथ मिलकर जठराग्निको नष्ट कर शरीरके स्रोत  
को रोक करके ज्वरको उत्पन्न करते हैं इसकारण  
आमको पचनेके लिये, जठराग्निको दीपन करनेके  
लिये और स्रोतोंको शुद्ध करनेके लिये ज्वरमें अवश्य  
लंघन कराते चाहिये ॥ १६२ ॥

लङ्घनेन क्षयं नीते दोषे संशुक्षिते-  
ऽनले विज्वरत्वं लघुत्वं च धुञ्चैवास्या-  
पजायेत् ॥ १६३ ॥

लंघन करनेसे वातादि दोष क्षय होकर जठराग्नि  
दीपन होती है तथा ज्वरकी हीनता, लघुता और क्षुधा  
उत्पन्न होती है ॥ १६३ ॥

शरीरलाघवकरं यद्रव्यं कर्म वा  
पुनः । तद्ब्रह्मणमिति ज्ञेयं बृंहणं तु  
पृथग्विधम् ॥ १६४ ॥

जो द्रव्य या कर्म शरीरमें लघुता उत्पन्न करे  
उसको लंघन कहते हैं और बृंहण इसके पृथक् अर्थात्  
विपरीत है ॥ १६४ ॥

बलाविरोधेनाथेन लङ्घनेनोपपाद-  
येत् । बलाधिष्ठानमारोग्यं यद्रथो हि  
क्रियाक्रमः ॥ १६५ ॥

बैधका चाहिये कि, इस प्रकार लंघन करावे  
जिससे रोगीके शरीरका बल नष्ट न हो, क्योंकि  
बलके अधीन आरोग्य है, जिस आरोग्यके लिये यह  
सब क्रियाकल्प कहा गया है ॥ १६५ ॥

तद्धि मारुतधुञ्ज्यामुखशोषभ्रमा-  
न्वितौ कार्यं न बाले वृद्धे वा गर्भिण्यां

न च दुर्बले । न तथाध्वश्रमक्रोधकाम-  
शोकभवे ज्वरे ॥ १६६ ॥

वह लंपन-यातरोगी, तृपास पीडित, क्षुपासे पीडित, मुखशीपी, भ्रमरोग, यालक, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री, दुर्बल मनुष्य और मार्गके चलनेसे थके हुए मनुष्यको तथा श्रम, क्रोध, काम और शोकसे उत्पन्न हुए ज्वरमें नहीं कराने चाहिए ॥ १६६ ॥

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सामे  
विशेषतः । वमनं वमनार्हस्य पथ्य-  
मित्याह वाग्भटः ॥ १६७ ॥

वाग्भटने कहा है कि भोजन करनेके पश्चान् तत्काल ज्वरके आ जाने पर विशेष कर आम ज्वरके होनेपर वमन कराने योग्य रोगीको वमन कराना हितकर है ॥ १६७ ॥

उत्तम लंघन होनेके लक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गं गात्रला-  
घवे । हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्रा-  
क्लमे गते ॥ १६८ ॥ स्वेदं जाते रुचौ  
चैव क्षुत्पिपासासहोदये । कृतं लङ्घन-  
मादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मानि ॥ १६९ ॥

अपानवायु, मूत्र और मलका यथानियमसे निर्गत होना, देहमें हलकापन, हृदय, डकार, कंठ और मुख इनका शुद्ध होना, तन्द्रा और ग्लानिका न होना, पसीनाका जाना, रुचिका उत्पन्न होना, क्षुधा और तृपाका एक साथ लगना और आत्मानि किसी प्रकारकी पीड़ा न होना, ये सब लक्षण उत्तम लंघन होनेवाले रोगीके हैं ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

अत्यंत लंघन होनेके दोष ।

पर्वमेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य  
च । क्षुत्प्रणाशो रुचिस्तृष्णा दीर्घलयं  
श्रोत्रनेत्रयोः ॥ १७० ॥ मनसः  
संभ्रमोऽभीक्ष्णमूर्ध्ववातः क्लमो हृदि ।  
देहाग्निबलहानिश्च लङ्घनेऽतिकृते  
भवेत् ॥ १७१ ॥

अत्यन्त लंघन करनेके दोष-शरीरकी सब सन्धियोंमें पीडा, शरीरमें हडफूटन, खाँसो, मुखशोष, क्षुधाका नाश, अरुचि और तृपा, कान और नेत्रोंमें

दुर्बलता, मनमें घारम्बार भ्रमका होना, सर्वव ऊर्ध्ववातके उपद्रवोंका होना, हृदयमें ग्लानिका होना, देह, जठराग्नि और बलका नाश होना; ये सब लक्षण अत्यन्त लंघन करनेसे होते हैं ॥ १७० ॥ १७१ ॥

ज्वरमें जलपानविधि ।

तृप्यतः सलिलं चोर्ष्णं दद्याद्वातक-  
फज्वरं । तद्धि मार्दवकृदोपस्रोतसां  
शीतमन्यथा ॥ १७२ ॥

वात कफज्वरमें तृपा लगनेपर रोगीको उष्ण जल देना चाहिये, गरम जल दोषोंको शमन और शरीरके स्रोतोंको गृह्य करनेवाला है । शीतल जल इससे विपरीत गुणोंवाला है ॥ १७२ ॥

पित्तमद्यविपोत्थेषु पित्तकैः शृतशी-  
तलम् । मुस्तापर्पटकोशीरचन्दनोदी-  
च्यनागैः । शृतं शीतं जलं दद्या-  
त्तृहृदाहज्वरशान्तये ॥ १७३ ॥

पित्तरोग, मद्यविकार और विषके उत्पन्न हुए रोगोंमें कडवी औषधियोंके द्वारा जलको औटाकर पश्चान् शीतल करके पीनेको देवे । नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला और सोंठ इनको जलमें औटावे, जत्र औट चुके तब खूब शीतल करके छान लेवे. यह जल तृपा, दाह और ज्वरको शांत करनेके लिये देवे ॥ १७३ ॥

पादशेषः कषायः स्यात् प्रसाध्यः  
पोडशोऽम्भसि । कथितोऽन्तः पडङ्गा-  
दिर्न निषिद्धो नवज्वरे ॥ १७४ ॥

जिसमें काथ द्रव्य सोलहगुने जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रखके जाय उसको कषाय कहते हैं । इसकारण पडङ्गादि जल तरुणज्वरमें निषिद्ध नहीं है ॥ १७४ ॥

ज्वरमें पेया देनेकी विधि ।

लङ्घिताय हिता पेया यथास्वं  
पाचनेः कृता । दीपनी पाचनी लघ्वी  
ज्वरार्तानां ज्वरापहा ॥ १७५ ॥

लंघन करनेवाले रोगीके लिये पेया अत्यन्त हितकारी है, वह यथादोषानुसार पाचन द्रव्योंसे बनाई हुई दीपन, पाचन, हलकी और ज्वररोगीके ज्वरको हरनेवाली है ॥ १७५ ॥

लघुना पञ्चमूलेन पिप्पल्या सह धान्यया । महत्या पञ्चमूल्याथ व्याघ्री  
दुस्पृशंगोक्षरः ॥ १७६ ॥ सिद्धं भिषगाहारं प्रयुञ्जीत तथाक्रमम् । वातपित्तश्लेष्मापित्तै कफवाते त्रिदोषजे ॥ १७७ ॥

लघुपंचमूल-- ( शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरु ) के द्वारा पेया बनाकर वातपित्तज्वरमें देवे । पीपल और धनियेके द्वारा बनाई पेया कफपित्तज्वरमें हितकारी है ।  
बृहत्पंचमूल-- ( विल, श्योनाक, कुम्भेर, पाठर, अरणी ) के द्वारा सिद्ध की हुई पेया कफवातज्वरमें देवे कटेरी, जवासा और गोखरु इनके फायके द्वारा सिद्ध कियेहुए असको त्रिदोषज्वरमें देवे ॥ १७६ ॥ ॥ १७७ ॥

वाते वा सकफे पित्ते सामे वा तरुणज्वरे । आद्यमण्डं प्रशंसन्ति पटोलमगधान्वितम् ॥ १७८ ॥

वातज्वर, कफज्वर अथवा पित्तज्वर, आमज्वर, किंवा तरुणज्वरमें प्रथम परबल और पीपलके द्वारा सिद्ध किया हुआ मंड देना अत्यन्त हितकारी है ॥ १७८ ॥

पेयां वा रक्तशालीनां वस्तिपार्श्वशिरोरुजि । श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ॥ १७९ ॥

लाल शालिधानाकी पेयाकी वस्ति, पार्श्वरोग और शिरोरोगमें देवे । गोखरु और कटेरीके द्वारा सिद्ध की हुई पेया ज्वरमें देवे ॥ १७९ ॥

विषद्ववर्चाः सयवां पिप्पल्यामलकैः श्रुताम् । सर्पिष्मतीं पिबेत्पेयां ज्वरदोषानुलोभिनीम् ॥ १८० ॥

मलबद्धतामें-जौ, पीपल और आमलकेके द्वारा सिद्ध की हुई पेया पान करे । ज्वर और धातादि दोषोंको अनुलोमन करनेके लिये पेयामें धी मिलाकर पीवे ॥ १८० ॥

कासे श्वासे च हिक्कायां पञ्चमूलीश्रुतां पिबेत् ॥ १८१ ॥

खाँसी, श्वास और हिक्कारोगमें पंचमूलके द्वारा सिद्ध की हुई पेया पीवे ॥ १८१ ॥

बलावृक्षाम्लकालाम्लकलशीधाननाश्रुताम् । अस्वेदनिद्रानृणातः पिबेत्पेयां सशर्कराम् ॥ १८२ ॥

सिरंटी, इंगली, घेर, आमले, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी इनकी पेया बनाकर मिश्री मिलाकर पीनेसे पसीनेका न आना, निद्रा और तृष्याकी पीडा दूर होती है ॥ १८२ ॥

हृन्नां यवागूं मन्दाग्निपिपासात्तत्र पाययेत् । मदात्यग्रे मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफोत्थिते । ऊर्ध्वगे रक्तपित्तच यवागूर्न हिता ज्वरे ॥ १८३ ॥

मंदाग्नि और तृष्यातुर रोगीको यवागू नहीं देने चाहिये तथा मदात्ययरोगी, सदैव मदिरा पीनेवाले मनुष्यको ग्रीष्मकाल, पित्तकफोद्भवरोग, ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोग और ज्वररोगमें यवागू नहीं देने चाहिये ॥ १८३ ॥

तत्र तर्पणमेवाग्रे देयं स्याल्लाजसक्तुभिः । ज्वरापहेः फलरसैर्युक्तं समधुशर्करैः ॥ १८४ ॥

ज्वरमें प्रथम खीलोंके सजुओंके साथ ज्वरनाशक फलोंका रस, शहद और मिश्री मिलाकर तर्पण दे ॥ १८४ ॥

स्याद्धितः साधितो यूषस्त्रष्टादशगुणे जले । शृतं पञ्चगुणे भक्तं विलेपे च चतुर्गुणे ॥ १८५ ॥ काथ्यद्रव्याञ्जलिं क्षुण्णं श्रपयित्वा जलाढके । अर्धशतैर्न तेनाथ यवाग्वाद्येव कल्पयेत् ॥ १८६ ॥

अठारह गुने जलमें सिद्ध किया हुआ यूप हितकारी है तथा भातको पाँचगुने जलमें सिद्ध करना चाहिये और विलेपी चौगुने जलमें सिद्ध करना चाहिये । काथ द्रव्य चार पल लेकर खूब कूटकर एक आढके जलमें पकावे, जय आधा भाग जल बाकी रह जाय तब उसको यवागू कल्पना करे ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

वृद्धवैद्याः पलं द्रव्यं प्राहयन्त्याढके जले । भेषजस्यातिबाहुल्यात् कदाचिदरुचिर्भवेत् ॥ १८७ ॥

वृद्धवैद्याः पलं द्रव्यं प्राहयन्त्याढके जले । भेषजस्यातिबाहुल्यात् कदाचिदरुचिर्भवेत् ॥ १८७ ॥

बुद्धैश्च एक पल द्रव्यको लेकर एक आठक जलमें पकाते हैं । कदाचित् औषधिकी बाहुल्यतासे अर्वाचि होजावे तो- ॥ १८७ ॥

तद्रप्सु शृतशीतांसु पडङ्गादि प्रगु-  
ज्यते । कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधये-  
त्प्रस्थिकेऽम्भासि । अर्धशृतं प्रयोक्तव्यं  
पानपेयादिसंविधौ ॥ १८८ ॥

पडंगादिके द्वारा आटाकर स्वयं शीतल किया हुआ जड़ पानीको देवे । एक कर्ष औषधि लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे, जब आधा जल बाकी रह जाय तब उसको पान पेयादिके काममें लावे ॥ १८८ ॥

कर्षार्ध पिप्पलाशुष्णोः कल्कद्रव्यस्य  
वा पलम् । विनीय पाचयेत्सुक्त्या  
वारिप्रस्थेन चापरान् ॥ १८९ ॥

पीपल और साँठ आधा २ कर्ष और कल्क द्रव्य एक पल लेकर विधिपूर्वक एक प्रस्थजलमें पकावे ॥ १८९ ॥

यूपांश्च रसकांश्चैव कल्केनानेन साध-  
येत् । चिल्वप्रमाणो घृततैलभृष्टो  
यूपो रसो वाप्युपकल्पनीयः ॥ कपा-  
यपानपथ्यात्रैर्द्रादशाहेऽतिलङ्घिते ।  
सर्पिर्दद्यात्कफे क्षीणे वातपित्तोत्तरे  
ज्वरे ॥ १९० ॥

फिर इस कल्कके साथ यूप और रसादि सब सिद्ध करे । यूप और रसादिको एक पल तेल अथवा घृतादिसे भूतना चाहिये, बारह दिन लंघन करनेके पश्चान् घातपित्तज्वरमें कफके क्षीण होनेपर कफ, पान और पथ्यादिके साथ घृत देना चाहिये ॥ १९० ॥

पकेषु दोषेष्वमृतं तद्विषोपममन्यथा ।  
दशाहात्परतो दाने ज्वरोपद्रववृद्धि-  
कृत ॥ १९१ ॥

घृतदस दिनके पश्चान् ज्वरकी वर अवस्थामें देनेसे अमृतके समान गुण करता है, अपक अवस्थामें विषके समान अवगुणोंको उत्पन्न करता है तथा ज्वरके उपद्रवोंको घटाता है ॥ १९१ ॥

बहुदोषस्य मन्दाग्नेः सतरात्रात्परे  
ज्वरे । लङ्घनाम्बुयवागूर्भिर्यदा दोषो  
न पच्यते ॥ १९२ ॥

यदि बहुत दोषवाले और मंदाग्निवाले रोगीके सात दिनके पश्चात् ज्वर रहे और उसमें लंघन, उष्ण जल तथा यवागू आदिके देनेसे भी दोष न पचे तो- ॥ १९२ ॥

तदा तं मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाश-  
नैः । ज्वरघ्नैः पाचनेर्हृद्यैः कषायैः  
समुपाचरेत् ॥ १९३ ॥

उसको मुखकी विरसता, तृषा, अरुचि और ज्वर-नाशक तथा हृदयकी हितकारी जैसे काथरुपी जरझ पाचन दे ॥ १९३ ॥

### आमज्वरके लक्षण ।

लालाप्रसेकहृल्लासहृदयाशुद्धचरोच-  
काः । निद्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं  
गुरुगात्रता ॥ १९४ ॥ क्षुत्नाशो बहु-  
मृत्रत्वं स्तब्धता वलवाञ्ज्वरः । आम-  
ज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्त्र भेष-  
जम् ॥ १९५ ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य  
भूयो वर्धयति ज्वरम् । शोधनं शम-  
नीयं वा करोति विषमज्वरम् ॥ १९६ ॥

आमज्वरके लक्षण-मुखसे लारका गिरना, उद-काईका आना, हृदयमें ग्लानि, अरुचि, निद्राका अधिक आना, आलस्य, दोषोंका अच्छे प्रकारसे नहीं पचना, मुखमें विरसता, शरीरमें भारीपन, क्षुत्का नाश, बहुत पेशाबका आना, देहमें जडता और ज्वरका चलवान् होना ये सब आमज्वरके लक्षण हैं । आम-ज्वरमें औषध नहीं देना चाहिये, आमज्वरमें औषध देनेसे ज्वरकी वृद्धि करती है तथा शोधन और शमन औषध देनेसे विषमज्वरको उत्पन्न करता है ॥ १९४ ॥ ॥ १९५ ॥ ॥ १९६ ॥

आमज्वरमें औषध देनेसे हानि ।

दापयेदोषहरणं मोहादामज्वरे तु  
यः । स क्षुतं कृष्णसर्पं वा कराग्नेण  
परामृशेत् ॥ १९७ ॥

जो आमज्वरमें मोहके वश होकर दोषनाशक औषध देता है, वह सोते हुए काले सर्पको अपने हाथसे छूकर जगाता है ॥ १९७ ॥



पच्यमान ज्वरके लक्षण ।

ज्वरवेगोऽधिका नृणां प्रलापधसनभ्र-  
माः । मलप्रवृत्तिरुत्क्रोशः पच्यमानस्य  
लक्षणम् ॥ १९८ ॥

ज्वरका वेग अधिक हो, तृण, प्रलाप, श्वास,  
भ्रम, मलमूत्रादिकी प्रवृत्ति और उचकाई हो तो  
पच्यमान ज्वरका लक्षण जानता चाहिये ॥ १९८ ॥

निरामज्वरके लक्षण ।

ध्रुवक्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वर-  
माद्भवम् । दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरा-  
मज्वरलक्षणम् ॥ १९९ ॥

अब निरामज्वरके लक्षण कहता हूँ—ध्रुवका लगना,  
शरीरमें लघुता, ज्वरका मंद होना, यातादि दोषोंकी  
प्रवृत्ति होना और उत्साह होना, ये निरामज्वरके  
लक्षण जानने ॥ १९९ ॥

ज्वरमें औषध देनेका समय ।

मृदो ज्वरे लघो देहे प्रचलेषु मलेषु  
च । पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं  
तदौषधम् ॥ २०० ॥

जब ज्वर मंद होजाय, शरीर हलका होजाय, मल  
चलायमान होजाय तब दोषोंको पक जानकर औषध  
देवे ॥ २०० ॥

दोषप्रकृतिवैकृत्यादितेषां पक्वलक्षणम् ।  
पक्वोऽप्यनिर्हतो दोषो देहे तिष्ठन्महा-  
त्ययम् । विषमं वा ज्वरं कुर्ग्याद्वल-  
व्यापद्मेव वा ॥ २०१ ॥

वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी प्रकृतिकी  
विकृति हो जाय तब पक्वके लक्षण जानने । जो दोष  
पक होगया हो, परंतु शरीरमेंसे न निकाला गया हो  
तो वह शरीरमें रहता हुआ अत्यंत हानि करता है या  
तो विषमज्वरको उत्पन्न करता है अथवा बलका  
नाश करता है ॥ २०१ ॥

ज्वर पचनेकी अवधि ।

वातिकः सतरत्रेण दशत्रेण  
पैतिकः । श्लेष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः  
पाकं नियच्छति ॥ २०२ ॥

१ "दोषप्रवृत्तिरुत्क्रोशो निरामज्वरलक्षणम्" इत्यपि पाठः ।

घातज्वर सात दिनोंमें, पित्तज्वर दस दिनोंमें और  
श्लेष्मिक ज्वर पारसूँ दिनोंमें पचता है ॥ २०२ ॥

पैतिके वा ज्वरे देयमल्पकालसमु-  
त्थिते । अचिरज्वरितस्यापि भेषजं  
दोषपाकतः ॥ २०३ ॥

अल्पकालके उत्पन्न हुए पित्तज्वरमें दशवें दिन  
औषधि देनी चाहिये और जो बड़ी पित्तज्वर बहुत  
कालका उत्पन्न हुआ हो तो दोषोंके पचनेपर औषधि  
देनी चाहिये ॥ २०३ ॥

पाययेदातुरं सामं पाचनं सतमेऽहनि ।  
शमनेनाथवा दृष्ट्वा निरामं समुपा-  
चरेत् ॥ २०४ ॥

आमज्वरवाले रोगीको वेग सातवें दिन पाचन  
औषधि देवे और निरामज्वरवाले रोगीको तत्काल  
शमनीय औषधि देवे ॥ २०४ ॥

पीताम्बुलंङ्घितः क्षोणोऽजीर्णो भुक्तः  
पिपासितः । न पिबेदौषधं जन्तुः  
संशोधनमथेतरत् ॥ २०५ ॥

जिसने तत्काल जल पिया हो; जो लघन करनेसे  
क्षीण होगया हो, अजीर्ण रोगी, जिसने तत्काल  
भोजन किया हो और प्याससे व्याकुल ऐसे मनुष्योंको  
कदापि संशोधन ( वमन, धिरेचन ) औषधि नहीं  
देवे ॥ २०५ ॥

वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठोष्ठपरिशोष-  
णम् । निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां  
रौक्ष्यमेव च ॥ २०६ ॥ शिरो-  
हृद्गात्ररुग्बन्धवैरस्यं गाढविट्कता ।  
शूलाध्माने जृम्भणं च भवत्यनिलजे  
ज्वरे ॥ २०७ ॥

अब वातज्वरके लक्षण कहते हैं—कंप होना,  
ज्वरका विषम वेग, कंठ और हाँठोंका सूखना,  
निद्राका नाश, हाँकका न आना, शरीरमें रुखापन,  
शिर, हृदय और शरीरमें पीड़ा, मुखमें विरसता,  
मलका गाढा होना, शूल और अकारका होना  
तथा जम्भाईका आना ये सब लक्षण वातज्वरमें  
होते हैं ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

वातज्वरपर साधारण पाचन ।  
नागरं देवकाष्ठं च धान्यकं बृहतीद्व-  
यम् । दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां  
ज्वरापहम् ॥ २०८ ॥

सोंठ, देवदारु, धनियाँ, कटेरी और बड़ी कटेरी  
इनका पाचन (काथ) बनाकर ज्वरवाले रोगीको  
देवे तो ज्वर दूर होता है ॥ २०८ ॥

हिमवाद्भिन्ध्यशैलाभ्यां प्रायो व्याता  
वसुन्धरा । सौम्यासौम्यं हिमं हेम-  
मानेयं धेन्ध्यमौषधम् ॥ २०९ ॥

हिमालय और बिन्ध्याचल पर्वतसे प्रायः सम्पूर्ण  
पृथ्वी व्याप्त है । हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होने  
वाली औषधियाँ शीतल और सौम्य होती हैं एवं  
बिन्ध्याचल पर्वतपर उत्पन्न होनेवाली औषधियाँ  
आग्नेय अर्थात् गरम और असौम्य होती हैं ॥ २०९ ॥

द्रव्याण्यभिनवान्येव प्रशस्तानि  
क्रियाविधौ । ऋते गुडघृतक्षौद्रधान्यकृ-  
ष्णाविडङ्गते ॥ २१० ॥

चिकित्सा-कर्ममें सम्पूर्ण द्रव्य नवीन हो लेने  
उत्तम होते हैं । परन्तु गुड, घी, शहद, पीपल  
और वायडिबंग यं पुराने हैं उत्तम होते हैं ॥ २१० ॥

यत्र येन प्रधानेन द्रव्यं समतुगृह्यते ।  
तत्संज्ञकः स वै योगो भवतीति  
विनिश्चयः ॥ २११ ॥

जिस योगमें जो द्रव्य प्रधानरूपसे ग्रहण किया  
जाता है वह योग उसी द्रव्यके नामसे कहा जाता  
है ऐसा निश्चय है ॥ २११ ॥

मात्रोत्तमा पलेन स्यात् त्रिभिश्चाक्षैश्च  
मध्यमा । जत्रन्या स्यात्पलाधेन स्नेह-  
कायोषधेषु च ॥ २१२ ॥

स्नेहकायादि औषधियोंकी एक पलकी मात्रा  
उत्तम, तीन कर्पकी मात्रा मध्यम और दो कर्पकी  
मात्रा जपन्य होती है ॥ २१२ ॥

१ गुड, घी, शहद कर्पणमें पुराने लेने और बृंहणमें नवीन  
लेने चाहिये ऐसा शिष्ट समझत है ।

काथद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते ।  
चतुर्भागावशिष्टं तु पेयं पलचतुष्ट-  
यम् ॥ २१३ ॥

एक पल काथकी औषधि लेकर सोलह गुने जलमें  
पकावे, जब चौथा भाग बाकी रह जाय तब उस  
चार पल काथको पान करे ॥ २१३ ॥

दीप्तानलं महाकायं पापयेद्भ्रूलिं  
जलम् । अन्ये त्वर्द्धं परित्यज्य प्रसृतिं  
तु चिकित्सकाः ॥ २१४ ॥

जिन मनुष्योंकी जठराग्नि दीपन है, जिनका  
शरीर बड़ा और हृष्ट पुष्ट है उनको एक कुडब परि-  
माण काथ देना चाहिये, परन्तु अन्य आचार्य  
कहते हैं कि उनको आधा कुडब परिमाण काथ देना  
चाहिये ॥ २१४ ॥

काथत्यागमनिच्छन्तस्त्वष्टभागावशो-  
पितम् । पारम्पर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः  
पलद्वयम् ॥ २१५ ॥

किन्तु अरुचि होनेके कारण प्राचीन वैद्य काथके  
भागको पचाकर अष्टावशेष अर्थात् आठवाँ भाग  
बाकी रखते हैं और उस दोपल काथको पिलते  
हैं ॥ २१५ ॥

औषधप्राशनमंत्र ।

ब्रह्मदक्षाधिरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिला-  
दयः । ऋषयः सौषधिग्रामा भूतस-  
ङ्गाश्च पान्तु वः ॥ २१६ ॥

ब्रह्मा, दक्ष, आश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, पृथ्वी,  
चन्द्रमा, सूर्य, वायु आदिदेवता, ऋषि, सम्पूर्ण  
औषधियाँ और भूतोंके समूह ये सब तुम्हारी रक्षा  
करें ॥ २१६ ॥

रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं य-  
था । सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिद-  
मस्तु ते ॥ २१७ ॥

जिस प्रकार ऋषियोंको रसायन, देवताओंको  
अमृत और नागोंके लिये सुधा है उसीप्रकार यह  
औषधि तुम्हारे लिये गुणकारी हो ॥ २१७ ॥

अथौषधप्राशनविधि ।

तत्रोपविश्य विश्रान्तः प्रसन्नवदने-  
क्षणः । औषधान्हेमरजतमृद्भाजन-  
परिस्थितान् ॥२१८॥ पित्तप्रसन्न-  
हृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम् । निःस्त्रि-  
प्याचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयो-  
जयेत् ॥२१९॥

प्रसन्न हैं मुख और नेत्र जिसके मेसे रोगीको  
आरामसे देठावे । पश्चात् औषधिको सोना चाँदी या  
मिट्टीके बर्तनमें करके देवे । रोगी उसको पीकर  
वर्तनको उलटा करके गेर देवे, फिर जल लेकर कुड़ा  
करके मुखशुद्धिके लिये पान आदिको चावे ॥२१८॥  
॥२१९॥

वीर्याधिकं भवति भेषजनन्रहीनं  
हन्यात्तथामयमसंशयमाशु च्व ।  
तद्वालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं ग्लानिं  
परां समुपयाति बलक्षयं च ॥२२०॥

अन्नरहित औषधि अधिक वीर्यवाली होती है  
और वह निःसंदेह शीघ्र ही रोगको दूर करती है  
जो उसी अन्नरहित औषधिकी चालक, वृद्ध, स्त्री  
और कोमल प्रकृतिवाले मनुष्य सेवन करें तो उनके  
ग्लानि उत्पन्न होकर बलका नाश होता है ॥२२०॥

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं ध्रुचृष्णा  
सुमनस्कता । लघुत्वमिन्द्रियोद्धार-  
शुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥२२१॥

वायुका अनुलोमगतिसे संचार होना, शरीरमें  
स्वस्थता, ध्रुवा और तुषाका लगना, मनकी प्रसन्नता,  
इन्द्रियोंमें हलकापन और शुद्ध उकारका आना, ये  
औषधि जीर्ण होजानिके लक्षण हैं ॥२२१॥

औषधशेषे भुक्तं पीतञ्च तथौषधं स  
शेषान्ने । न करोति गदोपशमं प्रको-  
पयत्यन्यरोगांश्च ॥२२२॥

जो मनुष्य प्रथम औषधिकी पीकर पश्चात् उसके  
ऊपर भोजन करता है अथवा जो प्रथम भोजन कर  
पश्चात् उसके ऊपर औषधि पीता है वह औषधि  
उसके रोगको शमन नहीं करती, किन्तु अन्यान्त्र  
रोगीको उत्पन्न करती है ॥२२२॥

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न  
हिंस्याद्वावृत्तं न च मुहुर्वदनात्तिरिति ।  
प्राग्भुक्तसेवितमथौषधमेतदेव दद्याच्च  
वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥२२३॥

परन्तु वृद्ध, बालक, भीरु ( डरपोक ) और र  
इनको भोजनसे पहिले सेवन कराई हुई औषधि  
शीघ्र पच जाती है और बलको भी नहीं घटाती  
तथा अन्नसे आवृत ( आच्छादित ) होनेके कार  
बारंवार मुखसे भी नहीं निकलती है इस कारण क  
मनुष्योंको भोजनसे पहले ही औषधि सेवन करा  
चाहिये ॥२२३॥

वातज्वरचिकित्सा ।

त्रिलवादेः पञ्चमूलस्य कायः स्याद्वा-  
तिकज्वरे । पाचनं पिप्पलीमूलगृह-  
चीविश्वजोऽथवा ॥२२४॥

धेल, द्रयोताक, कुम्भेर, पाडर और अरणी इनके  
फाथ बनाकर अथवा पीपरामूल, गिलोय और सों  
इनका पाचन बनाकर वातज्वरमें दे ॥२२४॥

न शोधयति यद्दोषान्समात्रोदीरय-  
त्यपि । समीकरोति विषमांस्तत्संश-  
मनमुच्यते ॥२२५॥

जो घिगडे दोषोंको शुद्ध नहीं करे तथा समान  
दोषोंको बढ़ावे नहीं और विषम दोषोंको समान  
करे उसको संशमन औषधि कहते हैं ॥२२५॥

किराताच्चाभुतोदीन्यवृहतीद्वयगो-  
धुरेः । सस्त्रिराकलशीविश्वेः कायो  
वातज्वरपहः ॥२२६॥

चिरायता, नागरमोधा, गिलोय, सुगन्धबाला,  
कटेरी, चड़ी कटेरी, गोस्वरु, पुदिनपर्णी, शालिपर्णी  
और सोंठ इनका फाथ बनाकर पीनेसे वातज्वर दूर  
होता है ॥२२६॥

पञ्चमूलीबलाराङ्गाकुलत्येः सह  
पौष्करः । पर्वभद्रं शिरःकम्पं  
निहन्ति पवनज्वरम् ॥२२७॥

पंचमूलकी सय औषधियें, खिरटी, रायसन, कुलथी और पोहकरमूल इनका काय घनाकर पान करनेसे सन्धियोंकी पीडा, शिरका कौपना और वातज्वर नष्ट होता है ॥२२७॥

पिप्पली शारिवा द्राक्षा बला चांशु-  
मती तथा । एषोऽपि परमः सिद्धो  
घातज्वरविनाशनः ॥ २२८ ॥

पीपल, उसवा, दाख, खिरटी और शालिपर्णी  
इनका काढा वातज्वरको अवश्य नष्ट करता है ॥२२८॥

द्राक्षा गुडुची काश्मर्य्य त्रायमाणा  
सशारिवा । निष्काथ्य सगुडं काथं  
पिवेद्घातकृते ज्वरे ॥ २२९ ॥

दाख, गिलोय, कुम्भेर, धमार, वनपसा और उसवा  
इनके काढेमें गुड मिलाकर वातज्वरमें पीवे ॥२२९॥

दर्भ बलां गोक्षुरकं पिवेत्पादावशेषि-  
तम् । शर्कराघृतसंयुक्तं पिवेद्घातज्व-  
रापहम् ॥ २३० ॥

डाम, खिरटी और गोखरु इनका चतुर्थांश शेष  
अर्थात् सेरभरका प्राचभर जल बाकी रखकर उसमें  
मिश्री और घी मिलाकर वातज्वरमें पानकीरे ॥२३०॥

शर्करादाडिमाम्भ्याश्च द्राक्षादाडिम-  
योस्तथा । वैरस्ये धारयेत् कल्कं  
गण्डूषश्च तथा हितम् ॥ २३१ ॥

मिश्री और अनार अथवा दाख और अनार इनका  
कल्क घनाकर मुखमें गण्डूष (कुल्ल) धारण करनेसे  
सुलकी विरस्ता दूर होती है ॥ २३१ ॥

आमं पचेदनिलजे हितो नित्यं रसो-  
दनः । मुद्गामलकयूपस्तु गाढविट्के  
विधीयते ॥ २३२ ॥

वातज्वरमें नित्य रसोदनका सेवन करना आमको  
पचाता है । वातज्वरमें यदि मलविषय्य होवे तो मूंग  
और आमलौका चूप देवे ॥ २३२ ॥

इति वातज्वराधिकारः ।

## पित्तज्वरचिकित्सा ।

पित्तज्वरके लक्षण ।

तीक्ष्णोष्णदाहतृणमूर्च्छामदास्यकटुता-  
भ्रमाः । प्रलापो घ्राणकण्ठौष्ठमुख-  
पाकोऽक्षिसाश्रुता ॥ २३३ ॥ शीता-  
मिलाषिता पीतमलनेत्रनखत्वचः ।  
पित्तोद्गारातिसारौ च पैत्तिकज्वर-  
लक्षणम् ॥ २३४ ॥

ज्वरका अत्यंत तीक्ष्ण और उष्ण वेग, दाह, तृण  
मूर्च्छा, मद, मुखमें कटुता, भ्रम, प्रलाप (बेतुकी घात  
तथा नासिका, कंठ, होठ और मुखका पाक, नेत्रों  
औंसुओंका भर आना, शीतकी अभिलाषा, मल, नेत्र  
नख और त्वचा इनका पीला होना, पित्तकी डका  
आना और पीला अतिसारका होना ये लक्षण  
पित्तज्वरके जानने चाहिए ॥२३३॥२३४ ॥

चिकित्सा ।

दाहवम्यदितं क्षामं निरत्रं तृणया-  
न्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं पाययेत्ला-  
जतर्पणम् ॥ २३५ ॥

दाह और वमनसे पीडित, कृश, क्षुधा और तृपारं  
पीडित ऐसे पित्तज्वरवालेको खीलोंके सत्तमें मिश्र  
और सहज मिलाकर सेवन करावे ॥२३५ ॥

कलिङ्गं कटुफलं मुस्तं पाठा कटुकरो-  
हिणी । पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं  
पैत्तिके ज्वरे ॥ २३६ ॥

इन्द्रजौ, कायकल, नागरमोथा, पाह और कुटकी  
इनके काथमें मिश्री मिलाकर पान कीरे तो पित्तज्वर  
दूर हो ॥ २३६ ॥

शर्करामधुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं  
ज्वरम् । चन्दनोशीरश्रीपर्णीपक्षु-  
कमधूकजः ॥ २३७ ॥

लालचन्दन, खस, कुम्भेर, फालसा और बहुपर्णी  
छाल इनके काढेमें मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर  
दूर होता है ॥ २३७ ॥

गृह्णीपन्नरोध्राणां शारिवोत्पलयो-  
स्तथा । शर्करामधुरो काथः पीतः  
पित्तज्वरापहः ॥ २३८ ॥

गिलोच, पद्माय, लोभ्र, अनंतमूल और कमल  
या कमलगट्टकी गिरा इनके काथमें मिश्री डालकर  
पान करनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २३८ ॥

दुरालभापर्पटकभियंशुभृनिम्बवासा-  
कटुरोहिणीनाम् । जलं पिबेच्छर्करया-  
वगाढं तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः २३९

धमात्ता, पित्तपापदा, मेंहदीके फूल, पिरायना,  
अहसा और कुटकी इनके काथमें खोंड मिलाकर  
पीवे तो तृषा, रक्तपित्त और दाहसहित ज्वर दूर  
होता है ॥ २३९ ॥

द्राक्षामयापर्पटकाद्द्रतित्ता काथं स-  
शाम्याकफलं विदध्यात् । प्रलापमू-  
र्च्छाश्रमदाहमोहतृष्णान्विते पित्तभवे  
ज्वरे तु ॥ २४० ॥

दाख, हरड़, पित्तपापदा, नागरमोथा, कुटकी  
और अमलतासका गूदा इनका काथ बनाकर पीनेसे  
प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, मोह, और तृषायुक्त पित्त-  
ज्वर दूर होता है ॥ २४० ॥

पटोलयवधान्याकमधुकं मधुसंयुतम् ।  
हन्ति पित्तज्वरं दाहं तृष्णाञ्चैव प्रमा-  
थिनीम् ॥ २४१ ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियाँ और सुलैठी इनके  
काथमें शहद मिलाकर पान करनेसे पित्तज्वर, दाह  
और तृषा दूर होती है ॥ २४१ ॥

पटोलयवनिष्काथो मधुना मधुरी-  
कृतः । तीव्रपित्तज्वरोन्मर्दीः पानतृड्-  
दाहनाशनः ॥ २४२ ॥

पटोलपत्र और इन्द्रजौ इनके काथमें शहद डाल-  
कर पीवे तो तीव्र पित्तज्वर, तृषा और दाह दूर होती  
है ॥ २४२ ॥

शुद्ध्यामलकैर्युक्तः केवलो वापि  
पर्पटः । पित्तज्वरं हरेत्तूर्णं दाहशो-  
पन्नमन्वितम् ॥ २४३ ॥

गिलोच और आमलेका अथवा केवल पित्तपा-  
पदा ही काथ पीनेसे दाह, मुग्धशोष और भ्रमयुक्त  
पित्तज्वर दूर होता है ॥ २४३ ॥

रोध्रोत्पलामृतापन्नशारिवाणां सश-  
र्करः । काथः पित्तज्वरं हन्यादथवा  
पर्पटोद्भवः ॥ २४४ ॥

लोभ्र, कमल, गिलोच, पद्माय और अनंतमूल  
इनके काथमें मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर दूर  
होता है । अथवा केवल पित्तपापदेका ही काथ पीनेसे  
पित्तज्वर दूर होता है ॥ २४४ ॥

पर्पटामृतधान्णां काथः पित्तज्वरं  
जयेत् । द्राक्षारग्वधयोश्चापि काश्मर्या  
अथवा पुनः ॥ २४५ ॥

पित्तपापदा, गिलोच और आमले इनका काथ  
पित्तज्वरको दूर करता है । अथवा दाख, अमलतास  
और कुम्भेरका काथ भी पित्तज्वरको दूर करता  
है ॥ २४५ ॥

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविना-  
शनः । किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनो-  
शीरनागरेः ॥ २४६ ॥

इकला पित्तपापदाही पित्तज्वरका नाश करनेके  
लिये उत्तम है । यदि उसमें लालचन्दन, खस और  
सोंठ मिलाकर दिया जावे तो क्या कहना है २४६ ॥

विश्वपर्पटकोशीरधनचन्दनसाधितम् ।  
दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दि-  
ज्वरदाहनुत् ॥ २४७ ॥

सोंठ, पित्तपापदा, खस, नागरमोथा और लाल-  
चन्दन इनका काथ बनाकर खूब शीतल करके पान  
करे तो तृषा, वमन, ज्वर और दाह दूर होता  
है ॥ २४७ ॥

शुद्धी सुस्तधान्याकं मधुकं कटुरो-  
हिणी । तृष्णाश्लारुचिच्छर्दिपित्त-  
ज्वरहरो गणः ॥ २४८ ॥

गिलोच, नागरमोथा, धनियाँ, सुलैठी और कुटकी  
इन औषधियोंका समूह तृषा, शूल, अहाचि, वमन  
और पित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ २४८ ॥

किरातामृतधान्याकचन्दनोशीर-  
पपटैः । सपन्नकैः कृतः काथो हन्ति  
पित्तभवं ज्वरम् । दाहहृल्लासमरुचि-  
मुक्तेः शवमथुक्कमान् ॥ २४९ ॥

चिरायता, गिलोय, धनियाँ, लालचन्दन, खस,  
पित्तपापडा और पञ्जाख इनका काथ-पित्तज्वर, दाह,  
उबकाई, अरुचि, उल्टेस, वमन और कुम( ग्लानि )  
को दूर करता है ॥ २४९ ॥

सासितो निशि पर्युपितः प्रातर्धान्या-  
कतण्डुलकाथः । पीतः शमयत्यचि-  
रादन्तर्दाहं ज्वरं घोरम् ॥ २५० ॥

रात्रिमें धनियेके चाबलोंको भिजो देवे । पञ्चान्  
मुद्गहको काथ बनाकर मिश्री मिलाकर पीनेसे बहुत  
दिनोंकी भीतरी दाह और घोर ज्वर दूर होता  
है ॥ २५० ॥

चन्दनं मधुकं द्राक्षां कटुकां सदुरा-  
लभाम् । चन्दनादिगणः प्रोक्तो  
हन्याद्दाहज्वरारुचिम् ॥ २५१ ॥

लाल चन्दन, मुलैठी, दाख, कुटकी और जवासा  
इन सब औषधियोंको चन्दनादिगण कहते हैं, यह  
चन्दनादिगण दाह, ज्वर और अरुचिको नष्ट  
करता है ॥ २५१ ॥

सुद्रानामञ्जलीचूर्णं यष्टीमधुकसाधि-  
तम् । पाक्यं शीतकापायं वा पित्ते-  
त्पित्तज्वरापहम् ॥ २५२ ॥

भूंगका चूर्ण १ कुड़व और मुलैठीका चूर्ण १  
कुड़व; दोनों को मिलाकर काथ बनावे फिर शीतल  
हो जाने पर उसको छानकर पीनेसे अथवा उपर्युक्त  
चूर्णको रात्रिमें शीतल जलमें भिजाकर सबेरको  
छानकर पीनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २५२ ॥

हीवेरं धान्यकं सुस्तं चन्दनं मधुय-  
ष्टिका । वृषोशीरयुतः काथः शर्करा-  
मधुसंयुतः । रक्तपित्तं जयत्यग्रं तृष्णा-  
दाहज्वरापहः ॥ २५३ ॥

सुगन्धवाला, धनियाँ, नागरमोथा, चन्दन, मुलैठी,  
अहूसा और खस इनके काथमें मिश्री और शहद  
मिलाकर पान करनेसे घोर रक्तपित्त, तृषा, दाह  
और ज्वर दूर होता है ॥ २५३ ॥

भूनिम्वातिविपालोद्ग्रमुस्तकेन्द्रयवा-  
मृताः । वासकं नागरं बिल्वं कषायो  
माक्षिकान्वितः । श्वासं कासश्च  
विद्भेदं रक्तपित्तज्वरं जयेत् ॥ २५४ ॥

चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इंद्रजी,  
गिलोय, अहूसा, सोंठ और बेलगिरी इनके काथमें  
शहद मिलाकर पान करनेसे श्वास, खाँसी, मलेभद  
और रक्तपित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २५४ ॥

तिक्तावालकभूनिम्बश्यामापपट्टवा-  
सकैः । शतं जलं सितायुक्तं रक्त-  
पित्तज्वरं जयेत् ॥ २५५ ॥

कुटकी, सुगन्धवाला, चिरायता, अनंतमूल,  
पित्तपापडा और अहूसा इनके काथमें मिश्री मिला-  
कर पान करनेसे रक्तपित्तज्वर दूर होता है ॥ २५५ ॥

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिहदाहज्वराप-  
हाम् । कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासान्  
हन्ति वमीनपि ॥ २५६ ॥

हरडको पिसकरतैल, घी और शहदके साथ  
मिला कर चाटनेसे दाह, ज्वर, खाँसी, रक्तपित्त,  
विसर्प, श्वास और वमन दूर होती है ॥ २५६ ॥

हर्म्यं शुभ्राभ्रसंकाशे शशांककरशी-  
तले । मलयोदकसिक्ते वा मुष्यातिप-  
त्तज्वरी नरः ॥ २५७ ॥

मनोहर और अत्यन्त निर्मल आकाशके समान  
स्वच्छ चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल और जिसमें  
चन्दनादिका जल छिड़का गया हो ऐसे घरमें  
पित्तज्वरवाला रोगी शयन करे ॥ २५७ ॥

जिह्वातालुगलक्कोमशोपे मूर्ध्नि च  
दापयेत् । केसरं मातुलुङ्गस्य मधुसं-  
न्धवसंयुतम् ॥ २५८ ॥

जो जिह्वा, तालु, गला, मुख, कंठ, छोम (पिपासास्थान) और मत्तक इन स्थानोंमें शोष हो, तो विजैरे नीचूकी कसरकी शहद और संधे नमकके साथ मिलाकर सेवन करावे ॥ २५८ ॥

हरितकी प्रियङ्गुशुभ्र पिप्पली लोघ्रमेव च । दार्वी हरिद्रातिजोह्वा सक्षौद्रमुख-  
धावने ॥ २५९ ॥ एतेन कटुभावाच्च  
मुखरोगश्च शाम्यति । वक्त्रं विशदता-  
मेति भक्तच्छन्द्रश्च जायते ॥ सुहृत्पौ-  
दनो देयः सितया पौत्तिके ज्वरे ॥ २६० ॥

हरड, फूलप्रियंगु, पीपल, लोघ, दाहहलदी, हलदी और तेजबल इनको जलमें भिजोकर छान लेवे फिर शहदमें मिलाकर धारवार कुड़े करे, इस प्रकार मुख धोनेसे मुखकी कटुता और समस्त मुखरोग नष्ट होते हैं तथा मुखमें निर्मलता और अन्नमें रुचि उत्पन्न होती है । पित्तज्वरमें मूँगका सूप और भात खाँडेके साथ मिलाकर सेवन करे ॥ २५९ ॥ २६० ॥

इति पित्तज्वरचिकित्सा ।

### कफज्वरचिकित्सा ।

कफज्वरलक्षण ।

कासश्वासमतिशयायप्रसेकारुचिच्छ-  
द्रयः । निद्रा गुरुत्वं हृत्तासः एतेमित्यं  
मधुरास्यता ॥ २६१ ॥ शंतिरोमा-  
श्चता शौक्यं मलाक्षिकरजत्वाच्च ।  
उष्णाभिलाषिता चेति श्लेष्मिकज्वर-  
लक्षणम् ॥ २६२ ॥

खाँडी, श्वास, प्रतिश्याय ( जुकाम ) और परि-  
पेक ( नासिकामुखीदफसे पानीका गिरना ),  
अहचि; वमन, निद्रा और शरीरका भारी होना,  
उदकाई आना, भीजे कपडेसे ढके हुएके समान  
देहका होना, मुखमें मधुरता, शीतका लगना, रोमांच  
का होना, मल, नेत्र, नाख और त्वचाका सफेद होना  
और उष्णता ( गर्मी ) की अभिलाषाका होना ये  
कफज्वरके लक्षण जानने ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

मातुलुङ्गशिफाविश्वकायस्थाप्रन्थिको-  
द्भवम् । कफज्वरेषु सक्षारं पाचनं  
वा कणादिकम् ॥ २२३ ॥

विजैरे नीचूकी जड़, सोंठ, हरड और पीपलामूल  
इनके काथमें जवाहार डालकर पीनेसे अथवा पिप्प-  
ल्यादि पाचन पीनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६३ ॥

त्रिफला त्रिवृता मुस्तं कटुकं सकलि-  
ङ्गकम् । पटोलारग्वधं च व रोहिणी  
चित्रकं समम् । काथः क्षौद्रयुतः  
श्लेष्मज्वरकासगलामये ॥ २६४ ॥

त्रिफला, निसेत, नागरमोथा, त्रिकुटा, इन्द्रजौ,  
पटोलपत्र, अमलतास, कुटकी और चिता इनके  
काथमें शहद डालकर कफज्वर, खाँसी और गलरोग  
में पीवे ॥ २६४ ॥

निम्बविधामृताभारुशठी भूनिम्ब-  
पौष्करम् । पिप्पली बृहती चेति  
काथो हन्ति कफज्वरम् ॥ २६५ ॥

नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, शतावर, कचूर,  
विरायता, पोहकरमूल, पीपल और बडी कटेरी इनका  
काथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ २६५ ॥

कुष्ठमिन्द्रयवं मूर्वा पटोलं वापि  
साधितम् । पिवेन्मरिचसंयुक्तं  
सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ २६६ ॥

कुठ, इन्द्रजौ, मूर्वा (चरनहार) और पटोलपत्र  
इनके काथमें काली मिर्चका चूर्ण और शहद  
मिलाकर पीनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६६ ॥

त्रिफलापटोलवासाछिद्ररुहातिकरो-  
हिणीपद्मग्रन्था । मधुना श्लेष्मसमु-  
त्थे दशमूलीवासकस्य वा काथः ॥  
मात्राक्षौद्रघृतादीनां काथे स्नेहे सुचू-  
र्णवत् ॥ २६७ ॥

त्रिफला, पटोल, अहसा, गिलोय, कुटकी और  
वच इनके काथमें शहद डालकर अथवा दशमूल  
और अहसेके काथमें शहद मिलाकर पीवे । काथ  
और स्नेहोंमें शहद और घृतादिकी मात्रा चूर्णमें  
समान जाननी ॥ २६७ ॥

सतच्छट्ठं गुडूधीं च निम्बं स्फुर्जकमेव  
च । काथयित्वा पिबेत्तोयं सक्षौद्रं  
कफजे ज्वरे ॥ २६८ ॥

सतवन, गिलोय, नीमकी छाल और रींद इनका  
काथ बनाकर और उस काथमें शहद मिलाकर पानिसे  
कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६८ ॥

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं  
गणः । सर्वज्वरकफातङ्गे भेदी दीप-  
नपाचनः ॥ २६९ ॥

आमले, हरद, पंपिल और चीता, यह आमलक्या-  
देगण सर्वप्रकारके कफज्वरमें देना चाहिये। यह भेदन,  
दीपन और पाचन है ॥ २६९ ॥

तित्तानिम्बविपाव्योपशक्राह्वाभिः  
शृतं जलम् । पिबेत्कफज्वरं घोरं  
हन्ति काससमान्वितम् ॥ २७० ॥

हुटकी, नीम, अतीस, त्रिफुटा और इन्द्रजी इनका  
काथ पान करनेसे खांसी सहित घोर कफज्वर नष्ट  
होता है ॥ २७० ॥

सिन्धुवारदलकाथं कणाढ्यं कफजे  
ज्वरे । जङ्गुयांश्च वले क्षणि कर्णे च  
पिहिते पिबेत् ॥ २७१ ॥

सन्हादके पत्तोंके काडेको पंपिलका चूर्ण मिलाकर  
कफज्वर, जंघाओंके बलकी क्षीणता और बधिरतामें  
पीवे ॥ २७१ ॥

मुस्तं मधुकवीजानि त्रिफला कटुरो-  
हिणी । परूषकाणि निष्कायः कफ-  
ज्वरविनाशनः ॥ २७२ ॥

नागरमोथा, महुएके बीज, त्रिफला, हुटकी और  
फालसेकी छाल, इनका काथ कफज्वरको नष्ट  
करता है ॥ २७२ ॥

चतुर्भद्रावलेहिका ।

कटुफलं पौष्करं कृष्णा शृङ्गी च  
मधुना सह । श्वासकासज्वरहरः  
श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ २७३ ॥

कायफल, पौष्करमूल, पंपिल और काकडा-  
शृंगी इनका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर चाटे तो  
श्वास, खांसी, ज्वर और कफ दूर होता है ॥ २७३ ॥

लिङ्गेज्ज्वरार्त्तत्रिफलां पिप्पलीं सम-  
माक्षिकाम् । कासे श्वासे च मधुना  
सर्पिषा च तुर्वा भवेत् ॥ २७४ ॥

कफज्वरवाला रोगी त्रिफला और पंपिलके  
चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तथा खांसी और  
श्वासमें येही अवलेह शहद और पीमें मिलाने  
चाटे ॥ २७४ ॥

कटुफलं पौष्करं शृङ्गीमुस्तकं कटुकं  
शठीम् । समस्तान्येकंशो वापि  
सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २७५ ॥ आर्द्र-  
कस्वरसक्षौद्रं लिङ्गात्कफविनाशनम् ।  
शूलानिलारुचिच्छट्टिकासश्वासक्ष-  
यापहम् ॥ २७६ ॥

कायफल, पौष्करमूल, काकडासिंगी, नागरमोथा,  
त्रिफुटा और कचूर इन सबको समान भाग लेकर  
घारीक चूर्ण करके उस चूर्णको अथवा एक २ के  
चूर्णको अदरसके रसमें और शहदमें मिलाकर चाटे  
तो कफ, शूल, वात, अग्नि, वमन, खांसी और  
क्षयरोग दूर होता है ॥ २७५ ॥ २७६ ॥

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्व-  
रापहः । ह्रीहानं हन्ति हिक्काश्च  
बालानाश्च प्रशस्यते ॥ २७७ ॥

पंपिलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो श्वास,  
खांसी, ज्वर, ग्रीहा और हिचकी दूर होती है । यह  
बालकोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ २७७ ॥

कर्पश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानाश्च  
सर्वशः । द्रवः शुक्त्यावलेढव्यः पात-  
व्यश्च चतुर्द्रवैः ॥ २७८ ॥

चूर्ण, कल्क, गुटिका और चाटिकादिको एक एक  
तोलाप्रमाण प्रयोग करना चाहिये । लेहन करके  
सेवन करना हो तो द्रव पदार्थ ( घृत, शहद आदि )  
दो तोले प्रमाण और पान करके सेवन करना हो तो  
द्रवपदार्थ चौगुने लेने चाहिये ॥ २७८ ॥



मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमभिवलं  
वयः । व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीक्ष्य  
मात्रां प्रयोजयेत् ॥ २७९ ॥

औषधिका मात्राका कोई निश्चित नियम नहीं है  
किन्तु दोष, अग्नि, बल, अवस्था, व्याधि, औषधि  
और कोठा इन सबको अच्छे प्रकारसे देखकर औष-  
धिका मात्रा देवे ॥ २७९ ॥

अजाजीशर्करायुक्तो दाडिमीस्वरसेन  
तु । रुचिष्णो मधुना युक्तः कर्तव्यः  
कवलप्रहः ॥ २८० ॥ सुद्रव्यषौदनश्चापि  
देयः कफसमुत्थि ॥ २८१ ॥

जीरा, खोंड और अनारका स्वरस इनमें शहद  
मिलाकर मुखमें कवल धारण करे । यह रुचिकारक  
है । कफज्वरमें मूँमका घूप और भात  
देवे ॥ २८० ॥ ॥ २८१ ॥

इति कफज्वरचिकित्सा ।

## वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

वातपित्तज्वरे देयमौषधं पञ्चमेऽहनि ।  
पित्तश्लेष्मज्वरे देयमौषधं सप्तमे  
ऽहनि ॥ २८२ ॥ अत ऊर्ध्वं च सप्ताहा-  
द्वातश्लेष्मज्वरे पिबेत् ॥ २८३ ॥

वातपित्तज्वरमें पाँचवें दिन औषधि देनी चाहिये,  
पित्तकफज्वरमें सातवें दिन औषधि देनी  
चाहिये । और वातकफज्वरमें नवमें दिन औषधि  
देवे ॥ २८२ ॥ ॥ २८३ ॥

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः  
शिरोरुजा । कण्ठास्पशोपो वमन  
रोमहर्षोऽरुचिस्तथा । पर्वभेदश्च जृम्भा  
च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ २८४ ॥

अथ वातपित्तज्वरके लक्षण कहते हैं-तृष्णा, मूर्च्छा,  
भ्रम, दाह, निद्राका न आना, शिरमें पीडा, कंठ और  
मुखमें शोष, वमन, रोमाँचोंका होना, अग्नीच, सन्धि-

योंमें पीडा और जन्माइयोंका आना ये सब लक्षण  
वातपित्तज्वरके जानने ॥ २८४ ॥

चिकित्सा ।

संसृष्टदोषेषु हितं संसृष्टमयपाचनम् ।  
निदिग्धिकाथलारास्त्रात्रायमाणामृ-  
तायुतैः । मसूरविदलैः काथो वात-  
पित्तज्वरं जयेत् ॥ २८५ ॥

द्वन्द्वज दोषोंमें मिश्रित अर्थात् उन २ दोषोंमें कहीं  
हुई औषधियोंको मिलाकर पाचन देवे । कटेरी, खिरटी,  
रायसन, त्रायमान, गिलोय और मसूरकी दाल  
इनका काथ वातपित्तज्वरको दूर करता है ॥ २८५ ॥

त्रिफलाशाल्मलीरास्त्राराजवृक्षाट्क-  
पकैः । शृतमम्बु हरत्याशु वातपित्त-  
भवं ज्वरम् ॥ २८६ ॥

त्रिफला, सेमल, रायसन, अमलतास और  
अड्डसा इनका काथ वातपित्तज्वरको नष्ट करता  
है ॥ २८६ ॥

किराततिक्रममृतां द्राक्षामामलकीं  
शटीम् । निष्काथ्य पित्तानिलजे तं  
काथं सगुडं पिबेत् ॥ २८७ ॥

निरायता, गिलोय, दाख, आमले और कचूर  
इनके काथमें गुड मिलाकर पीनेसे वातपित्तज्वर नष्ट  
होता है ॥ २८७ ॥

मधुकादिकाथ ।

मधुकं शारिवा द्राक्षा मधुकं चन्द्र-  
नीत्यलम् । काश्मरीफलकं लोषं  
त्रिफला पञ्चकेशवरम् ॥ २८८ ॥ पशु-  
पकं मृणालञ्च न्यसेदुत्तमवारिणि ।  
मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुषितं  
निशि ॥ २८९ ॥ वातपित्तज्वरं शहै  
तृष्णामूर्च्छारुचिभ्रमान् । शमयेद्भक्तं  
पित्तञ्च जीमूतमिव भारुतः ॥ २९० ॥

मुलैठी, सारियन, नाख, महुआ, लाल चन्दन, कमल, कुम्भेरका फल, लोप, त्रिकला, कमलकेशर, फालसे और कमलकी नाख इन सबको समानभाग लेकर स्वच्छ जलमें रातको भिजो देवे फिर प्रातःकाल छान कर शहद खीले और मिश्री मिलाकर पीनेसे यह वात-पित्तज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम और रक्तपित्तको नष्ट करता है, जिस प्रकार पवन वादलोंके समूहको नष्ट कर देता है ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ २९० ॥

**विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीस-  
मन्वितैः । कृतः कपायो हन्त्याशु  
वातपित्तोत्तरं ज्वरम् ॥ २९१ ॥**

सोंठ, गिलोये, नागरमोथा, चिरायता और पंच-  
मूलकी समस्त औषधियें, इन सबका काथ बनाकर  
पीनेसे शीघ्र ही वातपित्तज्वर दूर होता है ॥ २९१ ॥

**बलाभाङ्गुर्धमूत्रैरण्डचन्दनोशीरपर्पटैः।  
उपकुल्याब्दहीवैरैः कपायश्च पिवे-  
त्ततः । पर्वभेदशिरःकम्पं वातपित्त-  
ज्वरं जयेत् ॥ २९२ ॥**

खिरैटी, भारंगी, गिलोय, अंडकी जड़, लाल चन्दन,  
खस, पित्तपापड़ा, पांवल, नागरमोथा और सुगंधवाला  
इनका काठा सन्धियोंकी पीड़ा, शिरका फोपना और  
वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ २९२ ॥

**गुडूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभे-  
पजम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्र-  
मिदं शुभम् ॥ २९३ ॥**

गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता और  
सोंठ यह पंचभद्रनाभक काथ वातपित्तज्वरमें देना  
चाहिये ॥ २९३ ॥

**नीलोत्पलमुशीराणि बला पन्नकमेव  
च । काश्मरी मधुकं द्राक्षा मधुकं स-  
परूषकम् ॥ २९४ ॥ पेयः शीतकपा-  
योऽयं वातपित्तज्वरापहः । सप्रलापं  
समोहश्च शमयेत्पित्तिकं ज्वरम् ॥ २९५ ॥**

नीलकमल, नीलोफर, खस, खिरैटी, पश्वाय, कुम्भेर,  
मुलैठी, दाख, महुआ और फालसे इनका हिम बनाकर  
पीये तो यह वातपित्तज्वरको नष्ट करता है तथा  
प्रलाप और मोहदुक्त पित्तज्वर दूर होता  
है ॥ २९४ ॥ २९५ ॥

**आरग्वधफलं मुस्तं यष्टीमधुकमेव च  
उशीरमभया चैव हरिद्रा दारुसाह-  
या ॥ २९६ ॥ पटोलं पिचुमन्दश्च  
तथा कटुकरोहिणी । एभिः सिद्धः  
कषायः स्याद्वातपित्तभवे ज्वरे ॥ २९७ ॥**

अमलतासका गुद्दा, नागरमोथा, मुलैठी, खस,  
एरंड, हल्दी, दारुहल्दी, पटोलपात, नीमकी छाल  
और कुटकी इनका काथ वातपित्तज्वरमें हितकारी  
है ॥ २९६ ॥ २९७ ॥

**कफपित्तहरा - मुद्गाः कारवेच्छादय-  
स्तथा । प्रायेण न तु ते देया वात-  
पित्तोद्भवे ज्वरे । शूलोदावर्त्तविष्टम्भ-  
जनका ज्वरवर्धनाः ॥ २९८ ॥**

मूँग, करेला आदि पदार्थ प्रायः कफपित्तनाशक  
हैं अतएव इनको वातपित्तज्वरमें नहीं देना चाहिये,  
क्योंकि इनको देनेसे शूल, उदावर्त और विष्टम्भ-  
जनकी उत्पन्न करते हैं तथा ज्वरको बढ़ाते हैं ॥ २९८ ॥

**दाडिमामलमुद्गानां यूषस्त्वनिलपै-  
त्तिके । मुद्गामलकयूषस्तु वातपित्ता-  
त्मके हितः ॥ २९९ ॥**

अनार, आमले और मूँगका यूप वातपित्तज्वरमें  
देना चाहिये, मूँग और आमलोंका यूप भी वातपित्त-  
ज्वरमें हितकारी है ॥ २९९ ॥

**महादाहे विधातव्यो यूषश्चणक-  
सम्भवः ॥ ३०० ॥**

जो वातपित्तज्वरमें अत्यंत दाह हो तो चनेका यूप  
देना चाहिये ॥ ३०० ॥

इति वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

**पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।**

—\*—

पित्तकफज्वरके लक्षण ।

**सुहृदाहो सुहृः शीतं स्पेदस्तम्भो  
सुहृर्मुहः । मोहः कासोऽरुचिस्तृष्णा  
श्लेष्मपित्तप्रवर्तनम् । लिप्ततिकास्यन्ना  
तन्द्रा पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ३०१ ॥**

अथ कफपित्तज्वरके लक्षण कहते हैं, चारंवार दाह हो, चारंवार शीत लगे, चारंवार पसीना आवै, चारंवार शरीर जकड़ जावे, वेहोदी हो, सौंसी, अरुचि, तृषा, कफ और पित्तका गिरना, मुख कफसे लिपासा रहे तथा पित्तसे मुखमें कढ़ापात हो और तन्द्रा हो, ये पित्तकफज्वरके लक्षण हैं ॥ ३०१ ॥

### चिकित्सा ।

गुडूची निम्बधन्याकं पञ्चकं चन्दना-  
न्वितम् । तृष्णादाहज्वरच्छर्दिपित्त-  
श्लेष्मज्वरापहः ॥ ३०२ ॥

गिलोय, नीम, धनियाँ, पद्मास और लालचन्दन इनका काथ तृषा, दाह, ज्वर, वमन और पित्तकफज्वरको नष्ट करता है ॥ ३०२ ॥

गुडूची निम्बधन्याकं पञ्चकं चन्द-  
नानि च । तृष्णादाहारुचिच्छर्दिसर्व-  
ज्वरहरो गणः ॥ ३०३ ॥

गिलोय, नीम, धनियाँ, पद्मास और लालचन्दन इन सब औषधियोंका काथ तृषा, दाह, अरुचि, वमन और सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ३०३ ॥

पटोलं पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं  
बला । साधितोऽयं कपायश्च पित्त-  
श्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ३०४ ॥

पटोलपाद, नीमकी छाल, त्रिफला, सुलेठी और खिरौटी इनका काढ़ा पित्तकफज्वरमें देना चाहिये ॥ ३०४ ॥

दीपनं कफविच्छोदि पित्तवातालुलो-  
मनम् । ज्वरत्रं पाचनं भेदि सृष्टं  
धान्यपटोलयोः ॥ ३०५ ॥

धनियाँ और पटोलपातका काथ-अम्रिको दीपन करनेवाला, कफनाशक, पित्त और वातको अनुलो-  
मन करनेवाला, ज्वरनाशक, पाचन और भेदक है ॥ ३०५ ॥

पटोलं चन्दनं मूर्वातिकापाठामृता  
गणः । पित्तश्लेष्मारुचिच्छर्दिज्वर-  
कण्डूविपापहः ॥ ३०६ ॥

पटोलपत्र, चन्दन, चुरनहार, कुटकी, पाठ और गिलोय इनका काथ पित्तकफज्वर, अरुचि, वमन, ज्वर और मुजली तथा विपका नाशक है ॥ ३०६ ॥

सशर्करामक्षमात्रां कटुकासुष्णवा-  
रिणा । पित्वा ज्वरं जयेज्जनुः कफ-  
पित्तसमुद्भवम् ॥ ३०७ ॥

एक तोला प्रमाण कुटकीके चूर्णको लेकर मिश्री मिलाकर गरम जलके साथ पान करे तो कफपित्तज्वर ज्वर दूर होता है ॥ ३०७ ॥

त्रिफला त्रायमाणा च मृद्वीका कटु-  
रोहिणी । पित्तश्लेष्मज्वरे ह्यापां  
कपायो ह्यनुलोमनः ॥ ३०८ ॥

त्रिफला, त्रायमान, दाल और कुटकी इनका काथ पित्तकफज्वरमें अनुलोमन करनेवाला है ३०८ ॥

वासकं पञ्चकाष्ठश्च नागरं चन्दना-  
मृते । पटोलं धान्यकश्चैव काथो  
मधुसमायुतः । कफपित्तज्वरं शूलं  
दाहं हन्त्यंघ्रिपाणिषु ॥ ३०९ ॥

कुटकीछाल, पद्मास, सोंठ, लालचन्दन, गिलोय, पटोलपत्र और धनियाँ इनके काथमें शहद मिलाकर पान करनेसे कफपित्तज्वर, शूल और हाँसोंकी दाह दूर होती है ॥ ३०९ ॥

पटोलं बालकश्चैव सुस्तकं रक्तचन्द-  
नम् । पाठा मूर्वामृता शुंठी चोशीरं  
कटुरोहिणी । समभागैः शृतं तीर्थं  
सर्वज्वरहरं पिबेत् ॥ ३१० ॥

पटोलपत्र, सुगन्धवाला, नागरमोथा, लाल चन्दन पाद, मूर्वा, गिलोय, सोंठ, खस और कुटकी इन सबको समान भाग लेकर काथ बनाकर पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ३१० ॥

सनागरं पर्पटकं पिबेद्वा सदुराल-  
भम् । किरातातित्तकं सुस्तं गुडूचीं  
विश्वभेषजम् । पाठामुशीरं सोदी-  
च्यं पिबेच्च ज्वरशान्तये ॥ ३११ ॥

ज्वरघ्नो दीपनश्चैव कपायो दोषपा-  
चनः । तृष्णारुचिप्रशमनो मुखवै-  
रस्यनाशनः ॥ ३१२ ॥

सोठ और पित्तपापदा इनका काथ अथवा धमासा, चिरायता- कढ़वा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाद, रस और सुगन्धवाला, इनका काथ कफपित्तज्वर-को दमन करनेके लिये पीवे। यह काथ ज्वरनाशक, क्षीपन, दोषपाचक, तृपा, अरुचि और मुखकी नीर-सताको दूर करता है ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥

यवं पर्पटकं धान्यं पटोलं निम्बसा-  
धितम् । पिवेत्सशर्कराक्षौद्रं पित्तश्ले-  
ष्मज्वरापहम् ॥ ३१३ ॥

इन्द्रजौ, पित्तपापदा, धानियाँ, पटोलपत्र और नीमकी छाल, इनके काथमें शहद और मिथी मिलाकर पीवे तो पित्तकफज्वर नष्ट होता है ॥ ३१३ ॥

### अमृताष्टक

अमृतेन्द्रयवारिष्ठं पटोलं कटुरो-  
हिणी । नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पली-  
चूर्णसंयुतम् । अमृताष्टकमित्यतत्पित्त-  
श्लेष्मज्वरापहम् ॥ ३१४ ॥

गिलोय, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुटकी, साठ, लाल चन्दन और नागरमोथा, इनके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होता है । इसको आमृताष्टक कहते हैं ॥ ३१४ ॥

कफपित्तवामिकण्डूज्वरवीसर्पदाहनुत् ।  
कषायः परिपीतस्तु शृङ्गवेरपटो-  
लयोः ॥ ३१५ ॥

अदरक और पटोलपत्रका काथ पान करनेसे कफ, पित्त, वमन, सुजली, ज्वर, विसर्प और दाह दूर होता है ॥ ३१५ ॥

### कण्टकार्यादि ।

कण्टकार्यमृता भाङ्गी नागरेन्द्रयवा-  
सकम् । भूमिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं  
कटुरोहिणी ॥ ३१६ ॥ कषायं पाययेदे-  
तत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । दाहनृष्णा-  
रुचिच्छर्दिकासहृद्रोगशूलनुत् ॥ ३१७ ॥

कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, चिरायता, चन्दन, नागरमोथा, पटोलपत्र और कुटकी-  
इनके काथको पान करनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होता है  
तथा दाह, तृपा, अरुचि, वमन, खोंसी, हृदयरोग  
और शूल राग दूर होता है ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥

### पञ्चतित्तकाथ ।

धुद्रामृताभ्यां सह नागरेण सपुष्करं  
चैव किराततित्तम् पिवेत्कषायं  
त्वथ पञ्चतित्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं  
समस्तम् ॥ ३१८ ॥

कटेरी, गिलोय, सोंठ, पोहकरमूल और चिरायता  
इनका काथ आठों प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता  
है ॥ ३१८ ॥

### भाङ्गर्चादिगण ।

भाङ्गी पुष्करमूलञ्च मुस्तकं कण्टकारि-  
का । त्रिकण्टकवृहत्तयो च कर्णिनी-  
नागरेः शृतः ॥ ३१९ ॥ एष भाङ्गर्चादिको  
नाम्ना पित्तश्लेष्मज्वरापहः । हृष्टासा-  
रोचकच्छर्दिनृष्णादाहविवन्धनुत् ३२० ॥

भारंगी, पोहकरमूल, नागरमोथा, कटेरी, गोखरु, बड़ी कटेरी, शालिपर्णी, पृथिनपर्णी और सोंठ इन  
को भांग्यादिक कहते हैं । यह भांग्यादिगण पित्तकफ-  
ज्वरनाशक तथा उषकाई, अरुचि, वमन, तृपा, दाह  
और विवन्धनाशक है ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥

नागरेन्द्रयवं मुस्तं चन्दनं कटुरो-  
हिणी । पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कषायान्तु  
पिवेत्रः । भ्रममूर्च्छारुचिच्छर्दिपित्त-  
श्लेष्मज्वरापहः ॥ ३२१ ॥

सोंठ, इन्द्रजौ, नागरमोथा, लाल चन्दन और  
कुटकी इनके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान  
करनेसे भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन और पित्तकफ-  
ज्वर नष्ट होता है ॥ ३२१ ॥

द्राक्षा शम्याकधान्याकं कटुका मुस्त-  
ग्रंथिकम् । काथं हन्यादुदावर्त्तं शूलं  
पित्तकफज्वरम् ॥ ३२२ ॥

दाह, अमलतास, धनियों, गुटकी, नागरमोथा और पीपलामूल इनका काय उदायते, शूल और पित्त-कफज्वरको नष्ट करता है ॥ ३२२ ॥

पटोलयवधान्याकमुद्गामलकचन्दनम् ।  
पित्तिकं श्लेष्मपित्तोत्ये ज्वरं नृच्छ-  
दिदाहनुत् ॥ ३२३ ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियों, मूँग, आमले और लालचन्दन इनके कायकी पित्तज्वर और कफपित्त-ज्वरमें पीनेसे तृषा, वमन और दाह दूर होती है ॥ ३२३ ॥

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसिता-  
युतः । कफपित्तज्वरं हन्ति सासृक्पित्तं  
सकामलम् ॥ ३२४ ॥

पत्र और फूल साहित अइसेका रस निकाल कर पत्रात् उसमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करे तो कफ—पित्त—ज्वर, रक्तपित्त और कामला रोग दूर होता है ॥ ३२४ ॥

पटोलं पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं  
यवाः । साधितोऽयं कपायः स्यात्पित्त-  
क्षेष्मभवे ज्वरे ॥ ३२५ ॥

पटोलपात, नीमकी छाल, त्रिफला, मुँडठी और इन्द्रजौ इनका काय पित्त कफज्वरमें देना चाहिये ॥ ३२५ ॥

मुस्तपर्पटकरातानिर्युहेण प्रसाधितः ।  
कफपित्तज्वरहरो यूपो धान्यपटो-  
लयोः ॥ ३२६ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा और चिरायता, इनका सिद्ध किया हुआ निर्युह अथवा धनियों और पटोल-पत्रका यूप कफपित्तज्वरनाशक है ॥ ३२६ ॥

निम्बकोलकयूपस्तु हितः पित्तकफा-  
त्मके ॥ ३२७ ॥

नीमकी छाल और पटोलपत्र इनका यूप भी पित्त-कफज्वरमें हितकारी है ॥ ३२७ ॥

इति पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

## वातकफज्वरचिकित्सा ।

वातकफज्वरलक्षण ।

स्तौभित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव  
च । शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासा  
कम्पोऽरुचिस्तथा । सन्तापो मध्य-  
वेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ३२७ ॥

शरीर गीले कपड़ेसे ढकासा मालूम हो, संधियों पीडा हो, निद्रा अधिक आवे, देहमें भारीपन, शिर पीडा, जुकाम, रौंसी, कम्प, अन्नमें अरुचि, सता और ज्वरका वेग मध्यम हो, ये वातकफज्वरके लक्षण जानने ॥ ३२७ ॥

चिकित्सा ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः कृतः  
कपायः कफमारुचोत्तरे । सश्वासका-  
सारुचिपाश्वरुक्करे ज्वरे त्रिदोषप्रभ-  
वेऽपि शस्यते ॥ ३२८ ॥

कटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहंकरमूल, इनका काययनाकर कफवातज्वरमें पीवे इससे श्वास, रौंसी अरुचि, पसलियोंकी पीडा और त्रिदोषजनित सब भी दूर होता है ॥ ३२८ ॥

मुस्तापर्पटकं शुण्ठी गृह्वी सहृ-  
लभा । कफवातारुचिच्छदिदाहशो-  
पज्वरापहः ॥ ३२९ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय और धमासा, इनका काय वातकफ, अरुचि, वमन, दाह शोष और ज्वरको दूर करता है ॥ ३२९ ॥

मातुलङ्गफलकेसुरोद्धतः सिन्धुजन्म-  
मरिचान्वितो मुखे । हन्ति वातकफ-  
रोगमास्यगं शोषमाशु जडतामरोच-  
कम् ॥ ३३० ॥

बिजौरि नीं, केशर, सैंधानोन और मिरच, इनका एकत्र पीसकर मुखमें धारण करनेसे, वातकफज्वर मुखशोष, मुखकी जडता, विरसता और अरुचि शीघ्र दूर होती है ॥ ३३० ॥

आरुग्धप्रस्थिकमुत्तातिकाहरीतकीभिः  
कूपितः कषायः । सामे सश्ले  
कफवातयुक्ते ज्वरे हितो दीपन-  
पाचनश्च ॥ ३३१ ॥

अमलताम, पीपलामूल, नागरमोषा, कूटकी और  
हरद इनका कषय-आमश्ल और कफवातयुक्त ज्वरमें  
हितकारक है तथा दीपन और पाचन है ॥ ३३१ ॥

आरोग्यपत्रक ।

पिप्पली पिप्पलीनलं चञ्चचित्रक-  
नागरः । शीपनीयः शृतो वर्गः कफानिल-  
गदापहः ॥ ३३२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चन्द, चीता और सोंठ इन-  
का कषय दीपन और कफवातके रोगोंका नाशक  
है ॥ ३३२ ॥

चातुर्भद्रक ।

किराततिकंमुत्तं च शूचीं विश्वभेप-  
जम् । चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्म-  
ज्वरापहम् ॥ ३३३ ॥

चिरायना, नागरमोषा, गिलोय और सोंठ इनको  
चातुर्भद्रक कहते हैं । यह वातकफके ज्वरको नष्ट करता  
है ॥ ३३३ ॥

पिप्पलीभिः शृत तोयमनभिष्यादि  
दीपनम् । वातश्लेष्मविकारघ्नं ज्वरघ्नं  
प्लीहनाशनम् ॥ ३३४ ॥

पीपलका कषय-अनाभिष्यन्दी, दापन, वातकफके  
विकारका नाशक, ज्वरनाशक और प्लीहको नष्ट  
करता है ॥ ३३४ ॥

निम्बामृता विश्वदारु कटुफलं कटु-  
की वचा । कषायं पाययेद्वाशु वातश्ले-  
ष्मज्वरापहम् ॥ ३३५ ॥ पर्वभेदः शिरः-  
श्लेष्मासारोचकपीडितम् ॥ ३३६ ॥

नीमकी छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु कायफल,  
शुटकी और बबे इनका काढ़ा वातकफज्वर, सन्धि-  
योंकी पीड़ा, शिरःश्लेष्म, रोंसी और अरुचि इनसे  
पीडित मनुष्यको पिलावे ॥ ३३५ ॥ ३३६ ॥

दारुपट्टभाङ्गश्चन्द्रवचाधान्यककटुफ-  
लः । सामयाधिश्वपतीकैः काथो द्विगु-  
मधूत्कटः ॥ ३३७ ॥ कफवानज्वरे पीतो  
द्विकाशोपगलप्रहान् । श्वासकासप्र-  
मेहांश्च हन्यात्तरुभिवाशनिः ॥ ३३८ ॥

देवदारु, पिचपापटा, भारंगी, नागरमोषा, बबे,  
पनीयों, कायफल, हरद, सोंठ और दुर्गन्धकरंज  
इनके कषयमें शींग और शहद डालकर पीये तो कफ-  
वातज्वरमें पिया हुआ द्विका, शोष, गलप्रद, श्वास,  
रोंसी और प्रमेह इतने उपद्रवोंको नष्ट करता है  
जैसे वृक्षको बस नष्ट कर देता है ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥

दशमूलरसः पीतः कणादयश्च कफा-  
निले । अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्व-  
रुक्श्वासकासके ॥ ३३९ ॥

कफवातज्वरमें दशमूलके कषयमें पीपलका चूर्ण  
डालकर पीनेसे ज्वर, अजीर्ण, अतिनिद्रा, पसलीकी  
पीड़ा, श्वास और रोंसी दूर होती है ॥ ३३९ ॥

दशमूल ।

पर्ण्यो बृहत्यां गोकण्डो विल्वोऽग्निम-  
थनोऽरलः । काश्मरी पाटला चैति  
सन्निपातहरो गणः ॥ ३४० ॥

शालिपर्णा, पृथिनपर्णा, कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरु,  
बेलगिरी अरणी, इयोनक, हुम्बेर और पाटल इन  
औपधियोंके समूहको दशमूल कहते हैं, यह दशमूल  
सन्निपातनाशक है ॥ ३४० ॥

तृष्णाश्विते वातकफातिशूले सश्वा-  
सकासारुचिवद्धविट्के । हितं जलं  
दीपनपाचनश्च पटोलशुण्ठीयवापिप्प-  
लीनाम् ॥ ३४१ ॥

पटोलपत्र, सोंठ, इन्द्रजी और पीपल, इनका  
कषय तृष्णायुक्त वात-कफरोग, शूल, श्वान्त, रोंसी,  
अरुचि और मलत्रयता इतने हितकारक, दीपन  
और पाचन है ॥ ३४१ ॥

पानसश्वासवाधिर्यं जह्वापवास्थि-  
शूलिनि । कफवातज्वरे  
विधानम् ॥ ३४२ ॥

पीनसरोग, श्वास, वधिरता, जंवा, संधि और अस्थिशूलमें तथा कफघातज्वरमें विधि जाननेवाला स्वेद कर्म करावे ॥ ३४२ ॥

### वालुकास्वेद ।

खर्परभृष्टपटास्थितकाञ्जिकसंसिक्तवालुकास्वेदः । शमयति वातकफामय-मस्तकशूलान्गंगादीन् ॥ ३४३ ॥

एक खीपडेमें वालुको भरकर उसको खूब गरम करके रोगीके सर्माप धरे और रोगीको बखसे ढक देवे । पश्चात् वालुके ऊपर कौंजीके छीटे देदेकर पसीना निकाले । यह वालुकास्वेद-वातकफके रोग, शिरकी पीड़ा और सब शरीरकी पीड़ाको शांत करता है अथवा वालुको खीपडेमें खूब तपाकर पश्चात् उसकी कपड़ेमें पोटली बनाकर उस पोटली को कौंजीमें भिजोकर स्वेद देवे, इसको भी वालुका स्वेद कहते हैं ॥ ३४३ ॥

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावक-माशयम् । हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदोज्वरमपोहति ॥ ३४४ ॥

वालुकास्वेद-शरीरके स्रोतोंको मृदु अर्थात् मुद्ध करता है, अग्न्याशयको यथास्थानमें स्थापित करता है, वातकफकी स्तम्भताको और ज्वरको दूर करता है ॥ ३४४ ॥

पुष्करमूलयूपस्तु वानश्लेमादिके हितः ।

वातकफज्वरमें पोहकरमूलका यूप हितकारक है ।

इति वातकफज्वरचिकित्सा ।

### सन्निपातचिकित्सा ।

#### सन्निपातनिदान ।

वैरोधिकोन्नपानेरजीर्णाध्यशनेन च । व्याभिश्चसेवनाच्चापि सन्निपातः प्रकु-प्यति ॥ ३४५ ॥

धिरुद्ध ( समयधिरुद्ध, संयोगधिरुद्ध, स्वभाव-देशधिरुद्ध ) ऐसे अन्न और पानको सेवन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे अथवा भोजन पर भोजन

करनेसे या बिना समय भोजन करनेसे और अनेक प्रकारके मिश्रित पदार्थोंके सेवन करनेसे सन्निपात कुपित होते हैं ॥ ३४५ ॥

अब सन्निपातके लक्षण कहते हैं ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धि-शिरोरुजा । संस्त्रावे कलुषेरक्ते निर्भुष्टे चापि लोचने ॥ ३४६ ॥ सस्वनो सरुजो कर्णो कण्ठः शूकैरिवाधृतः । तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरु-चिर्भ्रमः ॥ ३४७ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा घ्रस्तांगता परम् । श्ठीवनं रक्त-पित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ ३४८ ॥ शिरसो लोठनं नृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा । स्वेदमृत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ ३४९ ॥ कुशवं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनम् । कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ ३५० ॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च । चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपात ज्वराकृतिः ॥ ३५१ ॥

क्षणमें दाह हो, क्षणमें शीत लगे, हृष्ट, संधि ( जोड़ ) और शिरमें पीड़ा हो, नेत्र आसुनुक कलुषित ( गँदले ), लाल और टेढ़े हों, कानमें शब्द और पीड़ा हो, कंठ काटोंसे घिरा हुआ हो, तन्द्रा ( ऊँचना ), मोह ( बेहोशी ), प्रलाप ( बुरा वकवाद ), सँसी, श्वास, अरुचि और भ्रम हो, जीभ अग्निसे जलीहुई सी मालूम हो तथा खरखरी हो, सम्पूर्ण अंग दिथिल हो जायँ, कफ मिले हुए रक्त और पित्तको यूके, शिरको इधर उधर लुढ़काने, तृषा हो, निद्रा न आवे, हृदयमें पीड़ा, पसीला, मूत्र और मल ये बहुत फाटमें थोड़े २ निकलें, शरीर अत्यन्त कृश ( दुबला ) न हो, निरन्तर कंठ बोलें, शरीरमें काले, पीले और लाल मिले रङ्गके गोल २ चकत्ते पड़ जायँ, मूकता ( गुणापन ) हो, फाट नासिकादि शरीरके स्रोतोंका पकना, उदरमें भारी-पन और चातादि दोषोंका बहुत कालमें पकना ये सब सन्निपातज्वरके लक्षण जानने चाहिये ॥ ३४६ ॥ ३४७ ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ ३५१ ॥

दोषे विवद्वे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ।  
सन्निपातज्वरो साध्यः कृच्छ्रसाध्य-  
स्ततोऽन्यथा ॥ ३५२ ॥

जिसमें सर्वदोष वढे हुए हों, जठराग्नि नष्ट हो  
हो और सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों वह सन्निपात  
र असाध्य है-और इससे अन्यथा अर्थात् दोष वढे  
हों, अग्नि कुछ दीपन हो और थोडे लक्षण हों तो  
कृच्छ्रसाध्य है ३५२ ॥

वातापित्ताधिक वधु सन्निपात  
ज्वरके लक्षण ।

वातपित्ताधिको यस्य सन्निपातश्च  
कुप्यति । तस्य ज्वरो मदस्तृण्णामुख-  
शोषप्रमीलिकाः । आध्मानारुचित-  
न्द्राश्च कासश्वासध्रमकृमाः । मुनिभि-  
र्वधुनामायं सन्निपात उदाहृतः ३५३ ॥

जिसेके वातापित्ताधिक सन्निपात कुपित होता है  
स मनुष्यके ज्वर, मद ( बेहोशी ), तृषा, मुख-  
शोष, नेत्रोंका मिचन, अफारा, अरुचि, तन्द्रा, खांसी,  
प्रास, ध्रम और बलम ( ग्लानि ) ये सब लक्षण होते  
हैं । इसको मुनियोंने वधुसन्निपात कहा है ॥ ३५३ ॥

पित्तकफाधिकसन्निपातके लक्षण ।

पित्तश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः  
प्रकुप्यति । अन्तर्दाहो वाहिः शीतं  
तस्य तृण्णा प्रवर्द्धते ॥ ३५४ ॥ तुद्यते  
दक्षिणं पार्श्वं मुखशोषगलप्रहाः ।  
ष्ठीवति रक्तपित्तं च कृच्छ्रात्कण्ठश्च  
दूयते ॥ ३५५ ॥ विद्भेदश्वासहिक्काश्च  
वर्द्धन्ते सप्रमीलिकाः । विधुः फल्गुश्च  
तौ नाम्ना सन्निपातावुदाहृतौ ॥ ३५६ ॥

जिस मनुष्यके पित्तकफाधिक सन्निपात कुपित  
होता है उसके शरीरके भीतर दाह हो और बाहरसे  
शीत लगे, तृषा बढ जावे, दहनी पसलीमें पीडा हो,  
मुखशोष, गला रुक जाय, रधिर मिला पित्त थूके,  
कठिनतासे कंठसे बोला जाय, दस्त होने लगें, श्वास  
हो, हिचकी आवे और नेत्र मिचसे जावे इनको  
विद्वानोंने विधु और फल्गु नामक सन्निपात कहा है

अर्थात् पूर्वोक्त वधुनामक सन्निपातका नाम विधु  
और पित्तकफाधिक सन्निपातका नाम फल्गु कहा  
है ॥ ३५४ ॥ ३५५ ॥ ३५६ ॥

कफवाताधिक शीघ्रकारी  
सन्निपातके लक्षण ।

श्लेष्मानिलाधिको यस्य सन्निपातः  
प्रकुप्यति । तस्य शीतज्वरो मूर्च्छा  
धुत्तृण्णा पार्श्वसंग्रहः ॥ ३५७ ॥ शूलम-  
स्विद्यमानस्य हिक्का श्वासश्च जायते ।  
असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारी-  
ति कथ्यते ॥ नहि जीवत्यहोरात्रम-  
नेनाविष्टविग्रहः ॥ ३५८ ॥

जिस मनुष्यके कफवाताधिक सन्निपात कुपित  
होता है उसके शीतज्वर, मूर्च्छा, तृषा क्षुधा और पस  
लियोंमें पीडा, शूल, पसीनेका न आना, हिचकी  
और श्वासका अधिक बढना, ये सब लक्षण  
असाध्य हैं, इसको शीघ्रकारी सन्निपात कहते हैं  
इस सन्निपातवाला रोगी एक दिनरात भी नहीं  
जीता ॥ ३५७ ॥ ३५८ ॥

वातोत्त्वण विस्फोरकसन्नि-  
पातके लक्षण ।

कासः श्वासस्तमो मूर्च्छा प्रलापो  
मोहवेपथू । पार्श्वयोर्वेदना जृम्भा  
कपायत्वं मुखस्य च । वातोत्तरस्य  
रूपाणि सन्निपातस्य लक्ष्येत ॥ ३५९ ॥  
एष विस्फोरको नाम्ना सन्निपातः  
सुदारुणः ॥

खांसी, श्वास, अंधकारदर्शन, मूर्च्छा, प्रलाप,  
मोह, कम्प, पसलियोंमें पीडा, जम्भाईका अधिक  
आना आर मुखमें कसैलापन, ये सब लक्षण जिसमें  
हों उसको वातोत्त्वण दारुण विस्फोरक सन्निपात  
जानना ॥ ३५९ ॥

पित्तोत्त्वण आशुकारी सन्निपातके लक्षण ।  
अतिसारो भ्रमो मूर्च्छा मुखपाकस्त-  
थैव च । गात्रे च विन्द्वो रक्ता दाह-



स्तीव्रः प्रजायते ॥ ३६० ॥ पित्तोत्त-  
रस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत् ।  
भियग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी  
प्रकीर्तितः ॥ ३६१ ॥

अनिसार (इस्तहो), भ्रम, मूर्च्छा, मुखका पकना,  
शरीरमें डालविट्टुओंका पढ़ना और तीव्र दाहका होना  
ये लक्षण जिसमें हों, उसको पित्तोत्वन आशुकारी  
सन्निपात जानना ॥ ३६१ ॥

कफोत्वन कंपनसन्निपातके लक्षण ।

जडता गद्गदा वाणारात्रौ निद्रा भव-  
त्यपि । प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधु-  
र्यमेव च ॥ ३६२ ॥ कफोत्तरस्य रूपाणि  
सन्निपातस्य लक्षयेत् । मुनिभिस्सन्नि-  
पातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ३६३ ॥

शरीरकी जडता, गद्गद बोलना, रात्रिमें नींद आना,  
नेत्रोंकी टकटकीसी लगी रहना और मुखमें मधुरता,  
ये सब लक्षण जिसमें हों उसको कफोत्वन कंपन  
सन्निपात जानना ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥

हीनवात मध्यापित्त और अधिककफ  
वैदारिक सन्निपातके लक्षण ।

हीनमध्याधिकैर्यस्य वातापित्तकफैः  
क्रमात् सन्निपातः प्रभवति पीडयन्दो-  
पदर्शनात् ॥ ३६४ ॥ अल्पशूलं कटी-  
तोदो मध्ये दाहो रुजा भ्रमः । भृशं  
क्लमः शिरोवक्रमन्याहृदयवायुजः ॥  
३६५ ॥ प्रमीलिकाः श्वासाहिककाका-  
सजाड्यविसंज्ञताः । प्रथमोत्पन्नमेतज्जु  
सांध्येषु कदाचन ॥ ३६६ ॥ एतस्मि-  
न्सन्निपाते तु कर्णमूलं सुदारुणा ।  
पिटिका जायते जन्तुर्यया कृच्छ्रेण  
जिवाति ॥ ३६७ ॥ सर्वैदारिकसंज्ञोऽयं  
सन्निपातः सुदारुणः । त्रिरात्रात्पर-  
मेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ३६८ ॥

जिसके हीनवात, मध्यापित्त और अधिक कफके  
कोपसे सन्निपात होता है, उसके एन्हीं दोषोंके क्रमसे  
पीड़ा करतेहुए लक्षण होते हैं जैसां तु उसमें वातजन्य  
उपद्रव अल्प, पित्तजन्य उपद्रव मध्यम और कफ-  
जन्य उपद्रव अधिक तथा अधिक पीड़ा करते हैं, ऐसे  
कि अल्पशूल और कमरमें पीड़ा ये हीनवातके लक्षण  
जानने । मध्यदाह, पीड़ा और भ्रम ये मध्यापित्तके  
लक्षण जानने तथा आर्यत ग्लानि यह अधिक कफका  
लक्षण है इत्यादि । एवं शिर, मुख, मन्या, हृदय और  
जिहामें पीडा हो, नेत्र भिचसे जायें, श्वास, हिनकी,  
खौंसी, जडता हो, बेहोशी होवे। इसके उत्पन्न होतेही  
यदि विकृतिस्सा की जावे तो कदाचित् आराम होजाय  
पश्चात् नहीं. इस सन्निपातमें कानकी जड़में दारुण  
सूजन उत्पन्न होती है, जिसके प्रभावसे मनुष्य बड़े  
दुःखसे जीता है । इस दारुणसन्निपातको वैदारिक  
कहते हैं, तीन रात्रिके पश्चात् इसकी औषधि करनी  
इया है ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ ३६८ ॥

मध्यवात, हीनपित्त, अधिककफ-  
ककोटक सन्निपातके लक्षण ।

मध्यहीनाधिकैर्यस्य सन्निपातो यदा  
भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-  
दोषबलाश्रयाः ॥ ३६९ ॥ अन्तर्दाहो  
विशेषोऽत्र प्रवक्तुं न च शक्यते । रक्त-  
मालक्तकैरेव लक्ष्यते मुखमण्डलम् ॥  
३७० ॥ यत्नेनाकार्षितः श्लेष्मा हृद-  
यान्न प्रसिच्यते । इपुणेवाहतं पार्श्वं  
तुद्यते खन्यते हृदि ॥ ३७१ ॥ प्रमी-  
लिकाश्वासहिकका वर्धन्ते तु दिने दिना  
जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूर्करि-  
वायृतः ॥ ३७२ ॥ विसर्गं नाभिजा-  
नाति कूजते च कपोतवत् । अर्ताव  
श्लेष्मणा पूर्णः शुष्कवक्त्रोष्ठतालुकः ॥  
३७३ ॥ तन्द्रानिद्रातियोगात्तौ  
हतवर्हिर्हतद्युतिः । न चाति भजते  
ग्लानिं विपरीतानि यच्छति ॥ ३७४ ॥  
आयम्यते च बहुशः सरक्तं ष्टीवते-

ऽल्पशः । एष कर्कोटको नाम्ना सन्नि-  
पातः सुदारुणः ॥ ३७५ ॥

जिसके मध्यवात, हीनपित्त और अधिक कफसे सन्निपात होता है उसके उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे हीन, मध्य और अधिक रोग होते हैं, शरीरके भीतर दाह होना, बोलनेमें असमर्थता, मुखमण्डलका आलके रंगके समान छाल होना, बलपूर्वक आकार्पित किया हुआ भी कफ हृदयसे बाहर नहीं निकलता, पसलियोंमें तीर चुभनेकीसी पीड़ा, हृदयमें खोदनेके समान पीड़ा, नेत्र मियेसे जायें, श्वास और हिचकी, दिन प्रति दिन बढ़ते जायें, जमि जलीहुईसी और खरखरी हो, कंठमें कांटे पड़े जायें, वैद्योद्यमिं मल मूत्रको त्याग देवें, अधिक कफसे परिपूर्ण हो जानेसे कण्ठ कघूतरके समान कूजे, मुख, ओष्ठ और तालु सूख जायें, तन्द्रा और निद्रा होवे, जठराग्नि नष्ट होजाय, कांति (शरीरकी शोभा) जाती रहे, अधिक ग्लानि हो, धिपरीत चेष्टा करे और थोड़ा रुधिर मिला युके, ये दारुण-सन्निपात 'कर्कोटक' नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६९ ॥ ॥३७०॥३७१॥३७२॥३७३॥३७४॥३७५ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफ-  
संमोहकसन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धमध्यहीनश्च सन्निपातो यदा  
भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-  
दोषबलाश्रयाः ॥ ३७६ ॥ प्रलापाया-  
ससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः । एक-  
पक्षाभिघातस्तु तत्राप्येताद्विशेषतः ।  
एष संमोहको नाम्ना सन्निपातः  
सुदारुणः ॥ ३७७ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे अधिक, मध्य और हानरोग होते हैं । प्रलाप, भ्रम, वैद्योद्यमि, कम्प, मूर्च्छा, चिचका कहीं न लगाना, भ्रम और एक ओरका अंग रह जाना इन विशेष लक्षणोंसे युक्त दारुण सन्निपातको 'संमोहक' कहते हैं ॥ ३७६ ॥ ३७७ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफो-  
त्पन्न सन्निपातके लक्षण ।

हीनातिवृद्धमध्यैस्तु सन्निपातो यदा  
भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-  
दोषबलाश्रयाः ॥ ३७८ ॥ हृदयं दह्यते  
चास्य यकृत्प्लीहान्तफुफ्फुसाः ।  
पच्यन्तेऽत्यर्थमूर्ध्वाधःपूयशोणित-  
निर्गमः ॥ ३७९ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके क्रमसे हीन, अधिक और मध्यम रोग होते हैं । हृदयमें जलन, यकृत, प्लीहा, अँत और फेफड़ा यह पक जाते हैं, ऊर्ध्व और अधोमार्गसे राध और रुधिर निकलता है ॥ ३७८ ॥ ३७९ ॥

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफ-  
जन्य सन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धहीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः।  
तेन रोगास्त एवोक्ता यथारोगबला-  
श्रयाः । प्रलापायाससंमोहकम्पमू-  
च्छारतिभ्रमाः ॥ ३८० ॥ मन्यास्तम्भेन  
मृत्युश्च तत्राप्येताद्विशेषणम् ।

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषानुसार क्रमसे रोग होते हैं । तथा प्रलाप, भ्रम, मोह, कम्प, मूर्च्छा, वैचैनी, भ्रम और मन्या नाड़ीके स्तम्भसे मृत्युका होना ये विशेष लक्षण होते हैं ॥ ३८० ॥

मध्यवात, अधिकपित्त और हीनक-  
फोत्पन्नसन्निपातके लक्षण ।

मध्यप्रवृद्धहीनैश्च सन्निपातो यदा  
भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-  
रोगबलाश्रयाः ॥ ३८१ ॥ मोहप्रला-  
पमूर्च्छाः स्यु स्तम्भकम्पशिरोग्रहाः ।  
कासश्वासौ भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशौ  
हृदि ग्रहः ॥ ३८२ ॥ खेभ्यो रक्तं  
विसृजति तत्राप्येताद्विशेषणम् । अर्वाङ्क

स्तीव्रः प्रजायते ॥ ३६० ॥ पित्तोत्त-  
रस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत् ।  
भियग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी  
प्रकीर्तितः ॥ ३६१ ॥

अतिसार (दस्तहों), भ्रम, मूर्च्छा, मुखका पकना,  
शरीरमें डालविदुआंका पड़ना और तीव्र दाहका होना  
ये लक्षण जिसमें हों उसको पित्तोत्पन्न आशुकारी  
सन्निपात जानना ॥ ३६१ ॥

कफोत्पन्न कंपनसन्निपातके लक्षण ।

जडता गद्गदा वाणी रात्रौ निद्रा भव-  
त्यपि । प्रसृष्टे नयने चैव मुखमाधु-  
र्यमेव च ॥ ३६२ ॥ कफोत्तरस्य रूपाणि  
सन्निपातस्य लक्षयेत् । मुनिभिस्सन्नि-  
पातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ३६३ ॥

शरीरकी जडता, गद्गद बोलना, रात्रिमें नींद आना,  
नेत्रोंकी टकटकीसी लगी रहना और मुखमें मधुरता,  
ये सब लक्षण जिसमें हों उसको कफोत्पन्न कंपन  
सन्निपात जानना ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥

हीनवात मध्यपित्त और अधिककफ  
वेदारिक सन्निपातके लक्षण ।

हीनमध्याधिकैर्यस्य वातापित्तकफैः  
क्रमात् । सन्निपातः प्रभवति पीडयन्दो-  
षदर्शनात् ॥ ३६४ ॥ अल्पशूलं कटी-  
तोदो मध्ये दाहो रुजा भ्रमः । भृशं  
क्लमः शिरोवक्रमन्याहृदयवायुजः ॥  
॥ ३६५ ॥ प्रमीलिकाः श्वासहिक्काका-  
सजाद्यविसंज्ञताः । प्रथमोत्पन्नमेतत्तु  
साधयेत्तु कदाचन ॥ ३६६ ॥ एतस्मि-  
न्सन्निपाते तु कर्णमूले सुदारुणा ।  
पिष्टिका जायते जन्तुर्यया कृच्छ्रेण  
ज्वाति ॥ ३६७ ॥ सधेदारिकसंज्ञोऽयं  
सन्निपातः सुदारुणः । विरात्रात्पर-  
मेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ३६८ ॥

जिसके हीनवात, मध्यपित्त और अधिक कफके  
कोपसे सन्निपात होता है, उसके एन्हीं दोषोंके क्रमसे  
पीड़ा करतेहुए लक्षण होते हैं अर्थात् उसमें वातजन्य  
उपद्रव अल्प, पित्तजन्य उपद्रव मध्यम और कफ-  
जन्य उपद्रव अधिक तथा अधिक पीड़ा करते हैं, जैसे  
कि अल्पशूल और कमरमें पीड़ा ये हीनवातके लक्षण  
जानने । मध्यदाह, पीड़ा और भ्रम ये मध्यपित्तके  
लक्षण जानने तथा अत्यंत ग्लानि यह अधिक कफका  
लक्षण है इत्यादि । एवं शिर, मुख, मन्या, हृदय और  
जिह्वामें पीड़ा हो, नेत्र मिचसे जावें, श्वास, हिचकी,  
खौंसी, जडता हो, वेहोशी होवे इसके उत्पन्न होतेही  
यदि चाकिस्ता की जावे तो कदाचित् आराम होजाय  
पश्चात् नहीं । इस सन्निपातमें कानकी जड़में दारुण  
सृजन उत्पन्न होती है, जिसके प्रभावसे मनुष्य बड़े  
दुःखसे जीता है । इस दारुणसन्निपातको वेदारिक  
कहते हैं, तीन रात्रिके पश्चात् इसकी औषधि करनी  
यथा है ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ ३६८ ॥

मध्यवात, हीनपित्त, अधिककफ-  
कर्कोटक सन्निपातके लक्षण ।

मध्यहीनाधिकैर्यस्य सन्निपातो यद्वा  
भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-  
दोषबलाश्रयाः ॥ ३६९ ॥ अन्तर्दाहो  
विशेषोऽत्र प्रवक्तुं न च शक्यते । रक्त-  
मालक्तकैरेव लक्ष्यते सुखमण्डलम् ॥  
॥ ३७० ॥ यत्रेनाकर्षितः श्लेष्मा हृद-  
यात्र प्रसिच्यते । इषुणेवाहतं पार्श्वं  
तुद्यते खन्यते हृदि ॥ ३७१ ॥ प्रमी-  
लिकाश्वासहिक्का वर्धन्ते तु दिने दिने ।  
जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूकरि-  
वायुतः ॥ ३७२ ॥ विसर्गं नाभिजा-  
नाति कूजते च कपोतवत् । अतीव  
श्लेष्मणा पूर्णः शुक्लवक्त्रोऽष्टतालुकः ॥  
॥ ३७३ ॥ तन्द्रानिद्रातिथेर्गामार्तो  
हतवर्हिर्हृतद्युतिः । न चाति भजते  
ग्लानिं विपरीतानि यच्छति ॥ ३७४ ॥  
आयम्यते च बहुशः सरक्तं घृवते-

उत्पशः । एष कर्कोटकौ नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७५ ॥

जिसके मध्यवात, हीनपित्त और अधिक कफसे सन्निपात होता है उसके उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे हीन, मध्य और अधिक रोग होते हैं, शरीरके भीतर दाह होना, बोलनेमें असमर्थता, मुखमण्डलका आलके रंगके समान टाल होना, बलपूर्वक आकार्षित किया हुआ भी कफ हृदयसे बाहर नहीं निकलता, पसलियोंमें तीर चुभनेकीसी पीड़ा, हृदयमें खोदनेके समान पीड़ा, नेत्र मिचेसे जाँच, श्वास और हिचकी, दिन प्रति दिन बढ़ते जाँचें, जबि जलीहुईसी और खरखरी हो, कंठमें कांटे पड़ जाँचें, वैहोशिमं मल मूत्रको त्याग देवे, अधिक कफसे परिपूर्ण हो जानेसे कण्ठ क्यूतरके समान कूजे, मुख, ओष्ठ और तालु सूख जाँचें, तन्द्रा और निद्रा होवे, जठराग्नि नष्ट होजाय, कांति (शरीरकी शोभा) जाती रहे, अधिक ग्लानि न हो, धिंपरीत चेष्टा करे और थोड़ा २ रुधिर मिला युके, ये दारुण-सन्निपात 'कर्कोटक' नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३६९ ॥ ॥३७०॥३७१॥३७२॥३७३॥३७४॥३७५ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफ-संमोहकसन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धमध्यहीनेश्च सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-दोषबलाश्रयाः ॥ ३७६ ॥ प्रलापाया-ससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः । एक-पक्षाभिघातस्तु तत्राप्येताद्विशेषतः । एष संमोहको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७७ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे अधिक, मध्य और हीनरोग होते हैं । प्रलाप, भ्रम, वैहोशी, कम्प, मूर्च्छा, चित्तका कहीं न लगना, भ्रम और एक ओरका अंग रह जाना इन विशेष लक्षणोंसे युक्त दारुण सन्निपातको 'संमोहक' कहते हैं ॥ ३७६ ॥ ३७७ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफो-ल्वण सन्निपातके लक्षण ।

हीनातिवृद्धमध्यैस्तु सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-दोषबलाश्रयाः ॥ ३७८ ॥ हृदयं दह्यते चास्य यकृत्प्लीहान्त्रफुफ्फुसाः । पच्यन्तेऽन्यर्थमूर्ध्वाधःपूयशोणित-निर्गमः ॥ ३७९ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके क्रमसे हीन, अधिक और मध्यम रोग होते हैं । हृदयमें जलन, यकृत, प्लीहा, अँतों और फेफड़ा यह पक जाते हैं, ऊर्ध्व और अधोमार्गसे राध और रुधिर निकलता है ॥ ३७८ ॥ ३७९ ॥

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफ-जन्य सन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धहीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः । तेन रोगास्त एवोक्ता यथारोगबलाश्रयाः । प्रलापायाससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः ॥ ३८० ॥ मन्यास्तस्मिन् मृत्युश्च तत्राप्येताद्विशेषणम् ।

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषानुसार क्रमसे रोग होते हैं । तथा प्रलाप, भ्रम, मोह, कम्प, मूर्च्छा, वैचैनी, भ्रम और मन्या नाड़ीके स्तम्भसे मृत्युका होना ये विशेष लक्षण होते हैं ॥ ३८० ॥

मध्यवात, अधिकपित्त और हीनकफो-ल्वणसन्निपातके लक्षण ।

मध्यप्रवृद्धहीनेश्च सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा-रोगबलाश्रयाः ॥ ३८१ ॥ मोहप्रलापमूर्च्छाः स्यु स्तम्भकम्पाशिरोग्रहाः । कासश्चासौ भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशो हृदि ग्रहः ॥ ३८२ ॥ स्निग्धो रक्तं विसृजति तत्राप्येताद्विशेषणम् । अर्वाङ्क

त्रिरात्रान्मृत्युश्च तन्द्री वा स्तब्धलो-  
चनः । एषां त्रयाणां नामानि याम्य-  
क्रकचपाकलाः ॥ ३८३ ॥

मध्यरात, अधिकपित्त और हीनकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके बलानुसार क्रमसे रोग होते हैं । मोह, प्रलाप, मूर्च्छा, अंधकार-दर्शन, कन्प, शिरोरोग, खँसी, श्वास, भ्रम, तन्द्रा, अचेत होजाना, हृदयमें पीडा, मुखनासिका आदिसे रुधिरका निकलना, तन्द्राका होना और नज्रोंका पथराना ये विशेषलक्षण हैं । यह सन्निपात तीनदिनमें ही मनुष्यको मार देता है । उपरोक्त तीनों-सन्निपातोंके क्रमसे याम्य, क्रकच और पाकल नाम जानने ॥ ३८१ ॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥

त्रिदोषोत्पन्न कूटपाकल सन्निपात-  
ज्वरके लक्षण ।

सर्वदोषैः प्रकृपितं सन्निपातं निबोध  
मे । त्रयाणामपि दोषाणां सर्वरूपाणि  
लक्षयेत् ॥ ३८४ ॥ यानि ज्वरचिकि-  
त्सायां रूपान्युक्तानि कृत्स्नशः । तैः  
सर्वैरेव सम्पूर्णविज्ञेयैः कूटपाकलः ॥  
॥ ३८५ ॥ व्याधिभ्यो दारुणेभ्यश्च  
वज्रशस्त्राभिसन्निभः । केवलोच्छ्वा-  
सपरमः स्तब्धाङ्गः स्तब्धलोचनः ॥  
॥ ३८६ ॥ त्रिरात्रात्परमेतस्य जन्तो-  
र्हरति जीवितम् । तदावश्यन्तु तं दृष्ट्वा  
मूढो व्याहरते यतः ॥ ३८७ ॥ धीर्षितो  
राक्षसेर्नमवेलायां चरन्ति ये ।  
अम्यया वृषते केचिद्यक्षिण्या ब्रह्मरा-  
क्षसैः ॥ ३८८ ॥ पिशाचैर्गुह्यकेश्वेव  
तथान्यमस्तके हृतम् । कुलदेवार्चना-  
द्धीनं धीर्षितं कुलदेवतैः ॥ ३८९ ॥ नक्ष-  
त्रपीडामपरे गरुक्रमति चापरे ।  
वदन्ति सन्निपातन्तु, भिषजाः कूट-  
पाकलम् ॥ ३९० ॥

तीनों दोषोंके उत्पन्न होनेसे जो सन्निपात कृपित  
होता है, उसमें तीनों दोषोंके सब लक्षण होते हैं ।

सब प्रकारके ज्वरोंमें जो जो लक्षण होते हैं,  
ये सब लक्षण इस कूटपाकल सन्निपातमें होते  
हैं । यह दारुण व्याधि-मम, श्वास और अमिके  
समान भयंकर है । इस सन्निपातदोगीके केवल  
त्रयासमात्र ही आता है, सब शरीर जकड़ जाता  
है और नेत्र पथरके समान स्थिर होजाते हैं । तीन  
दिनके पश्चात् यह मनुष्यको मार देता है । इस सन्नि-  
पातदोगीको देखकर मुखेलोग नामाप्रकारकी कपोल-  
कल्पना करते हैं । कोई कहता है कि,—यह हुसमप  
( आधीरातके समय ) चौराहा, उम्रमानभूमि आदि-  
स्थानोंमें गया इससे बड़ा राक्षसोंने दबा लिया हो,  
कोई कहता है कि—इसको देखने मस लिया है, कोई  
कहता है कि चक्षिणोंने प्रसा है, कोई ब्रह्मराक्षसकी  
वाधा घतलाता है, कोई पिशाचमसित और कोई गुह्य-  
कमसित कहता है । कोई कहता है कि, इसके शिरमें  
चोट लगी है, कोई कहता है कि, इसने कुलदेवताका  
पूजन नहीं किया था अतः अब उन्हेोंने इसे दबा लिया  
है, कोई नक्षत्रकी पीडा कहता है, कोई कहता है कि  
इसने विषभक्षण कर लिया है, इसप्रकार मुखेलोग  
अनेक प्रकारकी कल्पना करतेहैं परन्तु बसलोग इसको  
कूटपाकल सन्निपात कहते हैं ॥ ३८४ ॥ ३८५ ॥  
३८६ ॥ ३८७ ॥ ३८८ ॥ ३८९ ॥ ३९० ॥

कूटस्थैर्जायतेदोषैर्बलिभिः कूटपाकलम् ।  
त्रयोदशविधं भोक्तं सन्निपातस्य  
लक्षणम् ॥ ३९१ ॥

यह धलवान् कूटस्थ दोषोंसे उत्पन्न होता है इस-  
कारण इसको कूटपाकल सन्निपात कहते हैं । इस  
प्रकार तेरहप्रकारके सन्निपातोंके लक्षण कहेहैं ३९१ ॥

अथ सन्निपातचिकित्सा ।

वध्यते वापि हीनस्य द्वियत ह्यच्छि-  
तस्य च । कफस्थानानुपूर्व्या वा  
सन्निपातज्वरक्रिया ॥ ३९२ ॥

अब सन्निपातकी चिकित्सा कहते हैं—हीन दोषको  
बढाकर और बड़े हुए दोषको घटाकर कफके स्थानसे  
प्रारम्भ करके सन्निपातकी चिकित्सा करना उत्तम  
है ॥ ३९२ ॥

हीनस्य वर्धनाद्धानिवृद्धयोरिति  
निश्चयः । हापनादतिवृद्धस्य हीनयो-  
र्वृद्धिसम्भवः ॥ ३९३ ॥

सन्निपातमें हीन दोषको बढाना और बढेहुए  
पंको घटाना अथवा अत्यंत वृद्धको हीन करना और  
निको बढाना इस प्रकार क्रिया करनी चाहिये ३९३

ततः समत्वं दोषाणामामस्थानं  
कफस्य तु । तत्रस्थानां क्रियां तद्व-  
दिति ज्वरविनिर्णयः ॥ ३९४ ॥

पश्चात् सब दोषोंमें प्रथम कफ और आमके स्थानसे  
चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये अर्थात् प्रथम कफ  
और आमको दूर करना चाहिये, ऐसा सब ज्वरोंमें  
नेश्चय है ॥ ३९४ ॥

यथा दोषोच्छ्रयश्चैव ज्वराच्छेषानुपा-  
चरेत् । निर्हरेत्पित्तमेवादौ ज्वरपु-  
समवायिषु । दुर्निवारतरं तद्वि ज्वरा-  
तेषु विशेषतः ॥ ३९५ ॥

जिस प्रकार दोष बढे हुए हों उसी प्रकार सम्पूर्ण  
ज्वरोंकी चिकित्सा करें । समवायि (मिलेहुए) ज्वरमें  
प्रथम पित्तको शमन करना चाहिये, कारण, पित्त  
अत्यंत दुर्निवार्य है और ज्वररोगपीडित शरीरमें  
विशेष कर दुर्निवार्य हो जाता है ॥ ३९५ ॥

सन्निपाते क्षुधार्तयो भोजयेत्पिशि-  
तौदनम् । स कथं भिषगाख्यातिं  
लभेन्मृदो नराधमः ॥ ३९६ ॥

जो नराधम सन्निपात ज्वरमें रोगीको क्षुधाके  
समय मांस और भात खानेको देता है, वह मूर्ख  
किस प्रकार वैद्य कहा जा सकता है ? ॥ ३९६ ॥

सन्निपाते तु दाहार्थं यः सिञ्चेच्छी-  
तवारिणा । आतुरः स कथं जीव-  
द्भिषग्वा स कथं भवेत् ॥ ३९७ ॥

सन्निपातरोगमें दाहसे पीडित मनुष्यको जो वैद्य  
शीतल जलसे सींचता है तो वह रोगी कैसे जी सक-  
ता है ? और वह वैद्य वैद्य कैसे हो सकता है ? ३९७ ॥

सन्निपातेन मनुजं विलपन्तन्तु यो  
घृतम् । पाययेद्भोजयेद्वापि तौ च  
स्यातामुभौ वधम् ॥ ३९८ ॥

जो मनुष्य सन्निपातरोगमें प्रलाप करते हुए मनु-  
ष्यको घृतपान करावे, अथवा भोजनमें घृत देवे तो  
इन दोनों विधियोंसे रोगी मरजाता है ॥ ३९८ ॥

सन्निपातेन तप्यन्तं पार्श्वरुक्तालुशो-  
धिणम् । यः पाययेज्जलं शीतं स मृत्यु-  
र्नरविग्रहः ॥ ३९९ ॥

सन्निपातरोगमें तृपासे पीडित तथा पसलियोंका  
पीडा और तालुशोपसे पीडित रोगीको यदि शीतल  
जल पिखावे तो उस वैद्यको मृत्युरूप जानना ॥ ३९९  
समुद्रतरणं ह्यतद्वदन्ति भिषगी-  
श्वराः । मृत्युना सह योद्धव्यं सन्नि-  
पातचिकित्सु ना ॥ ४०० ॥

जो सन्निपातकी चिकित्सा करता है वह वैद्य  
साक्षात् मृत्युके साथ युद्ध करता है, उसको प्राचीन  
वैद्य समुद्रसे तारनेवाला कहते हैं ॥ ४०० ॥

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युदरति  
मानवम् । कस्तेन न कृतो धर्मः  
काश्च पूजां न सोऽर्हति ॥ ४०१ ॥

सन्निपातरूपी समुद्रमें डूबेहुए रोगीको जो उद्धार  
करता है उसने कौनसा धर्म नहीं किया ? और वह  
कौनसी पूजाको प्राप्त नहीं होता है ? ॥ ४०१ ॥

श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्याद्वाधाँ त्रिदो-  
षजे । निरस्ते श्लेष्मणिह्यस्य स्रोतस्सुद्धा-  
दितेषु च । लाघवं जायते ह्यस्य तृष्णा  
चैवोपशाम्यति ॥ ४०२ ॥

सन्निपातज्वरमें प्रथम कफको दूर करें, क्योंकि  
जब कफ निकल जायगा तब सब शरीरके छिद्र शुद्ध  
होजायेंगे और शरीर भी हल्का हो जायगा फिर तृपा  
भी शांत हो जायगी ॥ ४०२ ॥

लङ्घनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं  
तथा । अवलेहोऽज्जनश्चैव प्राक्प्रयोज्यं  
त्रिदोषजे ॥ ४०३ ॥

लघन, वालुकास्वेद, ( घालसे सेककर पसीना  
निकालना ), नास देना, निष्ठीवन ( कुल्ल करना ), अव-  
लेह और अंजन ये सब सन्निपातमें प्रथम प्रयोग  
कराने चाहिये ॥ ४०३ ॥

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि  
वा। लङ्घनं संनिपातेषु कुर्यादारोग्यद-  
र्शनात् ॥ ४०४ ॥

तीन या पाँच रात्रि अथवा सात रात्रि किया दश  
रात्रि या आरोग्य होनेपर्यंत सन्निपातमें लंघन करना  
चाहिये ॥ ४०४ ॥

दोषाणामे सा शक्तिर्लङ्घने या सीहि-  
ष्णुता । नहि दोषक्षयं कश्चित्सहते  
लङ्घनादिकम् ॥ ४०५ ॥

जितने दिनोंतक रोगी लंघन महमके उतने दिनों-  
पर्यंत दोषोंका बल जानना चाहिये क्योंकि दोषोंके  
नाश होनेपर ऐसा कौन मनुष्य है जो लंघनको सह  
लेवे ॥ ४०५ ॥

कफापित्ते द्रवेषु धातुं सहते लङ्घनं महत् ।  
आमक्षयादूर्ध्वमापि वायुर्न सहते  
क्षणम् ॥ ४०६ ॥

कफ और पित्त ये दोनों पक्के पदार्थ हैं, इसकारण  
ये बहुत लंघनोंको सह सकते हैं। आमके क्षय होनेपर  
केवल वायु शेष रहजाता है, यह एक क्षण भी लंघन  
नहीं सह सकता है ॥ ४०६ ॥

उत्तम, हीन और अधिक लंघन  
होनेके लक्षण ।

ग्रान्यद्गौरवे श्रद्धाधिकृतिर्हीनलङ्घि-  
ते । प्रकाशालाघवो ग्राहिः स्वस्थता  
सुप्तसन्नता ॥ ४०७ ॥ उपद्रवनिवृत्तिश्च  
सम्यङ्लङ्घितलक्षणम् । संमोहः सन्धि-  
शैथिल्यं वातरूक्चातिलङ्घिते ॥ ४०८ ॥

शरीरमें ग्लानि, भारीपन, अश्रद्धा ये विकार  
हीनलंघनके हैं । भोजनमें इच्छा, शरीरमें  
हलकापन, ग्लानिका नाश, स्वस्थता, प्रसन्नता और  
पूर्ण उपद्रवोंका निवृत्ति ये अच्छे प्रकारसे लंघन होनेके  
लक्षण हैं । माह, संधियोंमें शिथिलता और वातके  
रोग ये लक्षण अत्यंत लंघन करनेमें होते हैं ॥ ४०७ ॥  
॥ ४०८ ॥

शस्तं मुलहिनस्यादौ विधाय कव-  
लग्नहम् ॥ ४०९ ॥

सन्निपातमें अच्छे प्रकारसे लंघन किये हुए मनु-  
ष्यको प्रथम कबल धारण कराना चाहिये ॥ ४०९ ॥

लाजसक्तुकपथ्यं स्यात्सन्धवेनावचू-  
णितम् । तत्रेज्जीर्यत्यग्निनेन रोगी  
जीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ ४१० ॥

रोंलोंके सचुओंको संधे नमकके साथ मिलाकर  
सन्निपातरोंगोके देये, जो यह अच्छे प्रकारसे पचजाय  
और कुछ विकार न लावे तो रोगी निश्चय जीता  
है ॥ ४१० ॥

रक्तपित्तहरत्वेन दाहज्वरकृते तथा ।  
सक्तवः शीतवीर्याः स्युर्लाजपूर्वा  
हिता न ते ॥ ४११ ॥

रोंलोंके सच, रक्तपित्त और दाहज्वरको नष्ट करने  
हैं इसकारण शीतवीर्य हैं, शीतवीर्य होनेके कारण  
सन्निपातमें हितकारी नहीं हैं ॥ ४११ ॥

पाचनो दीपनो लाजमण्डस्तेनोष्ण  
इष्यते । अतोऽयं दशमूलादिसाधि-  
तोऽयं भिषग्मतः ॥ ४१२ ॥

रोंलोंका मांड-पाचन, दीपन और उष्ण है। इस-  
लिये इसको दशमूलादि औषधियोंके कायमें सिद्ध  
करके देना चाहिये ॥ ४१२ ॥

पञ्चमुष्टिकयूपेण त्रिकण्टककृतेन च ।  
त्रिदोषशमनार्थं त्रिकण्टेनैव साध-  
येत् ॥ ४१३ ॥ यत्रकोलकुलत्थानां  
तुहामलकशुण्ठयोः । एकैकं मुष्टि-  
मादाय पचदष्टगुणे जले ॥ ४१४ ॥  
पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः।  
शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासेक्षये  
ज्वरे ॥ ४१५ ॥

पंचमुष्टिकयूपकी औषधियोंको गेठुलुके कायमें  
डालकर विधिपूर्वक यूप सिद्ध कर त्रिदोषशमन करनेके  
लिये देवे । जो, बेर, कुलथी, मूंग और आमले

प्रत्येकको एक २ मुष्टी लेकर अठगुने जलमें पकावे, जब घुप पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छान लवे फिर उसमें थोडासा सोंठका चूर्ण डाल देवे । इसको पंचमुष्टिकचूप कहते हैं । यह पंचमुष्टिकचूप वात, पित्त और कफनाशक है तथा गुल्म, शूल, श्वास, खाँसी, क्षय और ज्वरमें हितकारी है ॥४१३॥४१४॥ ॥ ४१५ ॥

यवकोलकुलत्थैश्च मुद्गामलकसंयुतैः ।  
धान्याकाविश्वयुक्तैश्च यूषो वातकफा-  
पहः ॥ ४१६ ॥ सप्तमुष्टिक इत्येष सन्नि-  
पातज्वरापहः । कफवातामदोषधनः  
कण्ठहृद्भ्रूशोधनः ॥ ४१७ ॥ आर्द्रक-  
स्वरसोपेतं सैन्धवं सकटुत्रयम् । आ-  
कण्ठं धारयेदास्ये निष्टीवैश्च पुनः पु-  
नः ॥ ४१८ ॥ तेनास्य हृदये श्लेष्मा म-  
न्यापार्श्वशिरोगलात् । लीनोऽप्याकृ-  
प्यते शुष्को लाघवं चास्य जायते ४१९  
पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राश्वासगला-  
मयाः । मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्केश-  
श्लोषशाम्यति ॥ ४२० ॥ सकृद्द्वित्रिचतुः  
कुर्याद्द्विषट्ठा दोषबलावलम् । एताद्वि-  
परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ४२१ ॥

जाँ, बेर, कुलथी, भूंग, आमले, धानियाँ और सोंठ प्रत्येकको ४-४-तोले लेकर पूर्वोक्त विधिसे चूप बनावे । इसको सप्तमुष्टिकचूप कहते हैं । यह सप्तमुष्टिकचूप वातकफनाशक तथा सन्निपातज्वर, कफ, वात और आमदोषनाशक है एवं कंठ, हृदय और मुखको शुद्ध करता है । सैधानोन, सोंठ, मिरच, पीपल इनके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर मुखमें धारण करे, जो कफ आवे तो उसको बारंबार थुकता रहे । इस प्रकार करनेसे हृदय, मन्या, पसली, शिर और गलेमें दिसाहुआ भी कफ खिचकर बाहर निकल जाता है और शरीर हलका हो जाता है, संधियोंकी पीड़ा, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, श्वास, गलरोग, मुख तथा नेत्रोंकी सुकता, शरीरकी जड़ता और उबकाई दूर होती है । इसप्रकार दोषोंका बलावल विचार कर दो, तनि या चार बार करे, यह सन्निपातरोगियोंकी उत्तम औषधि है ॥ ४१६-४२१ ॥

सुरसार्जकनिर्यासः समधुव्योषसैन्ध-  
वः । महाश्लेष्मानिलोद्रेकसंज्ञानाश-  
विमोक्षणः ॥ ४२२ ॥

तुलसीका स्वरस, शहद, राळे, त्रिकुटा और सैधा-  
नोन इन सबको एकत्र मिलाकर चाटे तो बडे हुए कफ-  
वात नष्ट हों तथा चैतन्य उत्पन्न होता है ॥ ४२२ ॥

मधुकसारसिन्धून्धवचोषणकणाःसमाः ।  
शुद्धं पिष्ट्वाभक्षानस्यं कुर्यात्संज्ञा-  
प्रबोधनम् ॥ ४२३ ॥

महुएका सार, सैधानोंन, वच, काली मिरच और  
पीपल इन सबको समान भाग लेकर जलमें धारीक  
पसिकर नास लेनेसे संज्ञाका ज्ञान होता है ॥ ४२३ ॥

स्विन्नमामलकान्पिष्ट्वा द्राक्षया सहसंयु-  
जेत् । विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह  
लेहयेत् ॥ ४२४ ॥ तेनास्य शाम्यते  
मूर्च्छा कासः श्वासस्तथैव च ॥ ४२५ ॥

सीजेहुए आमले, मुनक्का और सोंठ इन सबको  
एकत्र पाँस शहदके साथ चाटनेसे मूर्च्छा, खाँसी  
और श्वास ये सब दूर होते हैं ॥ ४२४ ॥ ४२५ ॥

अष्टाङ्गं मधुना लिह्यादार्द्रकस्वरसेन  
वा । समोहं दारुणं हन्ति तन्द्राकास-  
समन्वितम् ॥ ४२६ ॥

अष्टांग अबलेहको शहद अथवा अदरखके रसमें  
मिलाकर चाटनेसे तन्द्रा और खाँसी संयुक्त बेहोशी  
दूर होती है ॥ ४२६ ॥

कटफलं पुष्करं भाङ्गी व्योषं यासश्च  
कारवी । श्लक्ष्णं चूर्णीकृतञ्चैतन्मधुना  
सह लेहयेत् ॥ ४२७ ॥ एषावलेहिका  
हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् । द्विर्घ्नां  
श्वासश्च कासश्च कण्ठरोगं नियच्छति  
॥ ४२८ ॥ एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्ण-  
मार्द्रकजे रसेः । ऊर्ध्वजट्टगदग्री या  
सायं कार्यावलेहिका । अयोरोगहरी  
या तु सा पूर्व भोजनान्मता ॥ ४२९ ॥

कटफलं पुष्करं भाङ्गी व्योषं यासश्च कारवी । श्लक्ष्णं चूर्णीकृतञ्चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ ४२७ ॥ एषावलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् । द्विर्घ्नां श्वासश्च कासश्च कण्ठरोगं नियच्छति ॥ ४२८ ॥ एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्णमार्द्रकजे रसेः । ऊर्ध्वजट्टगदग्री या सायं कार्यावलेहिका । अयोरोगहरी या तु सा पूर्व भोजनान्मता ॥ ४२९ ॥



कायफल, पोद्दारमूल, भारंगो, त्रिकुटा, जवागा और फलोजी इन सबको एकत्र मर्दन पीसकर गह-  
वमें मिलाकर घोट तो दारुणसन्निपात, तिष्ठा, श्वाभ,  
रौंसी और कंठरोग नष्ट होते हैं। इस चूर्णको  
कफकी अधिकतामें अदरकके रसमें मिलाकर सेवन  
करे। जो अवलोक्य ऊर्ध्वजघु और अधोगत रोगोंको  
हरण करनेवाले हैं उनको मलत्याके नमय भोजनसे  
प्रथम देना चाहिये ॥ ४२७ ॥ ४२८ ॥ ४२९ ॥

मरिचं पिप्पलीं शुण्ठीं पथ्या लोधं  
सपुष्करम्। भूनिम्बकटुका कुष्ठं यचा-  
नी कटुफलं तथा ॥ ४३० ॥ एतानि  
समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।  
प्रस्वेदं कण्ठरोधं च सन्ध्यां मर्दनमि-  
प्यते। एतदुद्धूलनं प्रोक्तं सन्निपातहरं  
परम् ॥ ४३१ ॥

त्रिकुटा, हरड़, लोध, पोद्दारमूल, चिरायता, कुटकी,  
कुष्ठ, अजवायन और कायफल इन सबको समान  
भाग लेकर घासीक चूर्ण करके, इसको अधिक पसी-  
नेके आनेमें, कंठरोग और संधियोंकी पीड़ा होनेपर  
शरीरमें मर्दन करे। यह उत्तम उद्धूलन सन्निपात-  
नाशक है ॥ ४३० ॥ ४३१ ॥

सर्वेषु सन्निपातेषु न क्षौद्रमवधारयेत्।  
शीतोपचारि क्षौद्रं स्याच्छीतं चात्र  
विरुध्यते ॥ ४३२ ॥

समपूर्ण सन्निपातमें मधु नहीं देना चाहिये कारण  
यह है कि, मधुभक्षण करनेके पश्चात् शीतल उप-  
चार करनेकी आवश्यकता होती है, किन्तु सन्निपातमें  
शीतल उपचार वर्जित है ॥ ४३२ ॥

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः क्रियासां-  
क्यमिप्यते। भिन्नरूपतया तास्तु न  
कुर्वन्ति हि दूषणम् ॥ ४३४ ॥

जो एक समयमें एकसी दो चिकित्सा की जाती  
है उनको संकरक्रिया कहते हैं, उक्त क्रिया पृथक्  
पृथक् करनेसे दोषकारक नहीं होती है ॥ ४३४ ॥

यदा स्वल्पानिलकफो तालुक्कोभगतौ  
श्रितौ। कुर्यातामधिकं शोषं जिह्वा-  
याः खरतां तथा ॥ ४३५ ॥ तदा तां

स्फुटितां जिह्वामुच्छुष्कां मधुषिष्टया।  
द्राक्षया साज्यया चास्यं लेपयेत्सं-  
निपातितः ॥ ४३५ ॥ घषेज्जिह्वां जहां  
सिन्धुच्यूपणैः साम्लयेतसैः ॥ ४३६ ॥

जब अल्पान और कफके आश्रित तालु और ह्योभ  
होते हैं तब अधिक शोष दत्तन करते हैं तथा जीभ  
को मरन्तरी और पटीसी कर देते हैं। इसपर मुक्ता  
गहड़ अथवा पीपे पीसकर जिह्वपर लेप करना  
चाहिये। जो जिह्वा जड़ होजाय तो मेषानेन और  
त्रिकुटेके चूर्णको अमलयेतके रसमें मिलाकर जीभपर  
पिसे ॥ ४३५ ॥ ४३६ ॥

स्वेदोद्धमे भ्रष्टकुलत्वनूर्णानिपातनं  
शस्तामिति श्रुवन्ति। मृत्तुश्च तस्मि-  
न्बहुपिच्छिलत्वाच्छीतस्य जन्तोः  
परितः सरत्वात् ॥ ४३७ ॥

सन्निपातध्वरमें घट्ट पसीना आवे तो सुर्नाहुई  
कुल्यको पीसकर शरीरमें मर्दन करना चाहिये। इस  
पसीनेमें घट्टन पिच्छिलता होनेके कारण और इसमें  
शीघ्र ही शीतके फलजानेसे तत्काल रोगीकी मृत्यु होती  
है ॥ ४३७ ॥

चूर्णं यथा कटुफलकृष्णजीरकं लोधं  
गवां काननविट्पुरातनम्। तित्ता  
सपथ्या लवणं तथाजनसुद्धूलनं स्वेद-  
विकारजित्परम् ॥ ४३८ ॥

कायफल, कालाजीरा, लोध, पुराने आरने उपले,  
सुटकी, हरड़, नमक और अजून इन सबको घासीक  
पीसकर शरीरमें मलनेसे पसीनेका आना बंद होजाता  
है ॥ ४३८ ॥

भूनिम्बः कारवी तित्ता वचा कटुफलजं  
रजः। उद्धूलनं त्रिदोषोत्थे ह्यभिप्य-  
न्दिनि च ज्वरे ॥ ४३९ ॥

चिरायता, कालाजीरा, कुटकी, वच और कायफल  
इन सबको घासीक पीसकर उद्धूलन करे, यह त्रिदोष-  
ज्वर और आभिप्यान्दिज्वरमें हितकारी है ॥ ४३९ ॥

बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी  
पाटला स्थिरा। त्रिकण्टकः पृष्ठपर्णी

वृहती कण्टकारिका । दशमूलामिदं  
श्वाससन्निपातज्वरापहम् ॥ ४४० ॥ अ-  
विषाकानिलश्रेष्मतन्द्रापाश्वात्तिकास-  
नुत् । पिप्पलीचूर्णसंयुक्त हृत्कण्ठप्र-  
हनाशनम् ॥ ४४१ ॥ महान्ति यानि  
मूलानि काष्ठगर्भानि यानि च । तेषां  
तु बल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि  
कृत्स्नशः ॥ ४४२ ॥

बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, कुम्भेर, पाढल,  
शालपर्णी, घृशिनपर्णी, गोखरु, बडी कटेरी और  
कटेरी इन सब औषधियोंके समुदायको दशमूल कहते  
हैं । यह दशमूल, श्वास, सन्निपातज्वर, अजीर्ण, वात,  
कफ, तन्द्रा, पार्श्ववेदना आर खांसीको नष्ट करता है ।  
इसमें पीपलका चूर्ण मिला लिया जाय तो हृदय और  
कंठवरोधको दूर करता है । इनमें जिन औषधि-  
योंकी बडी जड़ें हैं और जो छालसे लिपटी हुई हैं  
उनके छाल लेने चाहिये और जिनकी छोटी जड़ें हैं  
उनका सर्वांग लेना चाहिये ॥ ४४०—४४२ ॥

दशमूलस्य निर्यूहः कट्फलदिरजो-  
युतः । तुल्याद्रकसोपेतौ मृत्युकल्पं  
ज्वरं जयेत् ॥ ४४३ ॥

दशमूलके निर्यूहमें कायफल आदिका चूर्ण और  
समानभाग अदरखका रस मिलाकर पान करे तो  
मृत्युकल्पके समान ज्वरको भी नष्ट करता है ॥ ४४३ ॥

पञ्चमूलीकिरातादिगणो योज्यस्त्रि-  
दोषजे । पित्तात्कटे च मधुना कणया  
वा कफोत्कटे ॥ ४४४ ॥

त्रिदोषज्वरमें पञ्चमूलके क्वाथमें किरातादि गणकी  
औषधियोंको मिलाकर प्रयोग करे एवं पित्ताधिकसन्नि-  
पातमें पञ्चमूलके क्वाथको शहदके साथ और कफा-  
धिकमें पञ्चमूलके क्वाथको पीपलके साथदेवे ॥ ४४४ ॥

त्रिज्वरे वातकफोत्त्वणे वा त्रिदोषजे  
वा दशमूलमिश्रः । किराततिकादि-  
गणः प्रयोज्यः शुद्धार्थिने वा त्रिवृता-  
विमिश्रः ॥ ४४५ ॥

दशमूल, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और  
सोंठ इनका क्वाथ पुराने वातकफोत्त्वणज्वरमें अथवा

त्रिदोष ज्वरमें देवे, यदि दस्त खानेकी आवश्यकता  
हो तो निसोतका चूर्ण डाल कर देवे ॥ ४४५ ॥

दशमूली शठी शृङ्गी पौष्करं सदुरा-  
लभम् । भाङ्गी कुटजबीजश्च पटोलं  
कटुरोहिणी ॥ ४४६ ॥ अष्टादशाङ्ग-  
इत्येषः सन्निपातज्वरापहः । कासह-  
द्रूपार्थातिश्वासहृत्कावमीहरः ४४७ ॥

दशमूल, कचूर, काकडाशिगी, पोहकरमूल,  
धमासा, भारङ्गी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इन  
सब औषधियोंको अष्टादशांग कहते हैं। यह अष्टादशांग  
क्वाथ सन्निपातज्वर, खांसी, हृदयरोग, पसलियोंकी  
पीडा, श्वास, हिचकी और बमनको दूर करता है ॥  
॥ ४४६ ॥ ४४७ ॥

दशमूलीकपायन्तु पुष्कराहकणायुत-  
म् । सन्निपातज्वरे देयं श्वासकासतृपा-  
न्विते ॥ ४४८ ॥

दशमूलके क्वाथमें पोहकरमूल और पीपलका  
चूर्ण डालकर श्वास, खांसी और तृपा युक्त सन्निपा-  
तज्वरमें देना चाहिये ॥ ४४८ ॥

वृहत्यां पुष्करं भाङ्गी शठी शृङ्गी दुरा-  
लभा । वत्सकस्य च बीजानि, पटालं  
कटुरोहिणी ॥ ४४९ ॥ वृहत्यादिगणः  
प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः । श्वासादि-  
पु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेपु च ॥ ४५० ॥

बडी कटेरी, कटेरी, पोहकरमूल, भारङ्गी, कचूर,  
काकडा शिगी, धमासा, इन्द्रजौ, पटोलपात और कुटकी  
इन औषधियोंके समूहको वृहत्यादिगण कहते हैं। यह  
वृहत्यादिगण सन्निपातज्वरनाशक है तथा श्वासादि सब  
उपद्रव सहित त्रिदोषज्वरमें हितकारी है ४५० ॥ ४४९ ॥

शठीपुष्करमूलं च व्याघ्रीं शृङ्गी दुराल-  
भा । गुडूची नागरं पाठा किरातं कटु-  
रोहिणी ॥ ४५१ ॥ एष शक्यादिको वर्गः  
सन्निपातज्वरापहः । कासहद्रूपार्था-  
तिश्वासे तन्द्राश्च शस्यते ॥ ४५२ ॥

कचूर, पोहकरमूल, कटेरी, काकडाशिगी, धमासा,  
गिलोय, सोंठ, पाढ, चिरायता और कुटकी इन सब

औपधियोंके समूहको शब्दादिवर्ग कहते हैं। यह शब्दादिवर्ग सन्निपातज्वरनाशक है, तथा खांसी, हृदयरोग, पसलियोंकी पीडा, श्वास और तन्द्रामें हितकारी है ॥ ४५१ ॥ ४५२ ॥

शटी पुष्करमूलन्तु गुडूची विश्वभेष-  
जम् । त्रिकण्टकं त्रायभाणा पिप्पली  
सदुरालभा ॥ ४५३ ॥ व्याघ्री पर्पटकं  
रास्त्राऽभया कटुकरोहिणी । देवदारु  
वचा भाङ्गी समभागान कारथेत् ॥

॥ ४५४ ॥ एष शब्दादिको वर्गः सन्नि-  
पातज्वरापहः । कासं श्वासं दिवा-  
निद्रां रात्रौ जागरणं तथा । मुखशोषं  
तृषां दाहं त्रिदोषञ्च नियच्छति ॥ ४५५ ॥

कचूर, पोहकरमूल, गिलोय, सोंठ, गोखुरु, वन-  
पत्ता, पीपल, धमासा, कटेरी, पित्तपापडा, रायसन,  
हरड, कुटकी, देवदारु, वच और भारङ्गी इन सब  
औपधियोंके समूहको बृहच्छब्दादिवर्ग कहते हैं।  
यह शब्दादिवर्ग सन्निपातज्वर, खांसी, श्वास, दिन  
में सोना, रात्रिमें जागना, मुखशोष, तृषा, दाह और  
त्रिदोषको नष्ट करता है ॥ ४५३ ॥ ४५४ ॥ ४५५ ॥

पित्ताधिक्ये तु शब्दादिवृहत्यादिः  
कफाधिके । वातोत्तरे सन्निपाते कटु-  
फलादिः प्रशस्यते ॥ ४५६ ॥

पित्ताधिकसन्निपातमें शब्दादिकाय, कफाधिक  
सन्निपातमें बृहत्यादि और वाताधिकसन्निपातमें  
कटुफलादिकवाय हितकारी है ॥ ४५६ ॥

कटुफलाद्देवचापाठापुष्कराजाजिप-  
पटः । देवदारुभयाशुङ्गाकणाभूनि-  
म्बनागरेः ॥ ४५७ ॥ भाङ्गीकलिङ्गक-  
टुकाशटीकतृणधान्यकैः । समांशैः  
साधितः काथो हिंवाद्रकरसेयुतः ॥

॥ ४५८ ॥ कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्ति  
मन्यागलाश्रयम् । कफवातज्वरं श्वासं  
कासं हिकां हनुप्रहम् ॥ ४५९ ॥

दशमूलयुतो ह्येष सन्निपातज्वरं  
जयेत् । अभिन्यासं समस्तञ्च कटु-  
फलादिनियच्छति ॥ ४६० ॥

कायफल, नागरमोथा, वच, पाठ, पोहकरमूल,  
जीरा, पित्तपापडा, देवदारु, हरड, काकडाशीगी,  
पीपल, चिरायता, सोंठ, भारङ्गी, इन्द्रजौ, कुटकी,  
कचूर, सुगन्धतृण और धनियां इन सबको समान  
भाग लेकर क्वाथ बनाकर हीङ्ग और अदरकका  
रस मिलाकर पान करे तो कर्णमूलोत्पन्न सूजन,  
गलाश्रित शोथ, कफवातज्वर, खांसी, श्वास, हिचकी  
और हनुस्तम्भादिरोग दूर होते हैं। इसमें दशमूलका  
काथ मिलाकर पीये तो यह सन्निपातज्वर और  
सर्वप्रकारके अभिन्यास ज्वरको दूर करता है।  
॥ ४५७ ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥ ४६० ॥

दारुनागरभूनिम्बधान्यतिकाकलि-  
ङ्गजैः । गजाहादशमूलाद्देर्मृत्युकल्पं  
ज्वरं जयेत् ॥ ४६१ ॥ अष्टादशाङ्ग  
इत्येष सन्निपातज्वरापहः । कासह-  
दप्रहपार्श्वार्त्तिश्चासहिकावमीहरेत् ४६२ ॥

देवदारु, सोंठ, चिरायता, धनियां, कुटकी, इन्द्रजौ,  
गजपीपल, दशमूल और नागरमोथा, इनके  
काथको अष्टादशाङ्गकाथ कहते हैं। यह अष्टादशाङ्ग  
काथ सन्निपातज्वरको नष्ट करता है तथा खांसी,  
हृदयकी पीडा, पसलियोंकी पीडा, श्वास, हिचकी  
और वमनको दूर करता है ॥ ४६१ ॥ ४६२ ॥

गुडूची चन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवास-  
कम् । अभयारग्वधोरशिरपाठा धान्या-  
द्धरोहिणी ॥ ४६३ ॥ कपायं पायये-  
द्वेत्तिप्लीचूर्णसेयुतम् । तन्द्राकास-  
ज्वरश्चासपिपासादाहनाशनः ॥ ४६४ ॥  
धिष्मृत्तानिलविष्टम्भात्रिदोषप्रभवस्य  
च । गुडूच्यादिगणो ह्येष पाचनो  
दीपनः परः ॥ ४६५ ॥

गिलोय, लाल चन्दन, पद्यास, सोंठ, इन्द्रजौ,  
जवासा, हरड, अमलतास, खस, पाठ, धनियां,  
नागरमोथा और कुटकी इनके काथमें पीपलका  
चूर्ण डालकर पान करानेसे तन्द्रा, खांसी, ज्वर,  
श्वास, पियास, दाह, त्रिदोषके कुपित होनेसे मल,  
मूत्र और वायुका अवरोध ये दूर होते हैं। यह गुडू-  
च्यादिगण पाचन और दीपन है ॥ ४६३ ॥ ४६४ ॥  
॥ ४६५ ॥

अमृतादशमूलीभ्यां साधितं विधि-  
वज्जलम् । सत्रिपातज्वरं हन्यात्त्रयोद-  
शविधं नृणाम् ॥ ४६६ ॥

गिलोय और दशमूलके द्वारा त्रिपिप्लवक मिद-  
किया हुआ काथ तैरके प्रकारके सत्रिपातको नष्ट  
करता है ॥ ४६६ ॥

विपशुण्ठी दशमूली छिन्ना पाठा च  
पिप्पलीन्द्रयवैः । सकिराततित्कवासा  
शमयति हतौजसं सद्यः ॥ ४६७ ॥

अतसी, सोंठ, दशमूल, गिलोय, पाठ, पीपल,  
इन्द्रजौ, चिरायता और अहूसा, इनका क्वाथ  
ज्वरसे क्षीणरोगीको तत्काल आरोग्य करता है ४६७

त्र्यूपणदशमूलशुण्ठीभाङ्गीछिन्नोद्भ-  
वोद्भवः काथः।पीतः शमयति सहसा  
ज्वरमुग्रं सत्रिपाताख्यम् ॥ ४६८ ॥

त्रिकुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी और गिलोय  
इनका क्वाथ पान करनेसे शीघ्र ही सत्रिपात ज्वर  
दूर होता है ॥ ४६८ ॥

द्विपञ्चमूली पद्मंया विश्वा शुभ्रनखी-  
द्रयम् । कफवातहरः काथः सत्रिपात-  
हरः परः ॥ ४६९ ॥

दशमूल, वच, सोंठ, धर और झडेर ( किसीके  
मतसे कौआठोही और मकोय ) इनका काथ सत्रि-  
पात ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४६९ ॥

सिंहास्यपर्पटारिष्टं यष्टिधान्याकनाग-  
रम् । दास्यगन्धेन्द्रयवाः श्वदंष्ट्रा-  
ग्रन्थिकं तथा ॥ ४७० ॥ एषां कपायम-  
हनि सत्रिपातज्वरे पिबेत् । श्वासाति-  
सारकासत्रं शूलरुचिहरं परम् ४७१ ॥

अहूसा, पित्तपापडा, नाम, मुलैठी, धनियां, सोंठ,  
देवदारु, वच, इन्द्रजौ, गोखरू और पीपलामूल  
इनका काथ बनाकर दिनमें पान करनेसे सत्रिपात-  
ज्वर, श्वास, अतिसार, खौंसी, शूल और अरुचि दूर  
होती है ॥ ४७० ॥ ४७१ ॥

कटुकं त्रिफलादारुचन्दनं सपरूप-  
कम् । कटुकं पद्मकोशीरं विपचेत्का-

पिकं जलम् ॥ ४७२ ॥ तत्सत्रिपातदा-  
हघ्नं पानमात्रे प्रपूजितम् । दीर्घकाल-  
प्रयुक्तानां ज्वरिणाममृतोपमम् ॥ ४७३ ॥

कायफल, त्रिफला, देवदारु, चन्दन, फालसा,  
त्रिकुटा, पद्मार और मस इनका काथ बनाकर पान  
करनेसे सत्रिपातज्वर और उसकी दाह दूर होती है ।  
यह काथ बहुत दिनोंके ज्वरवाले मनुष्यके लिए  
अमृतके समान है ॥ ४७२ ॥ ४७३ ॥

समुस्तं पञ्चमूलश्च दद्याद्वातोत्तरे गदे।  
भृशोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वा दोष-  
दलावलम् ॥ ४७४ ॥

पंचमूल और नागरमोथा इनका काथ बनाकर  
दोषोंके बलावलको विचार कर अधिक उष्ण अथवा  
मंशोष्ण वातोत्पन्न सत्रिपातज्वरमें देवे ॥ ४७४ ॥

कफोत्तरे बृहत्यादिगणश्च दशमूलजः।  
परूपकाणि त्रिफलादेवदारुसकट-  
फलम् । पित्तोत्तरे नृणामेतत्सत्रिपातं  
चिकित्सितम् ॥ ४७५ ॥

कफाधिक सत्रिपातमें बृहत्यादिगणकी औषधि,  
दशमूलकी औषधि, फालसेकी छाल, त्रिफला, देवदारु  
और कायफल इनका काढा देवे ॥ ४७५ ॥

मुस्ता पर्पटकोशीरदेवदारुमहोष-  
धम् । त्रिफला धन्वयासश्च नीली  
कांपिल्लकं त्रिवृत ॥ ४७६ ॥ किरातति-  
क्तकं पाठाबलाकटुकरोहिणी । मधुकं  
पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते  
॥ ४७७ ॥ अष्टादशाङ्गमुदकं सत्रिपा-  
तज्वरापहम् ॥ ४७८ ॥ पित्तोत्तरे सत्रि-  
पाते हितमुक्तं मनीषिभिः । मन्या-  
स्तम्भ उरोघाते हतुस्तम्भे शिरो-  
गदे ॥ ४७९ ॥

पित्ताधिक सत्रिपातमें नागरमोथा, पित्तपापडा,  
खस, देवदारु, सोंठ, त्रिफला, धमासा, नीलकी छाल,  
कवीला, निसोत, चिरायता, पाठ, खिरंटी, कुटकी,  
मुलैठी और पीपलामूल इन सब औषधियोंके समूहको  
मुस्ताद्यगण कहते हैं । यह अष्टादशांग काथ सत्रिपा-

तत्परनाशक है, विशेष कर पिचोत्वण सन्निपातमें अतीव हितकारी है तथा मन्यास्तम्भ, ऊरुस्तम्भ, हनु-स्तम्भ और शिरोरोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥४७६॥

॥ ४७७ ॥ ४७८ ॥ ४७९ ॥

द्योषाह्वतिफलारिष्टपटोलीतिक्तव-  
त्सकैः । समूनिम्बामृतापाठैस्त्रिदोष-  
ज्वरजिज्जलम् ॥ ४८० ॥

त्रिहुटा, त्रिफला, नीमकी छाल, पटोलपत्र, हुटकी, इन्द्रजौ, चिरायता, गिलोय और पाठ इनका काथ त्रिदोषजनित ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४८०॥

धिल्वकं त्रिवृता दन्ती समूलं चतुर-  
ङ्गुलम् । पक्कं कषायं विश्वाद्य नीली-  
चूर्णविमिश्रितम् ॥ ससर्पिकं पिचे-  
नूर्णं सन्निपाते विरेचनम् ॥ ४८१ ॥

बेलगिरी, निसोल, दंती और अमलतास, इनकी जड़के काथमें नीलका चूर्ण और घी मिलाकर पान करे तो सन्निपातरोगीको अच्छे प्रकारसे विरेचन हो जाता है ॥ ४८१ ॥

कम्पप्रलापनं यस्य संज्ञानाशश्च दारु-  
णः । रसैश्च लाववतैश्च कलिङ्गैः शश-  
तिसिरेः ॥ ४८२ ॥ तर्पयेत्प्राक्पुराणेन  
सर्पिपाऽभ्यञ्जयेदपि । बलारास्त्रागुहू-  
च्याद्यैस्तेलैश्च परिषेचयेत् ॥ ४८३ ॥

जिस रोगीके कम्प हो, प्रलाप करे और संज्ञा जाती रहे तो उसको लवा, बटेर, चिड़ा, कचूर और तीतर इनके मांसरसको पिलावे, पश्चान् रोगीके शरीरसे पुराने घीको मलकर तर्पण करे तथा खिरंटी, रायसन और गिलोय इत्यादिक द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल शरीरमें लगावे ॥ ४८२ ॥ ४८३ ॥

तन्द्राके लक्षण ।

आचितामाशयकफे सन्निपातज्वरे  
दृढे । शान्तेऽप्यवश्यं तस्याशु तन्द्रा  
समुपजायते ॥ ४८४ ॥ अभिद्रवरस-  
क्षीरदिवास्वप्ननिषेवणात् दुर्बलस्या-  
ल्पवातस्य जन्तोः श्लेष्मा प्रकुप्यति  
॥ ४८५ ॥ वायुमार्गं समावृत्य धमनी-  
रनुसृत्य सः । तन्द्रां सुघोरां जनयेत्-

स्या वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ४८६ ॥ उन्मी-  
लितविनिर्भुग्ने परिवाचितं तारके ।  
भवतस्तस्य नयने लुलिते चलपक्ष्मणी  
॥ ४८७ ॥ निवृत्ताननदन्तौष्ठं मुहुरुत्ता-  
नशायिनम् । पिच्छिलोच्छिन्नतन्तुश्च  
कण्ठे श्लेष्मास्य गच्छति ॥ ४८८ ॥  
कण्ठमार्गविरोधश्च वैकृतं चोपजायते ।  
सोऽर्वाक्त्रिरात्रं साध्यः स्यादसाध्य-  
स्तु ततः परम् ॥ ४८९ ॥

आमाशयमें आम और कफके संचित होनेसे जो दृढ सन्निपात ज्वर उत्पन्न होता है उसके शांत होने-पर शीघ्रही तन्द्रा उत्पन्न होती है । पतले रस और दूध आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे, दिनमें सोनेसे दुर्बल और अल्पवायुवाले मनुष्यके कफ कुपित होकर वायुके मार्गको रोककर धमनियोंमें प्रवेश करके घोर तन्द्राको उत्पन्न करता है । अब उस तन्द्राके लक्षण कहता हूँ । तन्द्रावाले मनुष्यके नेत्र आधे मिचेसे अथवा टहसे प्रतीत हों, तारोंको इधर उधर फेरे, नेत्र जड़से हो जायें तथा गिरेसे मालूम हों, पलक स्थिर हो जाय, हीठ ऊपरको सिमट जायें, दांत बाहरसे दीखने लगें, बारंबार चित्त होकर सोवे, चिपकता हुआ गाँठे कफका टेंट मुखमें आवे और उससे कंठमार्ग रुक जाय, इसप्रकार अनेक विकार होते हैं । यह तन्द्रा तीन दिनतक तो साध्य है पश्चात् असाध्य हो जाती है ॥ ४८४ ॥ ४८५ ॥ ४८६ ॥ ४८७ ॥ ४८८ ॥ ४८९ ॥

ज्योतिष्मत्यास्तथा तैलं मूलं पिण्डा-  
रकस्य च । तन्द्राविनाशनं श्रेष्ठं नस्य-  
कर्मणि योजितम् ॥ ४९० ॥ सन्धवं  
श्वेतमरिचं सर्पपः कुष्ठमेव च । मूत्रेण  
पिष्ट्वा वस्तस्य नस्यं तन्द्राविना  
शनम् ॥ ४९१ ॥

मालकागनीका तेल और पिंडारकी जड़ दोनोंको एकत्र पीसकर नस्य देनेसे तन्द्रा दूर होती है । सैंधानोल सैंजितके बीज सरसों और कुट्ट इन सबको एकत्र बकरेके मूत्रमें पीसकर नास देनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९० ॥ ४९१ ॥

असुराह्वयगन्धस्य विट्चूर्णमधुसंयु-  
तम् । अन्ननाद्धोधयेन्मुग्धे तन्द्रितं स-  
न्निपातिनम् ॥ ४९२ ॥ जातीपुष्पं प्रवा-  
लञ्च मरिचं रोहिणी वचा । सन्ध्रवं व-  
स्तमृद्वेण तन्द्रानाशनमुत्तमम् ॥ ४९३ ॥

गंधक और विट्कणके चूर्णको शहदमें मिलाकर  
कांसेके पात्रमें घिसकर नेत्रोंमें अंजन लगावेसे  
तन्द्रावाला रोगी चैतन्य हो जाता है । चमे-  
लीके फूल, भूंगा, कालीमिरच, कुटकी, यच और  
संधानोन इन सबको एकत्र वक्रेके मूत्रमें पीसकर  
नास देनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९२ ॥ ४९३ ॥

अयोरजःश्वेतलोभ्रमञ्जनं मरिचं तथा ।  
गोपितैश्च समायुक्तं तन्द्रानाशनमुत्त-  
मम् ॥ ४९४ ॥

लोहेका चूर्ण, सफेद लोह, अंजन, काली मिरच  
और गोरोचन इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें  
आंजनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९४ ॥

सन्निपातज्वरोत्पन्नां युक्त्या तन्द्रां  
जयेद्विषकः । उपद्रवः कष्टतमो ज्वराणां  
सविशेषतः ॥ ४९५ ॥

सन्निपात ज्वरमें उत्पन्न हुई तन्द्राको वैद्य बड़ी  
युक्तिसे जीते, क्योंकि ज्वरमें विशेषकर यह अत्यंत  
कष्टतम उपद्रव है ॥ ४९५ ॥

अभिन्यासज्वरके लक्षण ।

तयश्च कुपिता दोषा उरःस्रोतोऽनुगा  
भृशम् । आमा विवद्धा प्रथिता  
बुद्धीन्द्रियमनोऽनुगाः ॥ ४९६ ॥  
जनयन्ति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं  
नृणाम् । प्रस्तब्धगात्रस्त्ववाग्मी नष्ट-  
चैष्टो न कांक्षति ॥ ४९७ ॥ न च दृष्टि-  
भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने । न च गन्ध-  
रसरुपर्शशब्दान्माप्याथ बुध्यते ॥ ४९८ ॥  
शिरो लोठयतेऽभिक्षणमाहारं नाभि-  
नन्दति । कृजते तुद्यते चैवं प्रतिप-  
त्तिश्च हीयते ॥ ४९९ ॥ कलं प्रभापते

किञ्चिदभिन्यासः स उच्यते । प्रत्या-  
ह्वयैः स भूयिष्ठं कश्चिदेवात्र  
सिध्यति ॥ ५०० ॥

वातादि तीनों दोष कुपित होकर हृदयके स्रोतोंमें  
प्राप्त होकर आमसे विवद्ध और प्रथित होकर बुद्धि,  
इन्द्रिय और मनके अनुगामी होकर घोर अभिन्यास  
ज्वरको उत्पन्न करते हैं । इसके होनेसे रोगीके शरी-  
रमें निश्चेष्टता, बोलनेमें असमर्थता, नेत्र और कर्णोंमें  
जडता, देखने, सूँघने, छूने और सुननेमें असमर्थता  
होती है । तथा वह शिरको इधर उधर पटके, शयन  
करनेपर वारंवार करबटे लेवे अर्थात् किसीप्रकार चैन  
नहीं हो, आहारमें अरुचि, कूजे, उसके शरीरमें  
तोड़नेकेसी पीडा हो और कंठसे थोडा बोले, इसको  
अभिन्यास सन्निपात कहते हैं । वह सन्निपातरोगी  
प्रायः नष्ट हो जाता है, कदाचिन् कोई नारोग  
होता है ॥ ४९६-५०० ॥

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथा-  
पि वा । ते घ्नन्ति संहता धातोः  
पाकान्मुञ्चन्ति चान्यथा ॥ ५०१ ॥

इस सन्निपातरोगमें सात दिनमें या दश दिनमें  
या बारह दिनमें घातुओंकर पाक होनेसे रोगीकी  
मृत्यु होती है और दोपोंका पाक होनेसे रोगसे मुक्ति  
होती है ॥ ५०१ ॥

एतच्च हारीतस्त्वाहं घ्नन्ति मुञ्चन्ति  
वा नरम् । दिवसेद्विगुणैः सप्तनवैकां-  
दशभिः क्रमात् ॥ ५०२ ॥

अन्य आचार्य्य कहते हैं कि-धातु और दोपोंके  
पचनेके अनुसार सन्निपात १४ या ९ अथवा ११  
दिनमें मनुष्यको मारदेता है अथवा छोड देता है ५-२

दुर्गोऽभिसि यथा भग्नं भाजनं त्वरया  
बुधः । गृह्णीयात्तलमप्राप्तं तथाभिन्यास-  
पीडितम् ॥ ५०३ ॥ निद्रोपेतमभि-  
न्यासं क्षिप्रं विद्याद्धतोजसम् ॥ ५०४ ॥

जिसप्रकार अथाह जलमें गिर हुए घर्तनकी तलेमें  
पहुँचनेसे पहले ही पकड लेना चाहिये, उसीप्रकार  
अभिन्याससन्निपातमें पीडित रोगीका शीघ्र ही यत्न

करना चाहिये, क्योंकि इसमें निद्राके आनेपर रोगी तत्काल हतवीर्य हो जाता है ॥ ५०३ ॥ ५०४

चिकित्सा ।

कारवीपुष्करैण्डत्वायन्तीनागरामृताः ।  
दशमूली शटी शृङ्गीवासाभार्ङ्गी  
पुनर्नवाः ॥ ५०५ ॥ तुल्या मूत्रेण  
निष्काश्य पीता स्रोतोविशोधनम् ।  
अभिन्यासज्वरायासमाशु घ्नन्ति  
समुद्धतम् ॥ ५०६ ॥

कलौजी, पोहकरमूल, अंडकी जड़, वनपसा, सोंठ, गिलोय, दशमूल, कचूर, काकडाशिगी, अहूमा, भारंगी और पुनर्नवा इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रमें काथ बनाकर पान करे तो सब शरीरके स्रोत शुद्ध होजाते हैं और शीघ्र ही अभिन्यास ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ५०५ ॥ ५०६ ॥

मालुलुङ्गाश्मभिद्विल्वव्याघ्रीपाठासु-  
बृकजः । काथो लवणमूत्रादयोऽभि-  
न्यासानाह शूलुत् ॥ ५०७ ॥

विजैरे नीचूकी जड़, पापाणभेद, बेलगिरी, कटेरी, पाठ और अंडकी जड़ इनके काथमें गोमूत्र और सैधातोन मिलाकर पान करे तो अभिन्यासज्वर, आनाह और शूल दूर होता है ॥ ५०७ ॥

व्याघ्रीदुरालभाभार्ङ्गीशटीशृङ्गीसपो-  
ष्करम् । पक्वाम्बु श्लेष्महृदयमभिन्यास-  
प्रशान्तये ॥ ५०८ ॥

कटेरी, घमासा, भारंगी, कचूर, काकडाशिगी और पोहकरमूल इनका काथ पात करनेसे कफ और अभिन्यासज्वर दूर होता है ॥ ५०८ ॥

भार्ङ्गी पुष्करमूलश्च रास्ना विल्वं समु-  
स्तकम् । नागरं दशमूलश्च पिप्पली-  
विषसाधितम् ॥ ५०९ ॥ हिंवाद्रक-  
रसोपेतं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । सन्निपा-  
तज्वरं घोरमभिन्यासश्च दारुणम् ।  
हृत्पाश्वशूलमानाहं सद्यः पीतं निय-  
च्छति ॥ ५१० ॥

भारंगी, पोहकरमूल, रायसन, बेलगिरी, नागर-  
मोथा, सोंठ, दशमूल, पीपल और अतीस इनके  
काथमें हींग और अदरकका रस तथा पीपलका  
चूर्ण डालकर पीवे तो घोर अभिन्यास सन्निपातज्वर,  
हृदय और पसलियोंका शूल एवं अफारा तत्काल दूर  
होता है ॥ ५०९ ॥ ५१० ॥

बीजपूरकविल्वाश्मभेदकवृहतीद्वयम् ।  
सक्ताशकं तथैरण्डं जले चाष्टगुणे  
स्मृतम् ॥ ५११ ॥ पक्त्वा गोमूत्रसंपृक्तं  
विडसौवर्चलान्वितम् । हृद्गस्तिशूल-  
मानाहमभिन्यासे ज्वरे हितम् ५१२ ॥

विजोरे नीचूकी जड़, बेलगिरी, पापाणभेद, कटेरी,  
बड़ी कटेरी, कौंस और अंडकी जड़ इन सबको  
समान भाग लेकर अठगुने जलमें पकावे । जब  
काथ तैयार हो जाय तब उसमें गोमूत्र, विडलवण  
और काला नोन मिलाकर पान करे । इससे हृदय  
और यस्तिका शूल, आनाह तथा अभिन्यासज्वर नष्ट  
होता है ॥ ५११ ॥ ५१२ ॥

दन्तीं द्रवन्तीं वृहतीमैरण्डं बीजपूर-  
कम् । श्यामां व्याघ्रीश्च निष्काश्या-  
भिन्यासे बहुवर्चसि ॥ ५१३ ॥

दूती, मूसाकर्णी, बड़ी कटेरी, अंडका जड़ विजैरे  
नीचूकी जड़, अनेंतमूल और कटेरी इनका काथ  
पान करनेसे अभिन्यास ज्वर और मलकी अधिकता  
दूर होती है ॥ ५१३ ॥

सिंही व्याघ्रमृता द्राक्षा अजाजी  
सकट्ट्रिकम् । शृङ्गी विडङ्गश्च समं  
पक्त्वा विस्त्राव्य साधयेत् ॥ ५१४ ॥  
वृताक्तेस्तण्डुलैर्मृष्टैः पेयामुष्णां ज्वरी  
पिबेत् । हिक्काश्वासी च कासी च  
तथाभिन्यासपीडितः ॥ विवद्धवात-  
विण्मूत्रः पानमेतत्प्रयोजयेत् ॥ ५१५ ॥

कटाई, बड़ी कटेरी, गिलोय, दाख, जीरा, त्रिकुटा,  
काकडाशिगी और वायविडंग इन सबको समान  
भाग लेकर काथ बनावे । फिर घीमें सुने हुए चाव-  
लोंकी पेचा बनाकर उस काथमें मिलाकर गरमा-

गरम पीवे इससे हिचकी, श्वास, खाँसी, अभिन्यासज्वर, वायु, मल और मूत्रकी वृद्धता दूर होती है ॥५१४॥  
॥ ५१५ ॥

**बृहती पीप्परं भार्ङ्गी शटी शृङ्गी  
दुरालभा । पक्त्वा पानं प्रशंसन्ति  
श्लेष्मा तिनोपशाम्यति ॥ ५१६ ॥**

बड़ी कटेरी, पोहकरमूल, भार्ङ्गी, कचूर, काफडा-  
शिमी, धमासा, इनका काथ बनाकर पान करनेसे  
कफ शांत होता है ॥ ५१६ ॥

**त्रिवृद्धिशालाकटुकात्रिकलारग्वधैः  
कृतः । सक्षारो भेदनः काथः पेयः  
सर्वज्वरापहः ॥ ५१७ ॥**

निसोत, इन्द्रायण, कुटकी, त्रिकला और अमल-  
तास इनके काथमें जवाखार डालकर पान करे ।  
यह भेदन और सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला  
है ॥ ५१७ ॥

**तिकाभयात्रिवृद्धन्तीफलं वै राजवृक्ष-  
जम् । क्षारादृचः सन्धवोपेतः काथो  
भेदी ज्वरापहः ॥ ५१८ ॥**

कुटकी, हरड, निसोत, जमालगोटा और अमल-  
तास इनके काथमें जवाखार और संधानोंन डालकर  
पान करनेसे विरेचन होकर ज्वर दूर होता है ॥ ५१८ ॥

**आर्द्रकस्वरसोपेतं सिन्धूत्थं सकटुत्रि-  
कम् । प्रबोधाय मुखे दद्यान्नस्यञ्च  
मरिचिन वै ॥ ५१९ ॥**

अदरखके रसमें संधानोन और त्रिकुटके चूर्णको  
मिलाकर चैतन्य करनेके लिये मुखमें धारण करे  
अथवा काली मिरचोंको अदरखके रसमें पीसकर  
नास लेवे ॥ ५१९ ॥

**मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणा-  
न्वितम् । अन्यद्वा सिद्धविहितं नस्यं  
तीक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥ ५२० ॥**

विजौर नौशू और अदरखके रसमें तीनों लवणोंके  
चूर्णको मिलाकर कुल गरम करके उसका अथवा  
अन्याय तीक्ष्ण औषधियोंका नास देवे ॥ ५२० ॥

**शिरिषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ।  
अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिला-  
वचैः ॥ ५२१ ॥**

शिरसके बीज, पीपल, काली मिरच और सैंधा-  
नोंन इन सबको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर अंजन  
बनावे । इस अंजनको नेत्रोंमें लगानेसे अथवा लशुन,  
मैनसिल और वच इनका अंजन बनाकर नेत्रोंमें  
लगानेसे चैतन्य उत्पन्न होता है ॥ ५२१ ॥

**शिरिषबीजं मरिचं वस्तमूत्रेण तत्स-  
मम् । अञ्जनं तदभिन्यासे संज्ञाबोधन-  
मिष्यते ॥ ५२२ ॥**

शिरसके बीज और काली मिरच इनको एकत्र  
वकरेक मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें औंजनेसे संज्ञा उत्पन्न  
होती है ॥ ५२२ ॥

**मातुलुङ्गरसं तस्य द्विंशुशुण्ठीयुतं  
मुखे । दद्यात्प्रधमनं तीक्ष्णं कटुतिक्तो-  
पसंहितम् ॥ ५२३ ॥**

विजौरके रसमें हींग और सोंठ मिलाकर मुखमें  
धारण करे तथा तीक्ष्ण और चरपरी एवं कड़वी  
औषधियोंको नेत्र, नाक और कानमें फूँके ॥ ५२३ ॥

**पटोलपत्रं सुपवी बृहती कण्टका-  
रिका । मरिचं पिप्पली बिल्वं चिर  
बिल्वं सचित्रकम् ॥ ५२४ ॥ करञ्जबीजं  
मञ्जिष्ठा त्रायन्ती विश्वभेषजम् ।  
गलप्रबोधनं—श्रेष्ठमभिन्यासज्वरा  
पहम् ॥ ५२५ ॥**

पटोलपात, करेला, बड़ी कटेरी, कटेरी, कालीमिरच,  
पीपल, बेलगिरी, करंज, चीता, करंजबीज, मजीठ,  
त्रायमाण और सोंठ इनका काथ कंठको शुद्ध करता  
है और अभिन्यासज्वरको नष्ट करता है ॥ ५२४ ॥  
॥ ५२५ ॥

**करञ्जो बिल्वमञ्जिष्ठे त्रायन्त्यग्निः  
पटोलकम् । बृहत्यो सुपवी योषं  
काथः स्याद्गलशोधनः ॥ ५२६ ॥**

करंजकी छाल, बेलगिरी, मजीठ, त्रायमाण, चीता,  
पटोलपात, बड़ी कटेरी, कटेरी, करेला और त्रिकुटा  
इनका काथ कंठको शुद्ध करता है ॥ ५२६ ॥

१ लशुन मैनसिल और वचको उत्तरेक अग्रनकी  
औषधियोंमें ही मिलाकर अग्रन करावे ।



चिकित्सिते कृतेऽप्येवं यस्य संज्ञा न जायते । ललाटे पादयोर्वापि तस्य दाहः प्रशस्यते ॥ ५२७ ॥

इन सब उपरोक्त अंजन नस्य आदिके प्रयोग करनेसे भी संज्ञा उत्पन्न न हो अर्थात् वेहोशी दूर न हो तो लोहेकी सलाईकी अग्निमें तपाकर रोगीके दोनों पाँव और ललाटमें दाग देवे ॥ ५२७ ॥

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव विमुच्यते ॥ ५२८ ॥

सन्निपातज्वरके अंतमें कानकी जड़में घोर सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजनसे कोई रोगी बचता है ५२८ तं जयेच्छोभितस्त्रावेः सर्पिःपानप्रलेपनेः । प्रदाहैः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलप्रहैः ॥ ५२९ ॥

उसको रुधिरस्त्राव (जोंक आदि लगाना), घृतपान, दाग देना, कफपित्तनाशक, वमन और कवलप्रह आदि उपचारोंसे जीते ॥ ५२९ ॥

जीर्णानां रक्तशालीनां ज्वरघ्नकाथसाधितः । प्रसृतस्त्वोदनो द्विच्छिः काय्यो यूपादिकोऽपि वा ॥ ५३० ॥ स चेज्जीर्यत्यविघ्नेन ज्वरी जीवित्वा ध्रुवम् ॥ ५३१ ॥

ज्वरनाशक काथमें पुराने लाल शालिचावलोंका भात अथवा यूपादिक दू या तीन प्रसृत परिमाण सिद्ध करके देवे, जो यह निर्दिष्ट पचजाय तो रोगी निश्चय बच जाता है ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥

गौरिकं पांशुकं शुण्ठीवचाकटफलकाञ्जिकैः । कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरैर्भृशम् ॥ ५३२ ॥

गेहू, धूल, सोंठ, वच कायफल इन सबको एकत्र कांजीमें पीसकर गरम करके कानकी जड़में लगावे, इससे कर्णशोथ दूर होता है ॥ ५३२ ॥

आगन्तुकज्वर ।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापामिपद्गतः । आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वन्तं विभावयत ॥ ५३३ ॥

अभिघात (तलवार, लाठी आदिकी चोट लगनेसे, या वृश्च, पर्वतादिसे गिरनेसे, अभिचार (शत्रु के द्वारा किये हुए मरणदि प्रयोगोंके करनेसे), अभिशाप (गुरु आदिके शापसे) और अभिपंग (भूतादिककी घाया और कामादिके वेगसे) इन सब कारणोंसे घातादिक दोष कुपित होकर आगन्तुक ज्वरको उत्पन्न करते हैं, वह आगन्तुक ज्वर—वात, पित्त और कफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका है जिस दोषकी अधिकता हो उसे जानें ॥

श्यावास्यता विपकृते दाहोऽतीसार एव च । भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ ५३४ ॥ औपधीगन्धजे मूर्च्छां शिरोरुग्मथुस्तया ॥ ५३५ ॥

विपके योगसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मुखपर कालापन, दाह, अतिसार, भोजनमें अरुचि, तृषा, तोंडने केसी पीड़ा और मूर्च्छा; यह सब लक्षण होते हैं ५३४ औपधीकी गंधसे जो ज्वर आता है उसमें मूर्च्छा, शिरोरोग और घमन ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५३५ ॥

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् । हृदये वेदना चास्यं गात्रञ्च परिशुष्यति ॥ ५३६ ॥

कामज्वरमें चित्तभ्रम होना, तन्द्रा, आलस्य, भोजनमें अरुचि, हृदयमें पीड़ा और शरीरका सूखना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५३६ ॥

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वैपथुः । अभिचाराभिशापाम्भ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ भूताभिपङ्गादुद्वेगी हास्यरोदनकम्पनम् ॥ ५३७ ॥

भय और शोकसे उत्पन्न हुये ज्वरमें रोगी प्रलाप करता है, कोपसे उत्पन्न हुये ज्वरमें कोपता है, अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरमें मोह और तृषा होती है, भूतवाधासे उत्पन्न हुये अभिपंग ज्वरमें उद्वेग, हास्य, रोना और कम्प होता है ॥ ५३७ ॥

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः । भूताभिपङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ५३८ ॥

काम, शोक और भयसे वात कुपित होती है, कोपसे पित्त कुपित होता है, एवं भूतवाधासे तीन

दोष कुपित होते हैं और ये ही भूतोंके सामान्य लक्षण होते हैं, (जिस भूतका जैसा लक्षण हो तत्समान लक्षण ही जाता है) ॥ ५३८ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् । दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ ५३९ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरको होम, दान, स्वरितवाचन, पुण्याहवाचन और अतिथि पूजनसे जीते ॥ ५३९ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः । जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःस्वास्थ्यैश्च मानसैः ॥ ५४० ॥

भूताभिषंगोत्थ ज्वरको बंध, आवेशन और ताडनादि कर्मोंसे जीते और मानसिक ज्वरको मनको स्वस्थ करनेसे जीते ॥ ५४० ॥

औषधीगन्धविषजौ विपपित्तप्रवाधानैः । जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ५४१ ॥

औषधि और विषकी गन्धसे उत्पन्न हुये ज्वरको विप और पित्तनाशक औषधियोंसे अथवा सम्पूर्ण सुगन्धिपत औषधियोंके काथसे जीते ॥ ५४१ ॥

क्रोधजे पित्तजित्काम्ये नाय्याः सद्वाक्यमेव च । आश्वासनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च । हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ॥ ५४२ ॥ कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः । याति ताभ्यामुभाभ्याश्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ५४३ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुये ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया और कामज्वरमें सुन्दर स्त्रियोंके मधुरवचनोंके द्वारा उपचार करे । समझानेसे—धीरज वंदानेसे, इष्टपदानोंके मिलनेसे, वात्तनाशक यत्नोंसे और हर्षजनक वार्ता अथवा अन्य हर्षजनक पदार्थोंसे काम, शोक और भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर दूर होता है । कामसे क्रोधज्वर नष्ट होता है और क्रोधसे कामज्वर नष्ट होता है तथा काम और क्रोधसे भयज्वर एवं शोकज्वर दूर होता है ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥

विसर्पेण ज्वरो यश्च यश्च विस्फोटकज्वरः । तत्रादौ सर्पिपः पानं कफपित्तोत्तरे भवेत् ॥ ५४४ ॥ निम्बदारुकषायं वा हितं सौमनसं तथा । श्रमक्षयोत्थे भुञ्जीत घृताभ्यक्तं रसोदनम् ॥ ५४५ ॥

जिसके विसर्पसे अथवा विस्फोटकसे कफपित्ताधिक ज्वर उत्पन्न हो तो उसको प्रथम घृत पान करावे, पश्चान् नीमकी छाल और देवदारुका काथ पिलावे अथवा चमेलीके पत्तोंका काथ पान करावे, श्रम और क्षयसे उत्पन्नहुये ज्वरमें घृतसंयुक्त रसोदन को भक्षण करे ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥

रोगोत्थानप्रकोपाभ्यां यो ज्वरो जायते नृणाम् । शमयेत्पाचयेद्वापि यथायोगैश्चिकित्सकः ॥ ५४६ ॥

अन्यान्य रोगोंके उत्पन्न होनेसे अथवा कुपित होनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसमें यथादोषानुसार शमन और पाचन औषधि देवे ॥ ५४६ ॥

स्त्रीणामप्यप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः । स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रकृष्यति । तस्य प्रशमनं कार्यं यथादोषविधानतः ॥ ५४७ ॥

पुत्रवाली अथवा विनापुत्रवाली स्त्रियोंके अहितकारक कारणोंसे और स्तनोंमें दूध प्रवर्तन होनेसे दोष कुपित होकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं, उसमें यथादोषानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ५४७ ॥

अभिघातज्वरे कुर्यात्क्रियामुष्णविवर्जिताम् । कषायमधुरास्निग्धां यथादोषमयापि वा ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरमें उष्णवर्जित अर्थात् शीतल क्रिया तथा दोषानुसार कषैली, मधुर और स्निग्ध औषधि देवे ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिपः । मध्येर्द्रव्यैश्च सात्त्विकैश्च तथा मांसरसोदनैः ॥ ५४९ ॥

विक्रित्सिते कृतेऽप्येवं यस्य संज्ञा न जायते । ललाटे पादयोर्वापि तस्य दाहः प्रशस्यते ॥ ५२७ ॥

इन सब उपरोक्त अंजन नस्य आदिके प्रयोग करनेसे भी संज्ञा उत्पन्न न हो अर्थात् वेहोशी दूर न हो तो लोहेकी सलाईको अधिमें तपाकर रोगीके दोनों पाँव और ललाटेमें दाग देवे ॥ ५२७ ॥

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव विमुच्यते ॥ ५२८ ॥

सन्निपातज्वरके अंतमें कानकी जड़में घोर सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजनसे कोई रोगी बचता है ५२८ तं जयेच्छोथितस्त्राविः सर्पिःपानप्रलेपनेः । प्रदाहेः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलग्रहेः ॥ ५२९ ॥

उसको रुधिरस्राव (जोंक आदि लगाना), घृतपान, दांग देना, कफपित्तनाशक, वमन और कवलग्रह आदि उपचारोंसे जीते ॥ ५२९ ॥

जीर्णानां रक्तशालीनां ज्वरघ्नकायसाधितः । प्रसृतस्त्वोदनो द्विखिः कार्प्यां सूषादिकोऽपि वा ॥ ५३० ॥ स चेज्जीर्यत्यविघ्नेन ज्वरी जीवेत्तदा श्वम् ॥ ५३१ ॥

ज्वरनाशक कायमें पुराने लाल शालिचावलोंका भात अथवा सूषादिक दो या तीन प्रसृत परिमाण सिद्ध करके देवे, जो यह निर्विघ्न पचजाय तो रोगी निश्चय बच जाता है ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥

गौरिकं पांशुकं शुण्ठीवचाकट्फलकाञ्जिकैः । कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरं भृशम् ॥ ५३२ ॥

गेरू, धूल, सोंठ, वच कायफल इन सबको एकत्र कांजीमें पीसकर गरम करके कानकीज डमें लगावे, इससे कर्णशोथ दूर होता है ॥ ५३२ ॥

आगन्तुकज्वर ।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिज्ञापामिपद्भतः । आगन्तुर्जायते दीर्घैर्यथास्वन्तं विभावयेत् ॥ ५३३ ॥

अभिघात (तलवार, लाठी आदिकी चोट लगनेसे, या वृश्च, पर्यतादिसे गिरनेसे, अभिचार(शत्रु के द्वारा किये हुए मरणादि प्रयोगोंके करनेसे), अभिशाप (गुरु आदिके शापसे) और अभिपंग (भूतादिककी बाधा और कामादिके वेगसे) इन सब कारणोंसे वातादिक दोष कुपित होकर आगन्तुक ज्वरको उत्पन्न करते हैं, यह आगन्तुक ज्वर—बाव, पित्त और कफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका है जिस दोषकी अधिकता हो उसे जाने ॥

श्यावास्यता विपकृते दाहोऽतीसारः एव च । भक्त्कारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ ५३४ ॥ औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्मथुस्तथा ॥ ५३५ ॥

विपके योगसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मुखपर कालापन, दाह, अतिसार, भोजनमें अरुचि, तृषा, तोडने केसी पीड़ा और मूर्च्छा यह सब लक्षण होते हैं ५३४ औषधीकी गंधसे जो ज्वर आता है उसमें मूर्च्छा, शिरोरोग और वमन ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५३५ ॥

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् । हृदये वेदना चास्यं गात्रश्च परिशुष्यति ॥ ५३६ ॥

कामज्वरमें चित्तभ्रम होना, तन्द्रा, आलस्य, भोजनमें अरुचि, हृदयमें पीडा और शरीरका सूखना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५३६ ॥

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः । अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ॥ ५३७ ॥

भय और शोकसे उत्पन्न हुये ज्वरमें रोगी प्रलाप करता है, कोपसे उत्पन्न हुये ज्वरमें काँपना है, अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरमें मोह और तृषा होती है, भूतवाधासे उत्पन्न हुये अभिपंग ज्वरमें उद्वेग, हास्य, रोना और कम्प होता है ॥ ५३७ ॥

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तत्रयो मलाः । भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ५३८ ॥

काम, शोक और भयसे वात कुपित होती है, कोपसे पित्त कुपित होता है, एवं भूतवाधासे तीनों

दोष कुपित होते हैं और ये ही भूतोंके सामान्य लक्षण होते हैं, (जिस भूतका जैसा लक्षण हो तत्समान लक्षण हो जाता है) ॥ ५३८ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् । दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ ५३९ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरको होम, दान, स्वरितवाचन, पुण्याहवाचन और अतिथि पूजनसे जीते ॥ ५३९ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः । जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःस्वास्थ्यैश्च मानसैः ॥ ५४० ॥

भूताभिषंगोत्थ ज्वरको बंध, आवेशन और ताडनादि कर्मोंसे जीते और मानसिक ज्वरको मनको स्वस्थ करनेसे जीते ॥ ५४० ॥

औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रवाधनैः । जयेत्कपायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतेर्भिषक् ॥ ५४१ ॥

औषधि और विषकी गन्धसे उत्पन्न हुये ज्वरको विष और पित्तनाशक औषधियोंसे अथवा सम्पूर्ण सुगन्धित औषधियोंके काथसे जीते ॥ ५४१ ॥

क्रोधंजे पित्तजित्काम्ये नाय्याः सद्वाक्यमेव च । आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च । हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ॥ ५४२ ॥ कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः । याति ताम्यासुभाभ्याश्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ५४३ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुये ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया और कामज्वरमें सुन्दर स्त्रियोंके मधुरवचनोंके द्वारा उपचार करे । समझनेसे—धीरज बंधानेसे, इष्टपदार्थोंके मिलनेसे, वातनाशक यत्नोंसे और हर्षजनक वार्ता अथवा अन्य हर्षजनक पदार्थोंसे काम, शोक और भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर दूर होता है । कामसे क्रोधज्वर नष्ट होता है और क्रोधसे कामज्वर नष्ट होता है तथा काम और क्रोधसे भयज्वर एवं शोकज्वर दूर होता है ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥

विसर्पेण ज्वरो यश्च यश्च विस्फोटकज्वरः । तत्रादौ सर्पिषः पानं कफपित्तोत्तरे भवेत् ॥ ५४४ ॥ निम्बदारुकपायं वा हितं सौमनसं तथा । श्रमक्षयोत्थे भुञ्जीत घृताभ्यक्तं रसोदनम् ॥ ५४५ ॥

जिसके विसर्पसे अथवा विस्फोटकसे कफपित्तक ज्वर उत्पन्न हो तो उसको प्रथम घृत पान करावे, पश्चात् नीमकी छाल और देवदारुका काथ पिलावे अथवा चमेलीके पत्तोंका काथ पान करावे, श्रम और क्षयसे उत्पन्न हुये ज्वरमें घृतसंयुक्त रसोदन को भक्षण करे ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥

रोगोत्थानप्रकोपाभ्यां यो ज्वरो जायते नृणाम् । शमयेत्पाचयेद्वापि यथायोगैश्चिकित्सकः ॥ ५४६ ॥

अन्यान्य रोगोंके उत्पन्न होनेसे अथवा कुपित होनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसमें यथादोषानुसार शमन और पाचन औषधि देवे ॥ ५४६ ॥

स्त्रीणामप्यप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः । स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रकुप्यति । तस्य प्रशमनं कार्यं यथादोषविधानतः ॥ ५४७ ॥

पुत्रवाली अथवा विनापुत्रवाली स्त्रियोंके अहितकारक कारणोंसे और स्तनोंमें दूध प्रवर्तन होनेसे दौष कुपित होकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं, उसमें यथादोषानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ५४७ ॥

अभिघातज्वरे कुर्यात्क्रियासुष्णविवर्जिताम् । कपायमधुरास्निग्धां यथादोषमथापि वा ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरमें उष्णवर्जित अथवा शीतल क्रिया तथा दोषानुसार कपली, मधुर और स्निग्ध औषधि देवे ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः । मेथ्यैर्द्रव्यैश्च सात्म्यश्च तथा मांसरसोदनैः ॥ ५४९ ॥

अभिघातज्वरको नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः । मेथ्यैर्द्रव्यैश्च सात्म्यश्च तथा मांसरसोदनैः ॥ ५४९ ॥

अभिपानज्वरमें घृतपान कराये और उसके शरीर पर घृतकी मास्त्रिज कराये तथा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार मेधाजनक और रातन्व्य मांसरस और भात आदि द्रव्य देवे ॥ ५४९ ॥

व्यधबन्धश्रमात्यध्यभङ्गशसमुद्भवान्  
ज्वरातुपाचरेत्पूर्वं सुस्निग्धक्षीर  
भोजनैः ॥ ५५० ॥

व्यध (बिध, छेदन, भेदन), बन्धन (बांधना), परिश्रम (अधिकमार्गका चलना) और गिरनेके शरीर भंग होने पर इन कारणोंसे उत्पन्न हुए ज्वरमें प्रथम स्निग्ध और दूधका भोजन देवे ॥ ५५० ॥

इति आगन्तुकज्वराधिकित्सा ।

### विषमज्वर ।

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोऽत्सृष्टस्य  
वा पुनः । धातुमन्यतमं प्राप्य करोति  
विषमज्वरम् ॥ ५५१ ॥

ज्वरसे पुत्रक हुए मनुष्यके अल्पदोष भी शुष्य आहारादि द्वारा कुपित होकर रक्तादि किसी धातुमें प्राप्त होकर विषमज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ५५१ ॥

संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतु-  
र्थको । सन्ततो रसधातुस्थः सततो  
रक्तधातुगः । भिषजा चैव विज्ञेयः  
सोऽन्येषुः पिशिताश्रितः ॥ ५५२ ॥  
भेदोगतस्तृतीयेऽह्नि ह्यस्थिमजागतः  
पुनः । कुर्याच्चतुर्थिकं धारमंतकं  
रोगसंकरम् ॥ ५५३ ॥

यह विषमज्वर, संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक इन भेदोंसे पांच प्रकारका है । ये दोष रसमें प्राप्त होकर संततज्वरको उत्पन्न करते हैं, रक्त धातुमें प्राप्त होकर सततज्वरको उत्पन्न करते हैं, मांसमें प्राप्त होकर अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करते हैं, भेदमें जाकर तृतीयकज्वरको उत्पन्न करते हैं, अस्थि और मज्जामें प्राप्त होकर मृत्युस्वरूप रोगसंकर चातुर्थिकज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ५५२ ॥ ५५३ ॥

सप्तार्हं वा दशाहं वा द्वादशाहमभा-  
षिवा । सन्तत्यायोऽधिसर्गां स्या-  
त्सन्ततः स निगद्यते ॥ ५५४ ॥

सात या दस अथवा बारह दिनों में जो ज्वर एक सा चला रहे, घटे नहीं उसको संततज्वर कहते हैं ॥ ५५४ ॥

अहोरात्रे सततको द्वीकालावधुवर्त्तते।  
अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रादेककालं प्रव-  
र्त्तते ॥ ५५५ ॥ तृतीयकस्तृतीयोऽह्नि  
चतुर्थोऽह्नि चतुर्थकः । केचिद्भूताभिप-  
न्नोत्थं भवते विषमज्वरम् ॥ ५५६ ॥

सततज्वर दिन रात दो समयमें दोबार आता है, अन्येद्युष्कज्वर रातदिनेमें एकबार आता है । तृतीयक ज्वर तीसरे दिन आता है और चातुर्थिकज्वर चौथे दिन आता है । कोई वैत भूताभिपन्नोत्थ ज्वरको विषमज्वर कहते हैं ॥ ५५५ ॥ ५५६ ॥

यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णा-  
भ्यां तथैव च । वेगतश्चापि विषमः स  
ज्वरो विषमः स्मृतः ॥ ५५७ ॥

जो ज्वर शीत और उष्ण कारणोंसे बिना समय आ जाय और जिसका वेग भी विषम हो उसको विषम ज्वर कहते हैं ॥ ५५७ ॥

कफपित्ताश्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफा-  
त्मकः । वातपित्ताच्छिरोग्राही  
त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ५५८ ॥

अथ तृतीयकज्वरके तीन भेद कहते हैं, जो तृतीयक ज्वर कफपित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रथम त्रिकस्थानसे प्रकट होकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाता है । जो वात कफसे उत्पन्न होता है, वह प्रथम पीठसे प्रकट होकर सब शरीरमें फैल जाता है और जो तृतीयकज्वर वातापित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रथम शिरसे प्रकट होकर सर्वशरीरमें विस्तृत हो जाता है ॥ ५५८ ॥

चातुर्थिको दर्शयति मभावं द्विविधं  
ज्वरः । जह्वाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिर-  
सोऽनिलसम्भवः ॥ ५५९ ॥